MSW-08
समाज कार्य :समकालीन मुद्दे
Social work: Contemporary Issues

इकाई की क्रम संख्या एवं नाम	पृष्ठ संख्या
1. कार्योन्मुख समाज कार्य सिद्धांत	1-8
2. समाज कार्य का समस्या समाधान सिद्धान्त	9-19
3. संज्ञानात्मक व्यवहार तथा पारिस्थितिकी समाज कार्य सिद्धान्त	20-31
4. दमनविरोधी समाज कार्य सिद्धान्त	32-40
5. उत्तराधुनिकतावादी एवं अमूलकारी समाज कार्य सिद्धांत	41-50
6. व्यवस्था तथा नारीवादी समाज कार्य सिद्धांत	51-64
7. विभिन्न क्षेत्रों में समाज कार्य प्रक्रिया एवं परिवर्तानकर्ता के रूप में समाज कार्यकर्ता	65-78
8. पर्यावरण :अवधारणा एवं अवयव	79-93
9. पर्यावरण :प्रदूषण ,संरक्षण और जन –आंदोलन	94-113
10. पर्यावरण प्रबंधन :अवधारणा ,अभिगम एवं क़ानून	114-123
11. आपदा एवं आपदा प्रबंधन	124-142
12. लैंगिक असमानता एवं लिंग आधारित हिंसा	143-156
13. मानवाधिकार :अवधारणा ,सिद्धांत ,दृष्टिकोण एवं महत्त्व	157-166
14. संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकार सम्बन्धी घोषणाएँ	167-179
15. भारतीय परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकार	180-195

इकाई-1

कार्योंन्मुख समाज कार्य सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 कार्योंन्मुख समाज कार्य

(Task-Centred Social Work Theory)

1.2.1 डोयल एवं मार्श: कार्योंन्मुख प्रारूप

1.3 कार्योंन्मुख कार्य

1.3.1 रीड के अनुसार समस्याओं के प्रकार

1.3.2 कार्योंन्मुख कार्य हेतु प्रक्रिया

1.4 कार्य-उन्मुख सिद्धान्तः डीनिटों एवं मैक्नीस ;

1.4.1 कार्योंन्मुख सिद्धान्त की मुख्य अवधारणाएं

1.5 सारांश

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.7 सन्दर्भ पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्यनन के बाद आप -

1. कार्योंन्मुख समाज कार्य सिद्धान्त एवं उसके व्यवहारिक पक्ष से अवगत हो जायेंगे।
2. रीड द्वारा प्रस्तुत समस्याओं के प्रकार एवं कार्योंन्मुख कार्य हेतु प्रक्रिया को जान जायेंगे|
3. कार्योंन्मुख सिद्धान्त की मुख्य अवधारणाओं से परिचित हो जायेंगे|

1.1 प्रस्तावना

वर्तमान समय में समाज कार्य व्यवसाय अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना कर रहा है। इन चुनौतियों का सामना करते हुए समाज कार्य अभ्यास को किस प्रकार से संगठनात्मक परिधि में लाया जाए, यह विचारणीय है। क्यांकि समाज कार्य व्यवसाय से पारम्परिक तरीके से हटकर के संस्थागत रूप से अभ्यास करने का कार्य प्रारम्भ हुआ है। इस अध्याय के मुख्य उद्देश्य कार्योंन्मुख समाज कार्य अभ्यास के द्वारा जीने के लिए उत्तर प्राप्त करना नहीं है बल्कि उपलब्ध अभ्यासों में किस प्रकार से इसकी उपयोगिता को सिद्ध किया जा सकता है, को प्राप्त

करना है। कार्योन्मुख समाज कार्य सिद्धान्त, समाज कार्य का महत्वपूर्ण अभिगम है। इस सिद्धान्त के द्वारा सेवार्थी की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया जाता है जिससे कि सेवार्थी समायोजन स्थापित कर सके। इस इकाई में समाज कार्य के कार्योन्मुख समाज कार्य सिद्धान्त के विभिन्न आयामों को समझाया गया है।

1.2 कार्योन्मुख समाज कार्य

कार्योन्मुख समाज कार्य अभ्यास का प्रारम्भ वैयक्तिक समाज कार्य के द्धारा माना जा सकता है। जिसकी जड़े उत्तरी अमेरिका में देखने को मिलती है। इस अभ्यास को रीड तथा शाइन (Reed and Shine, 1969) द्वारा किए गए शोध परियोजना के नाम से भी जाना जाता है। जिसे लघु वैयक्तिक कार्य की प्रभाविकता के रूप में देख सकते हैं। रीड तथा शाइन ने अपने हस्तक्षेप में पाया कि पूर्ण रूप से किए गए कार्यो तथा छोटे-छोटे प्रारूपों में किए कार्यों में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं पाया गया। सन् 1972 में रीड तथा इप्सिटिन (Reed and Epstein) ने ''लघु हस्तक्षेप'' के द्वारा अल्पकालीन उपचार की अवधारणा को प्रस्तुत किया जिसमें समय सीमा के अन्तर्गत सकारात्मक ढंग से क्रमिक लक्ष्य के प्रभावों को प्राप्त किया जा सकता है। दूसरों शब्दों में कहा जा सकता है कि कार्योन्मुख समाज कार्य अभ्यास, सेवार्थी की समस्या समाधान हेतु अत्यधिक सन्निकट है, और जिसके आधार पर किसी भी क्रिया को करने में यह अत्यधिक अभिप्रेरणात्मक है।

प्रारम्भ से ही कार्योन्मुख समाज कार्य प्रारूप, वैयक्तिक समाज कार्य की मुख्यधारा के अन्तर्गत विकसित हो रहा था और इस प्रारूप को विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में स्वीकार किया गया जिससे इसके विकास में वृद्धि हुई। इस प्रारूप को बच्चों, परिवारों, वृद्धों, वृहत् स्तर पर जन कल्याण संस्थाओं, स्वैच्छिक संस्थाओं, विद्यालय तथा हास्पिटल इत्यादि पर जांचा तथा परखा गया है। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय कार्य, दिन-प्रतिदिन के कार्य, घरेलू कार्य अभ्यासकर्ताओं तथा छात्रों द्वारा व्यक्तिगत समूह और समुदायों की कठिनाइयों एवं समस्याओं इत्यादि को विस्तृत रूप में एक निर्देशिका समाज कार्य एक सामान्य अभ्यास विधि है जिसकी उपयोगिता को समाजकार्य की अन्य अभ्यास विधियों के साथ मूल्यांकन व जांच करके प्रभाविकता को समझ सकते हैं।

प्रक्रिया के अन्तर्गत, कार्य उन्मुख वैयक्तिक कार्य को कार्योन्मुख अभ्यास के रूप में समझ सकते हैं जो कि यह स्पष्ट करता है कि इसका विकास व्यक्तिगत उपचरात्मक शुरूआत से वृहत् स्तर पर किया जाने लगा, सापेक्ष रूप से संकुचित अभ्यास से अमूलकारी अभ्यास की ओर अग्रसर हुआ है जोकि सहभागिता, सशक्तीकरण और दमनकारी अभ्यास से सम्बन्धित विचारों की वास्तविकता को स्वीकार करती है।

1.2.1 डोयल एवं मार्श: कार्योन्मुख प्रारूप (Doel and Marsh: Task Centred Model)

डोयल एवं मार्श ने कार्योन्मुख प्रारूप को ब्रिटिश परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया। कार्योन्मुख समाज कार्य अभ्यास को समस्या का समाधान करने हेतु लोगों की सहायता के लिए एक विधि के रूप में वर्णन पहली बार रीड तथा इप्सिटीन ने सन् 1972 में किया है। यह समाज कार्य का एक व्यवस्थित प्रारूप है जो कि संसगठित तथा सुस्पष्ट है। इस अभ्यास को करने की एक 'अभ्यास तकनीकी' है जिसके द्वारा शोध के माध्यम से यह जाना जा सकता है कि कौन सा कार्य उचित है और कौन सा कार्य ठीक नहीं है। कार्योन्मुख अभ्यास, दमनकारी मूल्य पर आधारित है जो कि दमन तथा शक्ति के मुद्दों को स्पष्ट करता है। दोनो त्वरित रूप से कार्यकर्ता तथा सेवा उपयोगकर्ता और वृहत् सामाजिक परिप्रेक्ष्य में सामना करना पड़ता है।

एक समाज कार्यकर्ता के लिए प्रवेश का बिन्दु प्रायः धूमिल होता है। कार्यकर्ता के लिए किसी भी प्रकार का सम्पर्क अस्पष्ट हो सकता है अथवा सेवा प्राप्त करने वाले के लिए अथवा दोनों के लिए सम्भव है कि सहभागी स्पष्ट हो लेकिन विपरीत उद्देश्यों के लिए।

अभ्यासकर्ताओं के लिए आवश्यक है कि कार्यविधियों का प्रयोग उन कारकों के लिए करे जो कि पाये गए हैं। अभ्यासकर्ताओं को चाहिए कि वह जहां तक सम्भव हो सके इस प्रक्रिया को अपनाए जिससे कि समझौते तक पहुंचा जा सके। उपरोक्त के आधारपर कहा जा सकता है कि यह सेवा प्राप्त करने वाले के लिए संवेदनशील है जिस परिपे्रक्ष्य में सहभागी की क्षमताओं का सापेक्ष रूप से उपयोग किया जा सकता है।

यहां पर, वास्तव में यह वाद-विवाद का विषय है। सहभागिता को विस्तारित किया जाना सम्भव है। डोमिनिली (Dominille, 1996) ने लिखा है कि सेवार्थी के सम्बन्ध में सहभागिता को विस्तारित किया जाना कार्योन्मुख अभिगम के द्वारा संवेदनशील मामले बाकी रह जाते हैं। आपने पाया कि वित्तीय बाधाएं, नीतिगत ढांचे और अभ्यासकर्ता के मूल्य सीमाओं का निर्धारण करते हैं जिससे कि पूर्व में ही वास्तविक रूप शक्ति का आदान-प्रदान होने की सम्भावना होती है। वास्तव में इस प्रकार के कारक समाज कार्य के सभी हस्तक्षेपों में सामान्य है जब विधियों को प्रयोग में लाया जाता है। जबकि कार्योन्मुख समाज कार्य प्रारूप यह आश्वासन देता है कि शक्ति का विचार विमर्श किए गए कार्य का भाग है।

1.3 कार्योन्मुख कार्य (Task-Centred Work)

कार्योन्मुख कार्य में, कार्यकर्ता उन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है जो कि सेवार्थी द्वारा व्यक्त की जाती है। समाज कार्य का कोई भी सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि समस्या का जन्म कैसे हुआ है, समस्या क्या है, और समस्या का समाधान करने के लिए सेवार्थी के साथ कैसे कार्य किया जाए। संक्षिप्त कार्य, निश्चित समय सीमा में, इस अभिगम की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। कार्योन्मुख कार्य समस्या को समझने के लिए:-

- सेवार्थी को स्वीकार करना,
- समस्या का समाधान वाह्य सम्पर्क तथा कार्यकर्ता के साथ समस्या को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना, तथा
- उन आवश्यकताओं का पता लगाना जिससे सेवार्थी परिवर्तन को स्वीकार करे।

सेवार्थी की उन आवश्यकताओं को ज्ञत करना जो कि अप्राप्त है बल्कि किसी अन्य वाह्य व्यक्ति द्वारा बतायी गयी हो। रीड के अनुसार (1992) समस्या को स्वीकार करना सहभागिता के लिए आवश्यक हो जाता है। डोमल तथा मार्श ने स्पष्ट किया है कि औपचारिक प्रक्रियाओं द्वारा समस्या को समझा जा सकता है जैसे न्यायालयों द्वारा निर्देशित कार्य।

1.3.1 रीड के अनुसार समस्याओं के प्रकार (Types of Problems Acoording to Reed)

रीड ने समस्याओं के प्रकारों का वर्गीकृत किया है जो कि कार्योन्मुख कार्य हेतु प्रभावी है।

- अन्तरवैयक्तिक द्वन्द्ध,
- सामाजिक सम्बन्धों में असंतुष्टि,
- औपचारिक संगठनों के साथ समस्या,

- भूमिका प्रतिपादन में कठिनाइर्,
- निर्णय लेने में समस्या,
- क्रियात्मक सांवेगिक तनाव,
- अपर्याप्त संसाधन, एवं
- मनोवैज्ञानिक एवं व्यवहारिक समस्याएं।

कार्यकर्ता सेवार्थी के समस्या समाधान व्यवहार को समझने का प्रयास करता है विशेषकर समस्या के कारणों को और समस्या समाधान के लिए। कार्यकर्ता सेवार्थी के मनोबल तथा निर्देशों का आंकलन करता है जिसे वह चाहता है। कुछ आवश्यकताएं अन्य को सहारा देती है जबकि कुछ विपरीत कार्य करती है। आवश्यकताएं कार्य शुरू करने के लिए प्रेरित करती है लेकिन सेवार्थी व्यवस्था में विश्वास करता है और उसी के अनुरूप अपनाए गये मार्गों का अनुसरण करता है।

1.3.2 कार्योन्मुख कार्य हेतु प्रक्रिया (Process for Task-Centred Work)

रीड ने (1978) कार्योन्मुख कार्य हेतु प्रक्रिया को प्रस्तुत किया है जो कि निम्नवत् हैं:-

1. सम्भावित समस्याओं की पहचान करना जिससे कि सेवार्थी अपनी समस्याओं को स्वयं वर्णित करसके, में सहायता करना।
2. समस्या को संक्षिप्त करना तथा कार्यकर्ता का समस्या के प्रति दृष्टिकोण का परीक्षण करना।
3. सम्भावित समझौते पर पहुंचना जिससे कि सेवार्थी मुख्य समस्या को देख सके।
4. समाधान रहित अथवा अवांछित समस्या की चुनौती को परिभाषित करना।
5. अतिरिक्त समस्याओं को उठाना जिसे सेवार्थी द्वारा प्राथमिकता के आधार पर स्वीकार किया गया हो जहां पर सेवार्थी द्वारा समस्या को नहीं समझा गया हो अथवा स्वीकार किया गया हो।
6. यदि आवश्यक हो तो अन्य चीजों को सम्मिलित करना।
7. संयुक्त रूप से कारणों का आंकलन करने जिससे कि संदर्भित किया जा सके।
8. समस्या कब, कहां और कैसे उत्पन्न हुई,को संक्षिप्त रूप देना।
9. समस्या को स्पष्ट का, आवश्यक हो लिखित रूप में।
10. वर्तमान समस्या के लिए स्पष्ट आधारभूत स्तरों को प्रस्तुत करना तथा
11. आवश्यक परिवर्तन के लिए निर्णय करना।

1.4 कार्य-उन्मुख सिद्धान्त:(Task Centred Theory: Dinitto and McNeece)

कार्य-उन्मुख सिद्धान्त एक अभ्यास अभिगम है, जिसका विकास समाज कार्य की एक शाखा के रूप में सन् 1960 के दशक में हुआ। जो कि समस्या के समाधान की विशेषता पर आधारित है। कार्योन्मुख अभिगम के अन्तर्गत तीन चरणों में सेवार्थी की सेवायें की जाती है जो कि क्रमशः विषय नियोजन(Case Planning), लागू करने (Implemention); तथा समापन (Termination) पर आधारित है। कार्योन्मुख सिद्धान्त की प्रणाली एक

अभ्यास प्रारूप अथवा सैद्धान्तिक अभिगम दोनों के रूप में अपनाया जाता है। यह इस बात पर बल देता है कि एक लघु काल में नियोजन तथा कार्यों की पूर्णता के साथ सेवार्थी की सहायता करके उसकी समस्या का समाधान सापेक्ष रूप से किया जा सकता है। समाज कार्य अभ्यास में प्रयोग लाये जाने वाले सिद्धान्तों के अन्तर्गत कार्योन्मुख सिद्धान्त प्रयोगसिद्ध शोध को स्पष्ट करता है जो कि यह वर्णित करता है कि एक तकनीकी के द्वारा सेवार्थी की विशेष समस्याओं को लक्षित करते हुए उसे दूर किया जा सकता है जिससे कि वह अपने को पहचान सके, समझ सके तथा वह क्या चाहता है, को जान सके।

1.4.1 कार्योन्मुख सिद्धान्त की मुख्य अवधारणाएं (Key Concept of Task-Centred Theory)

कार्योन्मुख सिद्धान्त में अभ्यासकर्ता सेवार्थी सम्बन्ध(Practioner-Client Relatioship),, संदर्भित परिवर्तन (Contextual Change), संक्षिप्तता (Brevity) तथा आधाभूत प्रक्रिया (Basic Procedure) मुख्य अवधारणाएं हैं। इन मुख्य अवधारणाओं का विस्तृत वर्णन नीचे किया गया है:-

अभ्यासकर्ता सेवार्थी सम्बन्ध

कार्योन्मुख सिद्धान्त के अन्तर्गत अभ्यासकर्ता सेवार्थी सम्बन्ध महत्वपूर्ण कुंजी होती है। कार्योन्मुख सिद्धान्त के अनुसार एक सुदृढ़ अभ्यासकर्ता सेवार्थी सम्बन्ध सेवार्थी की समस्याओं का आंकलन करने तथा उसको दूर करने के लिए वास्तविक रणनीतियों को दूर करने के लिए उसका संचालन आवश्यक है। अभ्यासकर्ता सेवार्थी सम्बन्ध की प्रभावशीलता सेवार्थी की इच्छा तथा सम्प्रेरणा पर निर्भर करती है जिससे कि निर्धारित कार्यों के द्वारा निश्चित किये गये लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके और वह परिवर्तन के लिए तैयार रहे। एक कार्यकर्ता का मुख्य कार्य सेवार्थी को इस प्रकार से सहायता देना है कि वह परिवर्तन के लिए तैयार हो और अपने कार्य को सम्पूर्ण करने के लिए तत्पर हो। कार्यमुक्त सिद्धान्त सेवार्थी के लिए उत्प्रेरक का कार्य करता है। कार्योन्मुख सिद्धान्त विशिष्ट कार्यों सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता है जिससे कि एक सेवार्थी अपनी व्यावहारिक समस्याओं को समाप्त कर सके। यदि यह कार्य सामाजिक परिप्रेक्ष्य में सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाता है तो अभ्यासकर्ता सेवार्थी को सहायता के लिए प्रोत्साहित करता है और परिवर्तन के लिए तैयार करता है।

संदर्भित परिवर्तन

कार्योन्मुख सिद्धान्त के अन्तर्गत सेवार्थी संदर्भित परिवर्तन के लिये समस्या के विरूद्ध संघर्ष करता है और समस्या को दूरे करने का प्रयास करता है। कार्योन्मुख सिद्धान्त सेवार्थी की व्यवहारात्मक समस्याओं को कम करने के लिये सामाजिक परिप्रेक्ष्य में विशेष कार्यों को प्रस्तुत करता है जिससे कि सेवार्थी सामन्जस्य स्थापित कर सके। यदि यह कार्य सामाजिक परिपे्रक्ष्य के संदर्भ में सफल हो जाते है तो अभ्यासकर्ता सेवार्थी को प्रोत्साहिक करता है तथा स्थिर परिवर्तन के लिए सहायता करता है। जबकि सामाजिक परिप्रेक्ष्य के द्वारा सेवार्थी को वाह्य रूप से इस प्रकार प्रेरित किया जाता है कि वह नियन्त्रण एवं प्रभावी रूप से अपने कार्यों को सफलतापूर्वक पूर्ण कर सके। उदाहरण के लिये एक अभ्यासकर्ता एक ऐसे सेवार्थी जोकि क्रोधी स्वभाव का है, को यह सलाह देता है कि वह क्रोध के समय दस तक गिने परन्तु सामाजिक परिप्रेक्ष्य में सेवार्थी को अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। क्योंकि वाह्य कारक अपना प्रभाव डालते रहते हैं। संदर्भित परिवर्तन के अन्तर्गत सेवार्थी तभी सफल हो सकता है जब सामाजिक परिप्रेक्ष्य के आधार पर उसे यथा पारिवारिक सदस्यों, मित्रों तथा सहकर्मी से सहयोग प्राप्त हो।

कार्योन्मुख सिद्धान्त का प्रयोग निश्चित समय-सीमा पर किया जाता है। रीड (1996) ने स्पष्ट किया है कि निश्चित समय-सीमा उपचार के द्वारा वही निष्कर्ष प्राप्त किये जा सकते हैं जो कि दीर्घकालीन उपचार पर प्राप्त होते

हैं। अन्य कई अध्ययन इस बात की पुष्टि करते है कि उपचार की निश्चित सीमाएं कार्योन्मुख सिद्धान्त की प्रभावशीलताओं को कम नहीं करती है।

संक्षिप्तता

कार्योन्मुख सिद्धान्त में संक्षिप्तता की महत्वपूर्ण भूमिका है। संक्षिप्तता अधिकतर प्रयोग वहाँ पर किया जाता है जहाँ पर लागत को कम रखना होता है और जिसका भुगतान तृतीय पक्ष ;यथा जीवन बीमा कंपनियों अथवा और सरकारी संस्थाओंद्ध के द्वारा किया जाता है। जिसमें तृतीय पक्ष के द्वारा इस बात की माँग का जाती है कि समाज कार्यकर्ता तथा अन्य सेवा प्रदान करने वाले लोग प्रभावी रूप से कम समय में हो सके।

आधारभूत प्रक्रिया

कार्योन्मुख सिद्धान्त आधारभूत प्रक्रिया पर बल देता है। यह उपचार की आधारभूत प्रक्रिया चरणबद्ध अथवा एक श्रृंखला को स्पष्ट करती है, जिसके आधार पर सेवार्थी का उपचार किया जाता है। यह उपचार की श्रृंखला तथा चरण छः से बारह सप्ताह तक हो सकते हैं। इस प्रक्रिया को लागू करना तथा उपचार के विच्छेदित चरणों को सम्मिलित किया जाता है। लेकिन विषय नियोजन करने से पूर्व सेवार्थी को सचेत कर देना चाहिए। जब सेवार्थी संस्था में आता है अपनी मनोवृत्तियों को प्रभावित करते हुए आवश्यक परिवर्तन के लिए उसे तैयार किया जाता है जिससे कि उसकी समस्या का समाधान किया जा सके। सेवार्थी सामान्यतः स्वेच्छा से संस्था में आता है और अपनी व्यवहारात्मक समस्याओं का समाधान प्राप्त करने के लिए सहायता प्राप्त करता है। जो कि कार्य तथा परिवर्तन के महत्व को समझता है। कई स्थितियां ऐसी भी होती है जब सेवार्थी बिना इच्छा के संस्था में प्रवेश करता है यथा न्यायालय आदेश अथवा पारिवारिक दबाव में। सचेत की जाने वाली क्रियाओं के द्वारा सेवार्थी को संदर्भ संस्थाओं में भेजा जाता है जिससे कि उसकी सोच तथा उसके व्यवहार में परिवर्तन लाया जा सके।

विषय नियोजन

कार्योन्मुख सिद्धान्त के प्रथम चरण में विषय नियोजन महत्वपूर्ण चरण हैं। इस चरण में समाज कार्यकर्ता तथा सेवार्थी एक साथ मिलकर के समस्याओं को जानने का प्रयास करते हैं। प्राथमिकताओं को निर्धारित करते हैं तथा आवश्यक हस्तक्षेप के लिए तैयार होते हैं। समाज कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्या को पहचानते तथा प्राथमिकताओं को निर्धारित करते हुए वास्तविकता को जानने का प्रयास करता है और इस प्रकार वह सेवार्थी की सहायता करता है। बिना इच्छा की स्थिति में समाज कार्यकर्ता सेवार्थी के साथ कार्य करते हुए सेवार्थी की व्यक्तिगत प्राथमिकताओं को समझता है। तत्पश्चात् उसे संदर्भित संस्थाओं में भेजता है।

अनुबन्ध

कार्योन्मुख सिद्धान्त का दूसरा चरण अनुबन्ध है जिसमें कार्यकर्ता तथा सेवार्थी एक साथ मिलकर के हस्तक्षेप के लिए अनुबन्ध को विकसित करते है और लक्ष्यों तथा कार्यों को निर्धारित करते हैं। समस्याओं की प्राथमिकता के आधार पर कार्यकर्ता तथा सेवार्थी एक साथ कार्य करते हुए लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि लक्ष्य को प्राप्त करने का क्रम क्या होगा, इसके लिए विशिष्ट लक्ष्यों को पहचाना जाता है तथा सेवार्थी और कार्यकर्ता कार्यों की पहचान करते हुए सेवार्थी की किस प्रकार से सहायता की जाती है कि वह उपचारात्मक लक्ष्य तक पहुंच सके। इस पूर्ण प्रक्रिया के दौरान कार्यकर्ता सेवार्थी को आलम्बन तथा परामर्श प्रदान करता रहता है। हस्तक्षेप की विशिष्ट सूची को विकसित करते हुए कार्यकर्ता सेवार्थी की प्रगति का मूल्यांकन करता रहता है। यदि सेवार्थी को किसी नयी समस्या से ग्रसित होता है तो अनुबन्ध को समय पर दोहराता है।

समस्या का समाधान

कार्योन्मुख सिद्धान्त के तीसरे चरण में समस्या का समाधान करने हेतु अनुबन्ध को लागू किया जाता है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक समस्या का गहन से अध्ययन करते हुए विशेष रूप से कार्यों को सम्पादित किया जाता है। सामाजिक परिप्रेक्ष्य में समस्याएं यथा घर, विद्यालय, कार्यस्थल, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, पारिवारिक संरचना, समान समूह संरचना तथा सांस्कृतिक को परिभाषित किया जाता है। इस प्रक्रिया में संज्ञानात्मक तथा भावनात्मक कारकों का भी पता लगाया जाता है। इसके अतिरिक्त उन स्रोतों तथा संसाधनों का भी पता लगाते हुए लक्ष्यों की पहचान की जाती है। जिससे कि कार्य को पूरा किया जा सके, अवरोधों को दूर किया जा सके तथा कार्य पूर्ण हो जाने के पश्चात् सेवार्थी की प्रगति का मूल्यांकन किया जा सके।

समापन

कार्योन्मुख सिद्धान्त का अन्तिम चरण समापन है। यदि सेवार्थी के द्वारा निश्चित किये गये कार्यों तथा निर्धारित उपचारात्मक लक्ष्यों को पूर्ण कर लिया जाता है तो उपचार की प्रक्रिया को समाप्त कर दिया जाता है। यदि निश्चित कार्य पूरा नहीं हो पाता है अथवा लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल रहते हैं तो समाज कार्यकर्ता तथा सेवार्थी समस्या का समाधान करने हेतु उपचार की प्रक्रिया को बढ़ा सकते है अथवा किसी नये अभिगम को अपनाया जा सकता है अथवा बिना इच्छा की स्थिति के अन्तर्गत समाज कार्यकर्ता सेवार्थी के लगातार उपचार के लिए सिफारिश कर सकता है। उपचार के पश्चात् सामान्यतः प्रक्रिया की समाप्ति के बाद कार्यकर्ता तथा सेवार्थी लगातार प्रगति का मूल्यांकन करते रहते हैं।

कार्योन्मुख सिद्धान्त में व्यक्तियों, परिवारों और समूहों की समस्याओं का समाधान करने के लिए हस्तक्षेप की प्रक्रिया को अपनाया जा रहा है। इस सिद्धान्त को विभिन्न सेवार्थी व्यवस्थाओं के साथ भी प्रयोग मे लाया जाता है। यथा विद्यालयी बच्चों के साथ, वृद्धों के साथ, किशोरों के साथ इत्यादि।

1.5सारांश

सारांश के रूप में कार्योन्मुख समाज कार्य अभ्यास व्यवस्थित प्रक्रिया के द्वारा सेवार्थी की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हुए समायोजन सम्बन्धी समस्याओं को दूर करता है। जिससे कि सेवार्थी पर्यावरण के साथ समायोजन स्थापित कर सके और एक संतोषजनक जीवन को जी सके।

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) कार्योन्मुख समाज कार्य पर अपने विचार दीजिए।

(2) डोयल एवं मार्श के कार्योन्मुख प्रारूप पर प्रकाश डालिए।

(3) डीनिटों एवं मैक्नीस के कार्य-उन्मुख सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए।

(4) कार्योन्मुख सिद्धान्त की मुख्य अवधारणाओं को स्पष्ट कीजिए।

(5) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(अ) रीड के अनुसार समस्याओं के प्रकार

(ब) आधारभूत प्रक्रिया

(स) अभ्यासकर्ता सेवार्थी सम्बन्ध

(द) संदर्भित परिवर्तन

1.7 सन्दर्भ पुस्तकें

- Dinitto and Mcneece, Social Work: Issues and Opportunities, In Challenging Profession, LYCEUM, Chicago, 2008.
- Malcom Payne, Modern Theory of Social Work, Mcmillan, London, 1997.
- Adams, R., Dominelli, L. and Malcom Payne, (eds.), Social Work: Themes, Issues and Critical Debates, PALGRAVE, New York, 2002.
- Specht, H., and Vickery, A., Integrating Social Work Methods, George Allen and Unwin, London, 1978.

इकाई-2

समाज कार्य का समस्या समाधान सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 समस्या समाधान सिद्धान्त

2.2.1 समस्या समाधान का अर्थ एवं प्रकृति

2.2.2 समस्या समाधान महत्वपूर्ण पहलू

2.3 समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारक

2.3.1 कार्यात्मक अटलता

2.3.2 मानसिक वृत्ति

2.3.3 प्रशिक्षण

2.3.4 समस्या का स्वरूप

2.3.5 दुश्चिन्ता

2.3.6 अवधान विस्तार

2.3.7 उद्भव

2.3.8 विक्षिप्तिकरण

2.4 समस्या समाधान के कदम

2.4.1 समस्या के स्वरूप को समझना

2.4.2 समाधान के बारें में सोचना

2.4.3 समस्या समाधान के लिए उत्तम उपायों चयन

2.4.4 उत्त्म उपाय को लागू करना

2.4.5 मूल्यांकन करना

2.5 समस्या समाधान सिद्धान्त एवं समाज कार्य

2.5.1 यहां और अब

2.5.2 स्थान

2.5.3 सम्बन्धों की उपयोगिता

2.5.4 समय

2.5.5 सहायता प्रक्रिया के चरण

2.5.6 आंशिकीकरण

2.5.7 उदाहरण

2.6 सारांश

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.8 सन्दर्भ पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

1. समस्या समाधान के अर्थ तथा प्रकृति को जान सकेंगे |
2. समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारकों से परिचित हो जायेंगे|
3. समस्या समाधान समाज कार्य सिद्धान्त के व्यवहारिक एवं सैद्धान्तिक पक्ष को समझ सकेंगे ।

2.1 प्रस्तावना

वर्तमान समय में समाज कार्य व्यवसाय अनेक प्रकार की समसयाओं का सामना कर रहा है। इन समसयाओं का सामना करते हुए समाज कार्य अभ्यास को किस प्रकार से संगठनात्मक परिधि में लाया जाए और उपयोगी बनाया जाए, यह विचारणीय है। क्योंकि समाज कार्य व्यवसाय ने पारम्परिक तरीके से हटकर संस्थागत अभ्यास के रूप से कार्य करना का प्रारम्भ किया है। इस अध्याय के मुख्य उद्देश्य समस्या समाधान समाज कार्य अभ्यास के द्वारा जीने के लिए समस्या का समाधान प्रस्तुत करना है और उपलब्ध अभ्यासों में से किस प्रकार से इसकी उपयोगिता को सिद्ध किया जा सकता है, को प्राप्त करना है। समस्या समाधान समाज कार्य सिद्धान्त, समाज कार्य का महत्वपूर्ण व्यवहारिक सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के द्वारा सेवार्थी की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया जाता है जिससे कि सेवार्थी समायोजन स्थापित कर सके। इस इकाई में समाज कार्य के समस्या समाधान समाज कार्य सिद्धान्त के विभिन्न आयामों को समझाया गया है।

2.2 समस्या समाधान सिद्धान्त

समस्याए हमेशा जटिलता की ओर ले जाती है। परन्तु कुछ समस्याए आसान होती है जिनका समाधान आसानी से हो जाता है। और कुछ समस्याएं काफी जटिल होती है जिनका समाधान आसानी से नहीं हाक पाता है। फलतः इनके समाधान के लिए व्यक्ति को कुछ विशेष प्रकार के उपायों का सहारा लेना पड़ता है।

2.2.1 समस्या समाधान का अर्थ एवं प्रकृति

समस्या समाधान एक प्रमुख संज्ञानात्मक व्यवहार हैं। समस्या समाधान उस समय आवश्यक हो जाता है जब व्यक्ति किसी लक्ष्य पर पहुंचना चाहता है परन्तु लक्ष्य आसानी से उपलब्ध नहीं होता है। जब लक्ष्य आसानी से उपलब्ध हो जाता है, तो कोई समस्या नहीं उत्पन्न होती है और तब समस्या समाधान का प्रश्न ही नहीं उठता है। जैसे, यदि हम कुछ लिखना चाहते हैं, परन्तु कलम या पेंसिल उपलब्ध नहीं, तो यह व्यक्ति के लिए समस्या होगी परन्तु यदि उसके पास कलम उपलब्ध हो तो केाई समस्या नहीं होगी। इसका स्पष्ट मतलब तब यह हुआ कि समस्या समाधान एक ऐसी स्थिति परिस्थिति होती है जिसमें लक्ष्य तक पहुंचने में कुछ चीजें बाधा उत्पन्न करती है। समस्या समाधान को मनोवैज्ञानिकों ने कुछ इसी संदर्भ में परिभाषित किया है।

बेरान **(Baron, 2001)** के अनुसार, ''समस्या समाधान में विभिन्न अनुक्रियाओं को करने या उनमें से चुनने का प्रयास सम्मिलित होता है तोकि वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति कीजा सके।''

विटिंग एवं विलियम्स **(Witting and Williams III, 1984)** के अनुसार, ''समस्या का समाधान अर्थ होता है बाधाओं को दूर करने तथा लक्ष्यों की ओर पहुंचने के लिए चिन्तन प्रक्रियाओं का प्रयोग करना।''

इन परिभाषाओं में सम्मिलित तथ्य पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि समस्या समाधान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति समस्या के वर्तमान अवस्था से लक्ष्य अवस्था की ओर जाता है। समस्या से तात्पर्य एक ऐसी अवस्था से होती है जिसमें व्यक्ति कुछ (लक्ष्य) चाहता है परन्तु वह आसानी से प्राप्त नहीं होता है।

2.2.2 समस्या समाधान महत्वपूर्ण पहलू

मैटलिन (Matlin, 1983) के अनुसार समस्या समाधान के तीन महत्वपूर्ण पहलू बतलाए गए हैं:-

मौलिक अवस्था (Original State)

मौलिक अवस्था से तात्पर्य उस अवस्था से होता है जो समस्या के सामने आने पर प्रारम्भ में उत्पन्न होती है।

लक्ष्य अवस्था (Goal State)

लक्ष्य अवस्था से तात्पर्य उस अवस्था से होता है जो लक्ष्य पर पहुंचने अर्थात् समस्या समाधान के बाद उत्पन्न होती है।

नियम (Rules)

नियम से तात्पर्य उन कार्य विधि से होता है जिसे व्यक्ति समस्या की मौलिक अवस्था से लक्ष्य अवस्था तक पहुंचने में अपनाता है।

2.3 समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारक

मनौवैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि कई ऐसे कारक है जिनका समस्या समाधान पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। ऐसे कारकों में निम्नांकित प्रमुख हैं:-

- कार्यात्मक अटलता,
- मानसिक वृत्ति,
- प्रशिक्षण,

- समस्या का स्वरूप,
- दुश्चिता,
- अवधान विस्तार,
- उद्भवन, एवं
- विक्षिप्तिकरण।

इन सभी का वर्णन निम्नांकित है:-

2.3.1 कार्यात्मक अटलता (Functional Fixedness)

कार्यात्मक अटलता से समस्या समाधान में बाधा होती है कार्यात्मक अटलता से से तात्पर्य किसी वस्तु के एक विशेष उपयोगिता या कार्य के बारे में एक अटल विचार या से होता है जिसके कारण व्यक्ति उस वस्तु उपयोग दूसरे ढंग से समस्या समाधान में नहीं पाता है। इसका मतलब यह हुआ कि कार्यात्मक अटलता में वस्तु का कोई विशेष उपयोग या काई एक अटल प्रारूप धारण कर लेता जिसके कारण व्यक्ति उस वस्तु का उपयोग हमेशा उसी ढंग से करता है। यदि समस्या का स्वरूप ऐसा होता है कि वहाँ उस वस्तु को नये ढंग कार्यरूप देना है तो उसे उसमें सफलता नहीं मिलती पाती है। स्पष्टत कार्यत्मक अटलता से यह पता चलता है। कि व्यक्ति का गत अनुभूति किस तरह से किसी समस्या कि समाधान में बाधक होता है। समस्या समाधान कार्यात्मक अटलता के इस महत्व को ने अपने प्रयोग में दिखलाया है। इनके प्रयोग में दो समूह गये- प्रयोगत्मक समूह तथा नियन्त्रित समूह प्रयोगात्मक समूह को तीन छोटे छोटे कार्ड बोर्ड बक्स दिये गये जिसमें एक में दिया की काटी, दूसरे में मोमबत्ती तथा तीसरे में कोई रखे गये थे। नियन्त्रित समूह को तीन वैसे कार्ड दिये गये थे परन्तु वे खाली थे। इसके अलावा इन्हे भी दियासलाई की कोटी मोमबत्ती तथा कील दिये गये परन्तु वे किसी बक्स में नहीं रखे हुए थे। समूह के सामाने एक ही समस्या थी। मोमबत्ती को पर इस तरह रखना था कि वह सीधे खड़ी अवस्था में जलता रहें। इसका समाधान यह था मोमबत्ती को जला लिया जाय, किसी एक कार्ड बोर्ड बक्स पर थोड़ा पिघलते मोम को गिरा दे इस पर जलाने मोमबत्ती को खड़ी स्थिति में स्थिर कर लिया जाए तथा इस बक्स को दो काटी पर रखकर उन काटियों को दिवाल में अटका दिया व ठोक दिया जाए। परिणाम में देखा गया कि प्रयोगात्मक समूह को इस समस्या का समाधान करने में नियन्त्रण समूह की अपेक्षा अधिक कठिनाई हुई। डंकर के अनुसार ऐसा इसलिए हुआ क्योकि विभिन्न वस्तुओं को कार्ड बोर्ड में रखकर दिये जाने से प्रयोगात्मक समूह के प्रयोगात्मक समूह के प्रयोज्यो के मन से बक्सो को डब्बा के रूप में की स्थिरता या अटलता उत्पन्न हो गयी । फलत ऐसे प्रयोज्यो ने बक्सों को दूसरे रूप में व्यवहत जैसे मोमबत्ती को खड़ा करने में , उसे एक समर्थन के रूप में उपयोग करने में और फिर दिवाल में कील ठोक कर उसमें रखने की बात सोच ही नहीं पाते थे। नियन्त्रिण समूह के प्रयोज्यों में ऐसी कार्यात्मक अटलता नहीं थी इसलिए उन्हें समस्या का समाधान करने में आसानी हुई। ठीक इसी ढंग का एक अन्य प्रयोग ऐडमसन द्वारा किया और डंकर के प्रयोग के परिणाम की सम्पुष्टि की गयी।

2.3.2 मानसिक वृत्ति (Mental Set)

मानसिक वृत्ति का भी प्रभाव समाधान पर पड़ता है। समस्या समाधान में कार्यात्मक अटलता जो वस्तु की एक खास विशेषता से सम्बन्धित होता है, जबकि मानसिक वृत्ति व्यक्ति की एक खास विशेषता से सम्बन्धित होता है। जब व्यक्ति किसी समस्या का समाधान करता है, तो उसमें एक खास तरह की मानसिक वृत्ति उत्पन्न हो जाती है, जो समस्या समाधानकर्ता को किसी दूसरी समस्या के समाधान में भी वही तरीका अपनाने की प्रेरणा देता है

हलांकि इस समस्या का समाधान का नया तरीका पहले से अधिक सुलभ एवं सरल रहता है। इस तरह की मानसिक वृत्ति से समस्या के समाधान में बाधा पहुंचती है। इसका प्रयोगात्मक समाधान लुचिंग्स (1942) के द्वारा पानी घड़ा समस्या पर किये गये प्रयोग से होता है। इस प्रयोग से यह स्पष्ट हुआ कि जब मानसिक वृत्ति अनुपयुक्त होती है या उपयुक्त होती है तो उससे समस्या के समाधान में मदद पहुंचाती है।

2.3.3 प्रशिक्षण (Training)

प्रशिक्षण का भी प्रभाव समस्या समाधान पर पड़ता है। समस्या समाधान की उपयुक्त प्रविधियों में प्रशिक्षण देकर समस्या समाधान को आसान बनाया जा सकता है। इस सिलसिले में एक मशहूर अध्ययन डी ल्यिू (1978) का है। इन्होंने स्कूली बच्चों का दो समूह लिया। एक समूह को एल्गोरिट्म विधि से समस्या समाधान करने की प्रशिक्षण दी गयी जिसमें उन्हें समस्या के बारे में कुछ महत्वपूर्ण निर्णय पर पहुंचना सीखलाया गया। दूसरे समूह को स्वतः शोध अन्वेषण द्वारा प्रशिक्षण दिया गया जिसमें छात्रों ने स्वयं ही दी गयी समस्याओं के बारे में निर्णय लिया। प्रशिक्षणसमाप्त होने के बाद दोनों समूहों को विशेष तरह की समस्या का समाधान करने के लिए दिया गया। परिणाम में पाया गया कि एल्गोरिट्म विधि द्वारा प्रशिक्षित समूह का निष्पादन स्वतः शोध अन्वेषण द्वारा प्रशिक्षित समूह के निष्पादन से उत्तम था। परन्तु कुछ दिनों के बाद स्वतः शोध अन्वेषण वाले समूह का निष्पादन पहले तरह के समूह से अधिक श्रेष्ठ हो गया। इसका मतलब यह हुआ कि समय बीतने के साथ स्वतः शोध अन्वेषण विधि का प्रशिक्षण समस्या समाधान में अधिक गुणकारी होता है।

2.3.4 समस्या का स्वरूप (Nature of Problem)

समस्याएं दो प्रकार की होती है। स्पष्ट समस्याएं तथा अस्पष्ट समस्याएं। समस्या के इस स्वरूप का भीप्रभाव समस्या समाधान पर पड़ता है। रिटमैन (1964) के अनुसार स्पष्ट समस्या की कई विशेषताएं होती है जो इन्हें अस्पष्ट समस्या से भिन्न करती हैं। स्पष्ट समस्या वैसे समस्या को कहा जाता है जिसमें व्यक्ति क्रमबद्ध ढंग से यह निश्चित करपाता है कि इसका समाधान सही हैः ऐसी समस्या के प्राप्त समाधान के बारे में लोगों में सहमति होती है तथा ऐसी समस्या की मौलिक अवस्था, लक्ष्य अवस्था तथा मौलिक अवस्था को लक्ष्य अवस्था में बदलने वाले नियम सभी बिल्कुल ही स्पष्ट होते हैं। अस्पष्ट समस्या में इन विशेषताओं के विपरीत गुण या विशेषता पायी जाती है।मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि अस्पष्ट समस्या का समाधान स्पष्ट समस्या के समाधान की तुलना में कठिन होता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि यह नहंी हुआ है कि अस्पष्ट समस्या का समाधान व्यक्ति कर ही नही पाता है। सच्चाई यह है कि कुछ विशेष उपायों को अपनाकर जैसे ऐसी समस्या के मौलिक अवस्था, लक्ष्य अवस्था तथा मौलिक अवस्था को लक्ष्य अवस्था में बदलने वाले नियमों का संरचित कर बहुत हद तक उनका समाधान किया जा सकता है।

2.3.5दुश्चिन्ता (Anxiety)

कुछ समस्याएं ऐसी होती हैं जिनका लक्ष्य अवस्था व्यक्ति में चिन्ता उत्पन्न कर देता है। जब अधिक मात्रा में व्यक्ति में चिन्ता उत्पन्न हो जाती है तो इसका असर समस्या समाधान पर बुरा पड़ता है और व्यक्ति समस्या समाधान ठीक ढंग से नहीं कर पाता है। मनौवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि किसी भी समस्या के लिए व्यक्ति में साधारण स्तर की चिन्ता आवश्यक है। इससे सचमुच में समस्या समाधान में एक तरह की मदद मिलती है क्योंकि इससे समाधान की प्रेरणा प्रबल होती है। परन्तु यदि इसका स्तर बहुत अधिक हो जाता है तो इससे समस्या समाधान में बाधा होने लगती है क्योंकि ऐसी स्थिति में व्यक्ति में संज्ञानात्मक भंगता उत्पन्न होने लगता है।

2.3.6 अवधान विस्तार (Span of Attention)

समस्या समाधान व्यक्ति के अवधान विस्तार से भीप्रभावित होता है। यदि व्यक्ति एक साथ समस्या के कई पहलुओं पर अवधान देने में समर्थ हो पाता है इससे वह समस्या के महत्वपूर्ण एवं महत्वहीन पहलुओं के बीच अन्तर करने में सफल हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में वह समस्या समाधान ठीक ढंग से करने से सफल हो पाता है। परन्तु यदि कुछ कारणों से वह समस्या के अधिक पहलुओं पर अवधान दे पाता है, तो इस तरह का अंतर वह नहीं कर पाता है। और ऐसों परिस्थिति में उसे समस्या समाधान में अधिक सफलता नहीं मिल पाती है। ऐसे जो प्रयेत्क व्यक्ति का अवधान विस्तार सीमित होता है। परन्तु व्यक्ति अपने विशेष प्रयास के अवधान विस्तार को कुछ हद तक बढ़ा सकता है। और ऐसी स्थिति में उसे समस्या समाधान में कुछ और अधिक सफलता प्राप्त हो सकती है।

2.3.7 उद्भव (Incubation)

समस्या समाधान पर उद्भवन का प्रभाव पड़ता है। जब व्यक्ति किसी समस्या का समाधान करते समय कुछ बिन्दु पर अपने आप को असमर्थ पाता है , तो वह थोडे समय के लिए उस बिन्दु पर हटाकर आरा करने लगाता है। इस अवस्था को उद्भवन कहा जाता है। सचाई यह कि व्यक्ति जब आराम की अवश्यक में होता है जहाँ वह चेतन रूप से भले ही समस्या समाधान पर से अपना ध्यान हटा लेता है, परन्तु अचेतन रूप वह समस्या के साधान के बारे में सोचता रहता है। परिणामतः उसे समस्या समाधान में विशेष मदद मिलती है। फलत उद्भवन का प्रभाव समस्या समाधान पर अनुकूल पड़ता है।

2.3.8 विक्षिप्तिकरण (Brain Storming)

समस्या समाधान पर विक्षिप्तिकरण का भी प्रभाव पड़ता है। विक्षिप्तिकरण से तात्पर्य एक ऐसी प्रक्रिया से होती है। जिसमें व्यक्ति को एक साथ समस्या के सभी संभावित समाधानों के बारे बतलाना होता है। इस तरह से एक सीमित समय के भीतर प्रयोज्य समस्या का जितना समाधान बतला सकता है। के लिए कहा जाता है। इस तरह के विक्षिप्तिकरण का फायदा यह होता है कि व्यक्ति द्वारा बतलाये गये विभिन्न समाधानों में कुछ उत्तम समाधान निकल आते है और इस तरह से समस्या का समाधान हो जाता है मनोवैज्ञानिकों का मत है विक्षिप्तिकरण की प्रक्रिया दो ढंग से कार्य करती है। पहला इसमें कुछ वैसे चरण भी में आते है जिनका अनुसरण करके समाधान या लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है। थाम्पसन ने अपने अध्ययन में पाया है कि विक्षिप्तिकरण उत्पन्न होने पर करीब 40 प्रयोज्यों ने पहले से अधिक समस्या का समाधान कर पाये।

इससे स्पष्ट होता कि समस्या समाधान कई कारकों द्वारा प्रभावित होता है। इन कारकों के बारे में जान लेने से समस्या समाधान कार्य के स्वरूप को समझने में काफी मदद मिलती है।

2.4. समस्या समाधान के कदम (Steps of Problem Solving)

समस्या समाधान में कई तरह के कदम होते है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस बिन्दु पर व्यक्ति किए गये विचारों में विभिन्नता रही है। फिर भी यदि हम उन सबों द्वारा किये गए तथ्यों को ध्यान में रखे तो यह स्पष्ट होगा कि समस्या समाधान में निम्नांकित पाँच स्पष्ट कदम होते है।–

- समस्या के स्वरूप समझना
- समाधान के बारे सोचना
- समस्या समाधान के विभिन्न उपायों में से उत्तम के बारे में निर्णय करना

- उत्तम उपाय को कार्यान्वित करना
- कार्यन्वित समाधान का मूल्यांकन करना

इन पांचों कदमों का वर्णन निम्नांकित है। -

2.4.1 समस्या के स्वरूप को समझना (Understanding the Nature of Problem)

किसी भी समस्या में सबसें पहली अवस्था समस्या के स्वरूप को समझने की होती है। यहाँ व्यक्ति यह समझने की कोशिश करता है। कि समस्या सुस्पष्ट है या बस्पष्ट है, उसका समाधान के लिए किन चीजों एवं किन-किन व्यक्तियों की जरूरत पड़ सकती है, आदि-आदि कहने का तात्पर्य यह है कि इस अवस्था में व्यक्ति समस्या के विभिन्न पहलुओं की पहचान करता है तथा उसके स्वरूप को समझने की अक्सर कोशिश करता है तांकि वह उसके समाधान के सभावित तरोकों अपना सके।

2.4.2 समाधान के बारें में सोचना (Generating Solutions)

समस्या समाधान की यह दूसरी अवस्था होती जिसमें समस्या समाधानकर्ता समस्या के स्वरूप निश्चित कर लेने के बाद उसके सम्भावित के बारे में से सोचता है। इसके लिए वह अपने गत अनुभूतियों का भी सहारा लेता है तथा समय में उपलब्ध स्रोतों कों टटोलता है। इस तरह से वह किसी समस्या के समाधान के बारे में कई तरह के बारे में सोच लेता है। वह प्रत्येक ऐसे समाधान की एक सूची तैयार कर लेता है। सम्भव है कि किसी समस्या के दो तरीको या उससे भी अधिक उसके सामने उपलब्ध हों ।

2.4.3 समस्या समाधान के लिए उत्तम उपायों चयन

समस्या समाधान की इस अवस्था में समस्या समाधान कर्ता दूसरी अवस्था में तय किये गये विभिन्न उपायों में से सबसें उत्तम एवं वैज्ञानिक उपाय का चयन करता है। दूसरे शब्दों में वह यह निश्चित करता है इन विभिन्न उपायों में से किस उपाय से सबसें कम समय में तथा बिना किसी तरह के त्रुटि किये ही समस्या का समाधान वह कर पायेगा। इसके लिए वह दूसरी अवस्था में चयनित प्रत्येक उपाय की उपयोगिता का तुलनात्मक करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि अमुक उपाय ही समस्या समाधान का सबसे प्रमुख एवं उपयुक्त करता है।

2.4.4 उत्तम उपाय को लागू करना

इस अवस्था में व्यक्ति चयनित को कार्य रूप देता है। दूसरे शब्दों में, वह उससे समस्या का समाधान करता है। अगर चयनित उपाय के बहुत कदम नहीं है, तथा उपाय सरल है तो समस्या का समाधान आसानी से हो जाता है। परन्तु अगर चयनित उपाय और उसमें बहुत सारे कदम सम्मिलित है तो समस्या का समाधान थोड़ा कठिन हो जाता है। कभी-कभी यह भी दिखा गया है कि सावधानीपूर्वक चयनित उपाय को जब कार्यरूप दिया जाता है तो भी समस्या का समाधान नहीं हो है और समस्या समाधान में त्रुटियों होती रहती है। इसका कारण यह है कि सम्बन्धित उपाय या चयन करने में ही या गलती हो जाती है।

2.4.5 मूल्यांकन करना

इस अवस्था में व्यक्ति समस्या समाधान के परिणाम का मूल्यांकन करता है। इस अवस्था में व्यक्ति समाधान में सम्मिलित कदमों के गुण-का परख करता है तथा इन चरणों या कदमों के महत्वपूर्ण तथ्यों या बातों को पुनः प्राप्ति सकेतों के रूप में संचित करके रखता है कि उसका उपयोग वह अन्य समान समस्याओं के समाधान में

भविष्य कर सके। स्पष्ट हुआ कि समस्या समाधान में कई कदम या चरण होते है। इन कदमों या चरणों की जरूरतों को यदि ठीक से व्यक्ति उपयोग करता है। तो समस्या का समाधान करने में उसे काफी सफलता मिलती है।

2.5 समस्या समाधान सिद्धान्त एवं समाज कार्य (Problem Solving Theory and Social Work)

हेलेन हैरिस पर्लमैन (1986) ने चिकित्सीय प्रारूप के आधार पर समस्या समाधान प्रारूप को विकसित किया। जो कि सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से अधिकतर समाज कार्यकर्ताओं द्वारा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ हस्तक्षेप के रूप में विकसित कर उपयोग में लाया जाता था। पर्लमैन का दृष्टिकोण था कि क्या चिकित्सीय प्रारूप सेवार्थी की वैयक्तिक एवं सामाजिक समस्याओं का समाधान उपयुक्त तरीके से किया जा सकता है। आपने सुझाव दिया है कि चिकित्सा प्रारूप विशेषज्ञाता पर आधारित है और अभ्यासकर्ता के प्राधिकार को आधारप्रदान करता है। पर्लमैन ने एक अन्य वैकल्पिक दृष्टिकोण को जन्म दिया जो कि समाज कार्यकर्ता को प्रोत्साहित करता है कि सेवार्थी के साथ समस्या समाधान प्रक्रिया को उत्साह, सहयोग और व्यवहारिक आलम्बन के आधार पर विशेषीकृत करे। समस्या समाधान सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि समस्या समाधान की शुरूआत, सेवार्थी द्वारा सम्भावित प्रतिक्रिया जो कि समस्या समाधान प्रक्रिया में शामिल है, समस्या को कैसे परिभाषित किया जाएगा और एक प्रक्रिया जिससे सेवार्थी तथा समाज कार्यकर्ता एक साथ मिलकर के समस्याजनित व्यवहार अथवा परिस्थितियों का समाधान करता है। समस्या समाधान सिद्धान्त में विशेषकर यहां और अब (Here and Now) स्थान (Place)सम्बन्धों के उपयोग(Use of Relationship), समय तथा आंशिकीकरण (Partialization) महत्वपूर्ण घटक है।

2.5.1 यहां और अब (Here and Now)

पर्लमैन का मानना है कि यहां और अब में, समस्या का सामना करने के लिए परिवर्तन के अवसर की इच्छा होती है। यहां और कब की स्थिति में समाज कार्यकर्ता सेवार्थी के साथ समस्या समाधान प्रक्रिया में सम्मिलित होते हुए सेवार्थी के प्रेरकों को प्रोत्साहित करता है। उदाहरण के लिए एक सेवार्थी उस बिन्दु पर पहुंच सकता है जहां पर प्रेमिका का प्रेमी मादक दृव्य लेना छोड़ता नहीं है औरहमेशा झूठ बोलता है। यह कुण्ठा प्रेमिका को प्रेरित करती है कि वह सम्बन्धों को समाप्त कर दे। इस तथ्य को स्वीकारने तथा बातचीत के आधार पर सेवार्थी के निष्कषों पर कार्यकर्ता सेवार्थी को सहारा देते हुए समझाता है कि वह सम्बन्धों को समाप्त करने के निर्णय को विमुक्त कर दे। बजाय इसके कि सेवार्थी का अपने प्रेमी के जो कि नकारात्मक मार्ग पर है उसका प्रभाव सेवार्थी के पिता के सम्बन्धों पर क्या होगा। ऐसी स्थिति में समाजकार्यकर्ता 'यहां और कैसे' की स्थिति में बनाए रखने का प्रयास करता है। यह स्थिति प्रमाणित करती है कि सेवार्थी का मामला महत्वपूर्ण है, और उचित सहारा सेवार्थी को प्रोत्साहित करने के काफी हो सकता है कि इस समय आवश्यकता के अनुरूप कार्य करे। सेवार्थी की भविष्य की स्थिति के बेहतर के लिए यदि आवश्यक होतो सम्बन्धों पर विचार-विमर्श उसके पिता के साथबाद में किया जा सकता है।

2.5.2 स्थान (Place)

जब लोग सामाजिक सेवा संस्था में जाता है तो वे लोग यह आशा करते है कि उनकी सहायता कैसे की जाएगी। वे अक्सर भय का अनुभव करते हैं। स्थान, सहायता का एक केन्द्र होता है, जहां पर लोग डरते हुए सहायता के लिए पूछताछ करते है अथवा सहायता प्राप्त करने के लिए अस्वाभावित उम्मीद करते हैं। यह सम्बन्धों कीसहायता के लिए सम्मोहित आपदा जैसी स्थिति हो सकती है। पर्लमैन ने स्पष्ट कियाहै कि सेवार्थी का ज्ञान और

आशा संस्था की आवश्यकता अनुरूप है तो संस्था के लिए सेवाएं प्रदान करता आवश्यक हो जाता है। जिससे कि सेवार्थी सहायता प्राप्त कर सकता है।

2.5.3 सम्बन्धों की उपयोगिता (Use of Relationships)

सम्बन्धों की उपयोगिता सेवार्थी के साथ करूणा तथा सहारा प्रदान करने वाले सम्बन्धों का निर्माण करने वाले कार्यों की ओर इंगित करती है। पर्लमैन ने सम्बन्धों की विशेषता को परानुभूति, देखभाल, सहारा देना तथा बढ़ाये जाने के रूप में स्पष्ट किया है। जो कि परिवर्तन के लिए पायी जाने वाली स्थिति है तथा सेवार्थी समस्या का समाधान कर सकता है यदि सम्बन्धों में ये सब गुण पाये जाते हैं।

2.5.4 समय (Time)

समय पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण घटक है जिसके विकास और वृद्धि में समय लगता है जिससे कि जीवन से सम्बन्धित विभिन्न आवश्यकताओं को जानना तथा उसका प्रबन्ध करना और समस्या का समाधान करना है। समय, समस्या-समाधान सिद्धान्त का महत्वपूर्ण एवं मुख्य तत्व है।

2.5.5 सहायता प्रक्रिया के चरण (Stages of Helping Process)

पर्लमैन के अनुसार समय समाज कार्य व्यवसाय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पर्लमैन ने स्पष्ट कि है कि सहायता प्रदान करने वाली प्रक्रिया का प्रारम्भ, मध्यान्ह तथा अन्त समय पर निर्भर करता है।

प्रारिम्भक चरण (Initial Stage)

सहायता प्रक्रिया के प्रारिम्भक चरण में अथवा सम्पर्क की स्थिति में:-

- सहायता रूपी सम्बन्धों की स्थाना,
- सेवार्थी की समस्या की पहचान,
- इच्छित लक्ष्यों की पहचान,
- समस्या पर कार्य करने के लिए प्राथमिक अनुबन्ध को विकसित करना, और
- सेवार्थी के सम्प्रेाणात्मक स्तरों, क्षमताओं, और अवसरों की खोज करना, पर केन्द्रित किया जाता है।

मध्य चरण (Middle Stage)

मध्य स्थिति अनुबन्ध के को स्पष्ट करती है। इस स्थिति मे सहायता सम्बन्धों में विशेष रूप से:-

- पहचानी गई समस्याओं का आंकलन एवं मूल्यांकन करना,
- समस्या समाधान हेतु क्रियात्मक योजना का निरूपण, और
- यदि समस्या का समाधान हो जाए तो भविष्यवाणी करना, पर केन्द्रित किया जाता है।

अन्तिम चरण (Ending Stage)

अन्तिम चरण क्रियातमक चरण होता है जिसमें:-

- लक्ष्य को प्राप्त किया गया है अथवा नहीं और कार्य पर अपनी सहमति देना,
- सहायता सम्बन्धों के समापन की शुरूआत, और

- समाज कार्यकर्ता एवं सेवार्थी मिलकर के कार्य को सम्पादित करना और जो निष्कर्ष प्राप्त हुआ है, उसका मूल्यांकन करना।

2.5.6 आंशिकीकरण (Partialization)

आंशिकीकरण की प्रक्रिया में जटिल समस्याओं के आधार और विशिष्टता को कम करना जिससे कि विमर्श के लिए प्रयास किए जा सके और दिये गये समय में सेवार्थी के द्वारा कार्य को पूर्ण किया जा सके। इस प्रक्रिया में लक्ष्यों को विशिष्ट चरणों में बांटा जाता है। विभिन्न लक्ष्यों केा उपलक्ष्यों में विभाजित किया जाता है जिसके द्वारा सेवार्थी द्वारा महसूस किए जाने वाले डर काकम किया जाता है औरपरिवर्तन का प्रयास किया जाता है तथा ऐसे प्रयास किए जाते है जिससे कि सेवार्थी अपने निर्धारित लक्ष्य के करीब हो।

समस्या समाधान सिद्धान्त का व्यवस्था सिद्धान्त की अवधारणाओं द्वारा संचालन होता है और परिस्थितिकीय परिप्रेक्ष्य में और इस प्रक्रिया में व्यक्तिगत, दम्पत्तियों, परिवारों और समूहों द्वारा समय के अन्दर उपयोग में लाया जाता है। इस प्रकार पर्लमैन द्वारा विकसित प्रारूप में लघु प्रयोगसिद्ध शोध को कराया जाता है। समाज कार्यकर्ता यह विश्वास करते हैं कि अध्यापन समस्या समाधान निपुणता लोगों को सहायता करने के लिए एक प्रभावी विधि है। शोध यह स्पष्ट करता है कि किस प्रकार से निपुणता-प्रशिक्षण अभिगम चरण बद्ध प्रक्रिया द्वारा किशोरों की समस्याओ यथा दुव्र्यवहार, अवसर इत्यादि का प्रभावी रूप से समाधान किया जा सकता है।

2.5.7 उदाहरण

X मां को ज्ञात हुआ है कि उसका बेटा J स्कूल से निलम्बित कर दिया गया है क्योंकि उसने स्कूल के अनुशासन को तोड़ा है। क्योंकि उसने वहां स्थानीय गुट के सदस्यों द्वारा पहने गये रंगीन कपड़ों को स्कूल की यूनिफार्म के स्थान पर पहना था। इस आधार पर X ने समझा कि J को गुटों ने मिलकर मूर्ख बनाया। जिससे x ने स्वीकार किया। ऐसी स्थिति X नाराज तथा डरी हुई थी। इस स्थिति में सहायक प्रधानाचार्य से मिली। वह इसके लिए चिन्तित थी कि किस प्रकार से J को गुटों से अलग रखा जा सके। पर्लमैन ने स्पष्ट किया है कि सम्भावित शक्ति का प्रयोग परिवर्तन के लिए और गतिविधियों को तब लाभबन्द किया जाए जब 'लोहा कार्य हो'। X यह महसूस करती है कि यह सही समय अनिवार्य है जो संवेदनशील है और अब यह परिवर्तन के लिए उपयुक्त समय है।

X यह डरा हुआ महसूस कर रही थीकि वह किस प्रकार से सहायता के लिए स्कूल जाये। फिर भी यह विश्वास था कि लोग उसके बेटे की सहायता करेंगे। जबकि X की अपेक्षाएं पूर्णरूप से उसके अचानक सामने आने तथा स्कूल स्तर पर सहायता कैसे होगी, पर निर्भर करती हैं।

X तथा J के अध्ययन में यदि समाज कार्यकर्ता द्वारा सकारात्मक और प्रोत्साहन देने वाली अनुयिा करता है तो सम्भव है कि X इस उम्मीद से उसको प्राप्त होगी।

यह परिणाम X को प्रोत्साहित करता है कि किस प्रकार से वह J को गुटों से दूर रख सकेगी। जबकि समाज कार्यकर्ता X द्वारा व्यक्त किए गये प्रकरण पर कोई अनुयिा नहीं करता है और गुटों द्वारा किए जा रहे कार्यों पर केन्द्रित होता है तो J के लिए क्या किया जाएगा। जिसके कारण X सम्भवतः अपने को हताश महसूस करेगी यहां तक स्वेच्छा से सहायता नहीं प्राप्त करते हैं। वास्तव में समाज कार्यकर्ता उन सेवार्थियों के साथ कार्य करता है जो कि पैरोल पर अथवा दोषी अथवा अन्य ऐसे लोग जिन्हें न्यायालय द्वारा सेवाएं प्रदान करने के लिए निर्देशित किया गया हो। सभी स्थितियों में, समाज कार्यकर्ता ऐसे सम्बन्धों को स्थापित करने का प्रयास करता है जिससे कि सेवार्थी के प्रति करूणा तथा दयालुता का भाव स्पष्ट हो।

2.6 सारांश

सारांश के रूप में समस्या समाधान समाज कार्य अभ्यास व्यवस्थित एवे क्रमबद्ध प्रक्रिया के द्वारा सेवार्थी की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हुए समायोजन सम्बन्धी समस्याओं को दूर करता है। जिससे कि सेवार्थी अपनी समस्याओं को दूर करते हुए समायोजन स्थापित कर सके और एक संतोषजनक जीवन के स्तर को प्राप्त कर सके।

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) समस्या समाधान सिद्धान्त पर अपने विचार दीजिए।

(2) समस्या समाधान का अर्थ एवं प्रकृति पर प्रकाश डालिए।

(3) समस्या समाधान के कदम को स्पष्ट कीजिए।

(4) समस्या समाधान सिद्धान्त एवं समाज कार्य को स्पष्ट कीजिए।

(5) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(अ) कार्यात्मक अटलता

(ब) सहायता प्रक्रिया के चरण

(स) आंशिकीकरण

(द) विक्षिप्तिकरण

2.8 सन्दर्भ पुस्तकें

- Dinitto and Mcneece, Social Work: Issues and Opportunities, In Challenging Profession, LYCEUM, Chicago, 2008.
- Malcom Payne, Modern Theory of Social Work, Mcmillan, London, 1997.
- Adams, R., Dominelli, L. and Malcom Payne, (eds.), Social Work: Themes, Issues and Critical Debates, PALGRAVE, New York, 2002.
- Specht, H., and Vickery, A., Integrating Social Work Methods, George Allen and Unwin, London, 1978.

इकाई-3

संज्ञानात्मक व्यवहार तथा पारिस्थितिकी समाज कार्य सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 संज्ञानात्मक व्यवहार अभ्यास सिद्धान्त

3.3 संज्ञानात्मक व्यवहार सिद्धान्त की प्रक्रिया

3.4 संज्ञानात्मक व्यवहार सिद्धान्त एवं समाज कार्य

3.5 पारिस्थितिकी समाज कार्य सिद्धान्त की अवधारणा

3.6 पारिस्थितिकी समाज कार्य सिद्धान्तः डीनिटों एवं मैक्नीस

3.7 सारांश

3.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.9 सन्दर्भ पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य के अध्ययन के बाद आप -

1. संज्ञानात्मक व्यवहार अभ्यास सिद्धान्त के सम्बन्ध में शूटन तथा स्काट के विचारों को जान सकेंगे |
2. संज्ञानात्मक व्यवहार सिद्धान्त की प्रक्रिया समझ जायेंगे।
3. संज्ञानात्मक व्यवहार सिद्धान्त तथा समाज कार्य के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे |
4. पारिस्थितिकी समाज कार्य सिद्धान्त की अवधारणा तथा आवश्यकता को समझ सकेंगे|
5. पारिस्थितिकी समाज कार्य सिद्धान्त के व्यवहारिक एवं सैद्धान्तिक पक्ष से परिचित हो सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

वर्तमान समय में समाज कार्य व्यवसाय अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना कर रहा है। इन चुनौतियों का सामना करते हुए समाज कार्य अभ्यास को किस प्रकार से संगठनात्मक परिधि में लाया जाए, यह विचारणीय है। क्योंकि समाज कार्य व्यवसाय से पारम्परिक तरीके से हटकर के संस्थागत रूप से अभ्यास करने का कार्य प्रारम्भ हुआ है। इस अध्याय के मुख्य उद्देश्य कार्योंन्मुख समाज कार्य अभ्यास के द्वारा जीने के लिए उत्तर प्राप्त करना नहीं है बल्कि उपलब्ध अभ्यासों में किस प्रकार से इसकी उपयोगिता को सिद्ध किया जा सकता है, को प्राप्त करना है। संज्ञानात्मक व्यवहार समाज कार्य सिद्धान्त, समाज कार्य का महत्वपूर्ण सिद्धान्त, है। संज्ञान व्यवहार हस्तक्षेप इस मानयता पर आधारित है कि व्यवहार, जिसे हम विभिन्न प्रकार से सीखते रहे है तथा पूर्व में सीख हुऐ व्यवहार का परिणाम है, के द्वारा सेवार्थी की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया जाता है जिससे कि सेवार्थी समायोजन स्थापित कर सके। इस इकाई में समाज कार्य के कार्योंन्मुख समाज कार्य सिद्धान्त के विभिन्न आयामों को समझाया गया है।

प्रारम्भिक समय से ही समाज कार्य ने व्यक्तियों की समायोजन अनेक प्रकार की सम्बन्धी समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया है। इन समस्याओं का सामना करते हुए सेवार्थी सामाजिक पर्यावरण के साथ समायोजन स्थापित नहीं कर पाता है। पारिस्थितिकी समाज कार्य सिद्धान्त समस्या को सम्पूर्णता का दृष्टि से स्वीकार करता है। इस सिद्धान्त की सहायता से समाज कार्य व्यवसाय पारम्परिक तरीके से हटकर के समायोजन सम्बन्धी समस्याओं को दूर करने का प्रयास करता है। इस इकाई का मुख्य उद्देश्य पारिस्थितिकी समाज कार्य सिद्धान्त अभ्यास के द्वारा सेवार्थी की समायोजन सम्बन्धी समस्याओं समाप्त करना है।

3.2 संज्ञानात्मक व्यवहार अभ्यास सिद्धान्त(Cognitive Behaviour Social Work Theory)

समाज कार्य के अन्तर्गत विगत वर्षों में सैद्धान्तिक और अनुभवपरक शोध का विस्तार प्रदर्शित हो रहा है। क्योकि अधिगम सिद्धान्त में रूचि और जागरूकता का प्रसार नही हो पाया है। फिशर (1974) ने इसी को आधार बनाते हुए बिट्रिश संदर्भ में बताया है कि अधिगम सिद्धान्त ने बीते तीस वर्षो में अपेक्षित परिणाम नही दिया। प्रस्तुत अध्याय में हम इससे संबधित कारणों पर विचार करेगे।

इस अवधि में शब्दावली परिवर्तन का महत्व वे देखनें को मिलता है। उदाहरण के तौर पर पियाने द्वारा लिखित (1991) समाज कार्य के सिद्धान्त में संज्ञानात्मक एवं व्यवहारात्मक प्रकार को सैद्धान्तिक आधार के साथ अलग-अलग अध्यायों में रखा गया है। 1993 में प्रकाशित 'बिहेक्यिरल साइकोथेरेपी' नामक पत्रिका ने अपना नाम परिवर्तित कर बिहेवियरल एण्ड कग्नेटिव साइकोथेरेपी (भाग-21 अंक-2) रखा। शेल्डेन ने अपने लिखित शोध पत्र बिहेवियरल मोडिफिकेशन (1982) को संशोधित करते हुए (1995) में कग्नेटिव बिहेवियरल एण्ड कग्नेटिव साइकोथेरेपी को प्रकाशित किया। जिसमें किसी समस्या की पहचान करने के किस प्रकार का व्यवहार किया जाये तथा इसमें संज्ञानात्मकता की क्या भूमिका होगी इस पर भी वृहद चर्चा की गई।

3.2.1 संज्ञानात्मक व्यवहार सिद्धान्तः शूटन (Cognitive Behaviour Theory: Shutton)

संज्ञानात्मक व्यवहार सिद्धान्त के विकास में शूटन (2000) ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। एक सचेत परीक्षण में, संज्ञान की भूमिका है कि वह परीक्षण व्यवहार में उसकी पुनरावृत्ति हो रही है या नहीं, साथ ही एक

समाज कार्यकर्ता होने के नाते ऐसी परिस्थिति में सहायता कैसे की जाये तथा दूसरी तरफ सीखे हुए व्यवहार जो समस्यों के कारक है उन्हे अभ्यास की कुशलता में वृद्धि कर किस प्रकार से उपचार करना चाहिये, विचारणीय है।

समाज कार्य की उपयोगिता का किसी प्रक्रिया के द्वारा वर्णन करने या उदाहरण देने से पूर्व में यह चर्चा या वर्णन करना आवश्यक है कि अधिगम के सिद्धान्त से क्या तात्पर्य है तथा कौन सा संज्ञान व्यवहार हस्तक्षेप इस पर आधारित है कि व्यवहार, अधिकतर हम विभिन्न प्रकार से क्या सीख रहे है तथा पूर्व में सीखने का परिणाम है ।

कभी-कभी हम बिना सोच विचार के सीख लेते है। इस तरह के सीखने के सबंध को शास्त्रीय अनुबंधन कहा जाता है। जिसमें पावलव द्वारा कुत्ते पर किया गया प्रयोग सम्मिलित है।

अतः हम अक्सर दूसरों के किये गये प्रतिक्रियाओं से स्वयं के व्यवहार को सीखते है साथ ही हमारा व्यवहार पुनर्बलन के आधार पर स्थापित होता है (एक स्वैच्छिक कार्यकर्ता आक्सफेम में काम करने का इच्छुक है क्योकि वहाँ उसे लोगों से मिलना तथा एक संतोषजनक लाभ देने वाला मैत्रीपूर्ण वातावरण मिलता है, परन्तु बहुत सारे लोग इसमें कार्य नही करना चाहते भले ही उन्हे इसका उचित मूल्य मिले)। इस तरह के सीखने को अनुबंधन कहते है। यहां यह देखा जा सकता है कि कैसे हमारे विचार और संज्ञान यह निर्णय ले पा रहे है कि व्यवहार की पुनरावृत्ति हो रही है, यह नही। साथ ही क्या इसमें पुनर्बलन का योगदान है। बहुत सा व्यवहार जैसे कि बात करना, चलना-फिरना, खाना बनाना, गाड़ी चलाना आदि देखकर या सुनकार अर्जित की गई, सीखे है। जिसे हमे सीखते है उसे एक प्रारूप मानकर पंसद करते है। इसे प्रारूप को सीखना (Modelling Learning) कहते है और इसमें हम दूसरों के द्वारा किये गये कार्यो पर बात करते हैतथा विचार करते है और सोचते है कि क्या हम भी इस प्रकार के कार्य करने में सक्षम है। शूटन ने (1994) में एक शब्द (Term) प्रयोग किया सामाजिक सीखना (Social Learning) सिद्धान्त जो पूरी तरह उन तथ्यों से घिरा है जिसकी चर्चा ऊपर की जर चुकी है। स्पष्ट रूप से हम यह निधार्रित कर सकते है कि किन परिस्थितियों में कौन सा व्यवहार दोहराया जा रहा है। यह वह ज्ञान है जिससे एक अभ्यासकर्ता (संज्ञान-व्यवहार अभ्याकर्ता) यह सीखने में सक्षम है कि व्यवहार में आने वाली समस्या का क्यों और कैसे मूल्यांकन करे।

3.2.2 संज्ञानात्मक व्यवहार सिद्धान्त: स्काट (Cognitive Behaviour Theory: Scott)

स्काट (Scott, 1989) ने अपनी निम्नलिखित बातों को केन्द्रित करते हुए कहा है कि बच्चों के क्रोध नियंत्रण वास्तविक दुरूपयोग की समस्या को विश्राम पूर्वाभ्यास तथा स्वयं से बात करने की तकनीक द्वारा दूर किया जा सकता है। गणित या खेल, अध्यापक के चिल्लाने के से जब पहली बार बच्चा विद्यालय की कक्षा से अनुपस्थित होकर घर को लौटता तब उसके अभिभावक और अध्यापक के व्यवहार में परिवर्तन प्रदर्शित होता है। संज्ञागत्मक व्यवहार का मौलिक तत्व अवलोकन है जो हमारे विचारों को जागरूक करता है। जिसका कोई दूसरा आवश्यक व्यवहार नहीं है। व्यवहार परिवर्तन को प्राप्त अंर्तदृष्टि द्वारा समझने का क्या और क्यों आदि से कोई मतलब नही है।

हमे यह सोचना चाहिये कि यह चाकलेट हमारे दांतो के लिये खराब है या यह हमारे स्वास्थ के लिये हानिकारक है तो हम किसी और चाकलेट को तलाशते है और वास्तव में हमे सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए तथा अपने (अंतदृष्टि) अन्दर की बात सुननी चाहियें प्रिय लोगों के बारे में सोचकर उसके सामने सिगरेट जलाना, पीना नहीं चाहिये।

3.3 संज्ञानात्मक व्यवहार सिद्धान्त की प्रक्रिया (Process of Cognitive Behaviour Theory)

शास्त्रीय अनुबंधन तथा साधनात्मक अनुबंधन के अलावा सीखने का एक और पहलू है जिसमें मनोवैज्ञानिकों ने अधिक रूचि दिखलाई है। इसी नये पहलू को संज्ञानात्मक कहा जाता है। जो 1930-1940 के दशक में काफी प्रबल था। बाद में इसकी प्रबलता के कारक को अधिक महत्वपूर्ण माना जाने लगा। परन्तु गत कुछ वर्षों से संज्ञानात्मक सीखने पर पुनः मनोवैज्ञानिकों द्वारा अधिक बल डाला जाने लगा।

अब प्रश्न उठता है कि संज्ञानात्मक सीखना क्या है और वह किस प्रकार से शास्त्रीय अनुबन्धन एवं साधनात्मक अनुबंधन से भिन्न है? संज्ञानात्मक सीखना वैसे सीख को कहा जाता है जो प्राणी के संज्ञान पर आधारित होता है। संज्ञान से तात्पर्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा पर्यावरण के बारे में मिलने वाली सूचनाओं के संसाधन से होता है। सचमुच में किसी भी संज्ञानात्मक प्रक्रिया में कम से कम निम्नलिखित छः तत्व सम्मिलित है:-

- सूचनाओं का चयन
- चयनित सूचनाओं में यथासंभव हेर-फेर
- ऐसे सूचनाओं के बीच आपस में साहचर्य स्थापित करना
- इन सूचनाओं पर गंभीर रूप से चिन्ता कर उसे विस्तारित करना
- ऐसी सूचनाओं को स्मृति में संचित करना
- ऐसी संचित सूचनाओं को पुनः प्राप्त करना।

संज्ञानात्मक प्रक्रिया की उपर्युक्तता व्याख्या से स्पष्ट होती है कि इसमें व्यक्ति वातावरण से प्राप्त सूचनाओं में से कुछ महत्वपूर्ण सूचनाओं को चुनकर उनका आपस में संबंध स्थापित कर अपने स्मृति संचयन में भविष्य में उपयोग करने के लिए रख लेता है। इसे ध्यान में रखते हुए तब ये कहा जा सकता है कि संज्ञानात्मक सीखना वैसे सीखना को कहा जाता है जिसमें प्राणी वातावरण की घटनाओं के बीच नये संबंध को प्रत्यक्षण करता है तथा उनके बीच नये साहचर्य की स्थापना करता है। दूसरे शब्दों में संज्ञानात्मक सिद्धान्त में व्यक्ति वातावरण की घटनाओं का एक संज्ञानात्मक प्रारूप विकसित कर लेता है।

यह शास्त्रीय और साधनात्मक अनुबंधन दोनों से भिन्न है क्योंकि साधनात्मक अनुबंधन मे विशिष्ट अनुक्रिया के बाद पुर्नबलन देने से प्राणी उसे सीखता है जबकि संज्ञानात्मक इस तरह के पुर्नबलन नहीं मिलने पर भी हो जाता है। इसी तरह शास्त्रीय अनुबंधन में तटस्थ उद्दीपक तथा पुर्नबलन को एक-दूसरे के साथ बार-बार दोहराया जाता है तब व्यक्ति सीख पाता है जबकि संज्ञानात्मक बिना किसी पुनरावृत्ति के हो जाती है।

3.4 संज्ञानात्मक व्यवहार सिद्धान्त एवं समाज कार्य (Cognitive Behaviour Theory and Social Work)

संज्ञानात्मक व्यवहार सिद्धान्त मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र तथा व्यवहारिक चिकित्सा विषयों से सूचना प्राप्त करता है तथा व्यवहार, संवेग तथा विचार प्रक्रिया के नकारात्मक प्रभावों का वर्णन करता हैं संज्ञानात्मक व्यवहार, समस्या समाधान सिद्धान्त तथा कार्य-उन्मुख सिद्धान्त की कुछ विशेषताओं को परिभाषित करता है और उपचार का एक प्रारूप प्रस्तुत करता है। यह सिद्धान्त सूचनात्मक प्रक्रिया पर बल देता है। संज्ञानात्मक व्यवहार सिद्धान्त मुख्य रूप से अकार्यात्मक विचार जो कि आत्म-सम्मान के निम्न स्तर तथा व्यक्ति के के साथ ही साथ मानसिक

स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या में योगदान देता है, का प्रभावी रूप से उपचार करता है। समाज कार्यकर्ता के लिए आवश्यक है कि वह संज्ञानात्मक व्यवहार सिद्धान्त की विधि का प्रयोग करने के लिए संज्ञानात्मक के सभी महत्वपूर्ण अवयवों के विषयों का ज्ञान रखे।

संज्ञानात्मक व्यवहार सिद्धान्त में संज्ञानात्मक संरचना (Cognitive Structure), संज्ञानात्मक मत (Cognitive Proposition), संज्ञानात्मक प्रक्रिया (Cognitive Operation), संज्ञानात्मक विचार(Cognitive Product) और संज्ञानात्मक व्यवहार विचार/अनुक्रम (Cognitive Behaviour Sequencing) प्रमुख अवधारणाएं है।

3.4.1 संज्ञानात्मक संरचना

संज्ञानात्मक संरचना, मानवीय संज्ञान के चार प्रमुख अवयव में प्रथम अवयव है। संज्ञानात्मक संरचना विशेष रूप सूचनाओं के संगठन तथा आन्तरिक प्रस्तुतीकरण से सम्बन्धित होती है। संज्ञानात्मक संरचना यह स्पष्ट करता है कि किस प्रकार से मस्तिष्क सूचनाओं को एकत्रित करताहै और किस प्रकार सूचनाओं के संचयन से आन्तरिक तथा वाह्य प्रेरक मानवीय अनुभव को प्रभावित करते है। उदाहरण के लिए एक सैनिक युद्ध के समय अपने कर्तव्यों का निर्वहन कैसे करेगा, यह सूचना संज्ञानात्मक संरचना के द्वारा एक सैनिक को पूर्व में यह ज्ञान हो जाता है कि उसके दायित्व क्या है।

3.4.2 संज्ञानात्मक मत

संज्ञानात्मक मत, संज्ञान का दूसरा महत्वपूर्ण अवयव है जो कि व्यक्ति के संज्ञानात्मक संरचना में विशिष्ट संतोष के रूप में संचित रहता है। संज्ञानात्मक मत बाह्य स्रोतों से ज्ञान को प्राप्त करता है अथवा आन्तरिक रूप से उत्पन्न होता है। यथा एक सैनिक अपने चारों ओर स्थित सामाजिक पर्यावरण से संज्ञानात्मक मत का ज्ञान प्राप्त करता है। (उदाहरणार्थ कक्षा, प्रशिक्षण, व्याख्यान)। इसके अतिरिक्त एक सैनिक सम्भव है कि वह सूचनाओं का संचयन अपने द्वारा स्वतः करता हो (यथा व्यक्तिगत मत, अवलोकन अथवा अनुभव द्वारा)।

3.4.3 संज्ञानात्मक प्रक्रिया

संज्ञान का तीसरा महत्वपूर्ण तत्व संज्ञानात्मक प्रक्रिया है। संज्ञानात्मक प्रक्रिया में मस्तिष्क किस प्रकार से आन्तरिक तथा वाह्य सूचनाओं को प्रोत्साहित करता है तथा ये प्रोत्साहन किस प्रकार से सूचनाओं का अनुभव, संकेतन, संचयन तथा उसे पुनः प्राप्त करते है। संज्ञानात्मक प्रक्रिया को जोकि एक प्रक्रिया है जिसमें एक व्यवस्था अर्थात् मस्तिष्क सूचनाओं को ग्रहण करता है उसे हस्तांतरित करता है तथा उसे बाहर करता है, के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। एक सैनिक लड़ाई के लिए तैयार होते समय संज्ञानात्मक प्रक्रिया पर महसूस करता है और जीवित रहने के लिए युद्ध के अनुभवों का उपयोग करता है।

3.4.4 संज्ञानात्मक विचार

संज्ञान का अन्तिम घटक संज्ञानात्मक उत्पादित विचार है जो कि पूर्व के संज्ञान के अवयवों का परिणाम होता है। कुछ संज्ञानात्मक विचार सूचना प्रक्रिया के निष्कर्ष जो क्रमशः विचारों स्व-क्रिया रूप और सुस्पष्ट प्राप्तियां यथा, विश्वास मतों, मनोवृत्तियों, मूल्यों, निर्णयों तथा निष्कर्षों पर आधारित होते हैं। उदाहरण के लिए, यदि सैनिक युद्ध क्षेत्र में अपने काम में सक्रिय है तो हो सकता है कि वह पश्चात् सदमा ,तनाव का अनुभव करे। ऐसी स्थिति में संज्ञानात्मक विचार सदमे का परिणाम होता है।

3.4.5 संज्ञानात्मक व्यवहार अनुक्रम

संज्ञानात्मक व्यवहार अनुक्रम संज्ञानात्मक प्रक्रिया की श्रृंखला को स्पष्ट करती है जो अवलोकनात्मक व्यवहार के निष्कर्ष पर आधारित होती है। इस अवधारणा का आधार पारस्परिक निर्धारणवाद का सिद्धान्त है जोकि अन्तक्रिरयात्मक चरों तथा प्रक्रियाओं को स्पष्ट करने के मानवीय व्यवहार के विचार को व्यक्त करता है। ये प्रक्रियाएं जैव भौतिकीय कारकों, यथा पूर्व निर्धारित अनुवांशिक, स्वभाव या चिकित्सीय स्थिति, मनोवैज्ञानिक कारकों में यथा संज्ञान, संवेग या संप्रेरणा तथा सामाजिक एवं पर्यावरणीय कारकों को सम्मिलित करता है कि एक अभ्यासकर्ता संज्ञानात्मक व्यवहार सिद्धान्त का प्रयोग करता है और हस्तक्षेप उन चरों तथा प्रक्रियाओं को स्पष्ट करता है जब मानव व्यवहार का आंकलन और हस्तक्षेप को विकसित किया जाता है।

लगभग पिछले दो दशकों में, शोधकर्ताओं ने बहुतायात मात्रा में प्रमाण देते हुए संज्ञानात्मक व्यवहार अभ्यास का प्रयोग व्यक्तियों, दम्पतियों, परिवारों तथा मनोशैक्षिक समूहों के साथ किया है। संज्ञानात्मक व्यवहार हस्तक्षेप को प्रभावी रूप से ध्यान रखा गया है और सेवार्थी को विपरित स्थिति को अत्यन्त कम समय में सापेक्षता सकारात्मक परिणाम प्राप्त किये गये है। यह अभिगम सेवार्थी की सोच अवसाद पर आधारित होता है स्वयं भविष्य तथा अन्य के बारे में, सहायता करती है।

3.5 पारिस्थितिकी समाज कार्य सिद्धान्त की अवधारणा (Concept of Ecological Social Work Theory)

पारिस्थितिकी समाज कार्य सिद्धान्त, समाज कार्य का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। पारिस्थितिकी समाज कार्य सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि यदि सेवार्थी अपने पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता है,तो वह समस्याओं से घिर जाता है, जिसके कारण वह अपनी भूमिकाओं का सही रूप से प्रतिपादन नहीं कर पाता है। यहां पर पारिस्थितिकी समाज कार्य सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया है जिससे कि सेवार्थी इस सिद्धान्त की सहायता से अपने पर्यावरण के साथ समायोजन स्थापित कर सके। इस इकाई में समाज कार्य के पारिस्थितिकी समाज कार्य सिद्धान्त के विभिन्न पक्षों को समझाया गया है।

समाज कार्य का मुख्य उद्देश्य लोगों की अनुकूल क्षमताओं को सुदृढ़ बनाना तथा उनके पर्यावरण को और अत्यधिक बनाना जिससे कि कार्य सम्पादन अत्यधिक अनुकूलनीय हो सके। जबकि इसमें पर्यावरणीय परिवर्तन को शामिल किया जाता है जो इस बात पर बल देता है कि परिस्थितिकी सिद्धान्त सामाजिक व्यवस्था की मान्यता को स्वीकार करते हुए अमूलकारी सामाजिक परिवर्तन के लिए मार्ग प्रस्तुत करता है।

जरमैन तथा गिटरमैन (1980) का 'लाइफ माडल' समाज कार्य अभ्यास का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है जिसने पारिस्थितिकी व्यवस्था सिद्धान्त के निरूपण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जरमैन ने संकलित लेखों का सम्पादन कर इसके लागू होने सम्बन्धित प्रारूप को समाज कार्य के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट किया । जरमैन ने स्पष्ट किया कि यह सिद्धान्त अहं मनोविज्ञान के अत्यधिक निकट है जिसमें पर्यावरण, क्रिया, स्वप्रबन्धन तथा पहचान केा महत्व प्रदान किया जाता है। जबकि दोनों के विचारों में नहीं लाये जा सकते हैं। 'जीवन प्रारूप' को लोग सतत रूप से पर्यावरण के विभिन्न आयामों, को आपस में परिवर्तित कर प्राप्त करते हैं। ये दोनों परिवर्तन और ये परिवर्तन पर्यावरण द्वारा और पर्यावरण के द्वारा ही सहारा प्रदान करते हैं। जिसमें पारस्परिक अनुकूलन पाया जाता है। सामाजिक समस्याएं (जैसे निर्धनता, असमानता इत्यादि) सामाजिक पर्यावरण को प्रदूषित करती है जो कि पारस्परिक अनुकूलन की सम्भावना को कम करती हैं। जीवित व्यवस्थाएं यथा लोग व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से प्रयास करते हैं कि वे अपने पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित कर सके। इसके अतिरिक्त हम यह भी चाहते हैं

कि हमे यथा सूचनाएं, भोजन औरसंसाधान प्राप्त हो सके जिससे कि स्वयं को बनाए रख सके और विकसित कर सके।

जरमैन तथा गिटरमैन के अनुसार कार्य सम्पादन (Transaction According to Girmain and Gitterman)

कार्य सम्पादन असुंतलित होता है तो उसका परिणाम तनाव होता है| जिससे हमारी आवश्यकताओं तथा क्षमताओं के बीच समस्याएं उत्पन्न होती है जिसके कारण पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

निम्नलिखित परिस्थितियों के कारण तनाव जन्म लेता है:-

- जीवन में परिवर्तन यथा विकासात्मक परिवर्तन भूमिका और स्थिति में परिवर्तन जीवन की संरचना में परिवर्तन।
- पर्यावरणीय दबाव असमान अवसर, कठोर एवं अप्रभावी संगठन।
- अन्रतवैयक्ति प्रक्रियाएं यथा शोषण, विपरीत अपेक्षाएं

इस प्रकार 'जीवन प्रारूप' वाह्य संसार से संज्ञान और क्षमता को नियंत्रित करने के महत्व पर बल देता है।

व्यक्तियों के जीवन में जब प्रतिकूल कार्य सम्पादन की स्थिति होती है समस्याएं जन्म लेती है। सेवार्थी के दृष्टिकोण के अनुसार समस्याएं तथा कार्यसम्पादन को स्वीकार किया जाना चाहिए। सेवार्थी के जीवन में प्रवेश करने के लिए परानुभूति आवश्यक है। समानान्तर रूप से हम जीवन की समस्याओं से सम्बन्धित प्रत्येक तीन क्षेत्रों के साथ कार्य कर सकते हैं। लेकिन इनमें प्राथमिकताओं का निर्धारण आवश्यक है। कार्यकर्ता सेवार्थी सम्बन्ध कार्य सम्पादनहै। जोकि अन्य कार्य सम्पादनों केा उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए कार्यकर्ता संस्था सम्बन्ध, परिवार के साथ, सेवार्थी के सम्बन्ध। प्रायः कार्यकर्ता एवं सेवार्थी सम्बन्धों में कार्य सम्पादन सम्बन्धी समस्याएं तीन क्षेत्रों में उत्पन्न होती है:-

- स्थिति एवं भूमिका की सामाजिक परिभाषा यथा कार्यकर्ता की स्थिति अथवा वर्ग का सेवार्थी को भय होना,
- संस्था के कार्य एवं संरचना जैसे नीतियां, एवं
- व्यवसायिक दृष्टिकोण जैसे दृष्टान्त, आचार संहिता।

अभ्यास के लिए चरण (Phases for Practice)

इस अभ्यास में प्रारम्भिक (Initial) सतत् चलन (Ongoing), और समापन (End) तीन चरण होते हैं। आंकलन के अन्तर्गत उद्देश्यों और विषयात्मक तथ्यों की पहचान, परिकल्पनाओं का निर्माण जिसका परीक्षण किया जा सके जबकि अन्य सूचनाओं को प्राप्त किया जाना हो और सेवार्थी की इच्छाओं का उत्तर देना, को शामिल कियाजाता है। लोगों की अनुकूलन सम्बन्धी क्षमताओं में वृद्धि करने के लिए विभिन्न विधियों को उपयोग किया जाता है जिससे कि पर्यावरण और पारस्परिक क्रिया में वृद्धि की जा सके। सेवार्थी अपनी क्षमताओं, आत्मनिर्धारण तथा क्रिया पर बल देता है।

प्रारम्भिक चरण

प्रारम्भिक चरण प्रारम्भिक चरण में कार्यकर्ता अपने विचारों तथा शोध व्याख्याओं के द्वारा समस्या को समझने का प्रयास करता है और सेवार्थी की भावनाओं तथा अनुक्रिया के साथ संवेगात्मक सम्पर्क को स्थापित करता है। 'भूमिका निष्पादन' के द्वारा कार्यकर्ता को सेवार्थी की समस्या को समझने में मदद मिलती है जिससे कि वह सेवार्थी का समस्या के प्रति क्या दृष्टिकोण है, को भी समझ पाता है। ये संवेगात्मक पक्ष उद्देश्यों के आंकलन के साथ एकीकृत हो जाने चाहिए।

सतत् चलन चरण

सतत् चलन चरण में एक या तीन से अधिक क्षेत्रों पर केन्द्रित किया जाता है। जीवन का संचालन प्रत्येक व्यक्ति को अनुभव से प्राप्त होता है, जैविकीय परिवर्तन के साथ समानता होती है और सामाजिक एवं सांस्कृतिक इच्छाओं बाधाओं तथा अवसरों द्वारा प्रभावित होता है। प्रायः संचालन स्रोत प्रायः तनाव होता है लेकिन प्राप्त अवसर अनुकूलनीय संरचना को सहजता से प्रोत्साहित करती है अथवा इसके द्वारा व्यक्ति सीखता है। एक कार्यकर्ता सेवार्थी के साथ कार्य करते हुए प्रायः तीन प्रकार की भूमिकाओं क्रमशः साम्श्र्यदाता, शिक्षक और सुविधाकर्ता को निभाता है।

समापन चरण

अन्तिम चरण में सेवार्थी व कार्यकर्ता एक दूसरे से अलग होत है। जिससे उनको कष्अ हाता है बौर आवश्यकता के अनुयप तथा कार्य के सफलता पूर्वक समापन होने के पश्चात्। सम्पूर्ण प्रक्रिया, समय, सेवाओ के प्रकार और सम्बन्धित कारकों के द्वारा प्रभावित होती है। समापन चरण में सेवार्थी व कार्यकर्ता के बीच अलगाव की स्थिति से सेवार्थी व कार्यकर्ता दोनो प्रभावित होते है।

मेयर्स ;(1983) के द्वारा प्रस्तुत की गयी एक अन्य वैकल्पिक पारिस्थितिकी समाज कार्य सिद्धान्त जो कि पारिस्थितिकी तन्त्र के सन्दर्भ में है, जीवन प्रारूप के सापेक्ष ज्यादा लोचशील है क्योंकि यह सिद्धान्त विशेष रूप से परिवार और पर्यावरण के बीच संजाल का आंकलन करके मदद करती है।

3.6 पारिस्थितिकी समाज कार्य सिद्धान्तः डीनिटों एवं मैक्नीस (Ecological Social Work Theory: Dinitto and McNeece)

समाज कार्यकर्ता पारिस्थितिकीय सिद्धान्त का प्रयोग व्यक्ति, परिवार और समूह एक दूसरे के साथ किस प्रकार से अन्तःक्रिया करते है और किस प्रकार से एक वृहत् व्यवस्था का निर्माण अपने चारों ओर करते है, की व्याख्या करता है। यह सिद्धान्त पारस्परिक अन्तःक्रिया को स्पष्ट करने अत्यधिक महत्वपूर्ण है तथा व्यवस्था और प्राप्त परिणामों के प्रभावों केा आधार प्रस्तुत करता है। पारिस्थितिकीय सिद्धान्त, पर्यावरणीय परिपे्रक्ष्य में व्यक्ति को समझने तथा उसकी सुस्पष्ट व्याख्या करने में एक वृहत् दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करता है जिसका अत्यधिक महत्व है। पारिस्थितिकी सिद्धान्त में सामाजिक पर्यावरण (Social Environment), कार्य सम्पादन (Transaction), पारस्परिक विनिमय (Reciprocal Exchange)अनुकूलन (Adaptation) तनाव (Stress), साधक व्यवहार (Coping), एवं सम्बद्धता (Relatedness) महत्वपूर्ण अवधारणाएं है। इन अवधारणाओं का विस्तृत वर्णन निम्नवत् किया गया है:-

सामाजिक पर्यावरण

पारिस्थितिकी प्रारूप, पर्यावरण की अवधारणा को सामाजिक पर्यावरण की अवधारणा तक, व्यवस्थाओं में विस्तारित करता है। सामाजिक पर्यावरण में दशाओं, परिस्थितियों और मानवीय अन्तःक्रिया जो कि मानव को चारों ओर से घेरती है, को सम्मिलित किया जाता है, सरल शब्दों में सामाजिक पर्यावरण्ण में उन सभी सामाजिक विषयों को सम्मिलित किया जाता है जिसके द्वारा एक व्यक्ति संसार से अपना तादाम्य स्थापित करता है तथा अपने व्यवहार को प्रभावित करता है।

उदाहरण के लिए एक अनुशासनहीन छात्र अपने शिक्षक के पर्स से रूपये चुराने के जुर्म में पकड़ा गया। जब वह पकड़ा गया तेा उसने यह स्वीकार किया कि उसने यह रूपया अपनी मां को दूंगा क्योंकि उसने अपनी नौकरी एक दिन पहले खो दी है। उसने कहा कि उसकी बेहतर महसूस करे। व्यक्ति के ज्ञान के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विपरीत परिस्थितियों ने इस प्रकार का कर्म करने को छात्र को प्रेरित किया।

कार्य सम्पादन

पारिस्थितिकी प्रारूप व्यक्ति तथा उसके बीच के सामाजिक पर्यावरण के कार्य सम्पादन अथवा विनियम के परिणामों तथा उसकी प्रकृति को समझने में सहायता करता है। कार्य सम्पादन लोगों तथा उनके पर्यावरण के सक्रिय घनिष्ठता को प्रदर्शित करता है जिसमें वे ऊर्जावान, गतिशील और सकारात्मक अथवा नकारात्मक हो सकते हैं। एक व्यक्ति पर्यावरण के साथ कार्य सम्पादन के द्वारा उसके व्यवहार को प्रेरित अथवा आकार प्रदान करता है और सामाजिक पर्यावरण एक व्यक्ति के द्वारा किये गये विभिन्न कार्य सम्पादनों के द्वारा प्रेरित और उसका स्वरूप निर्धारित होता है।

पारस्परिक विनियम

पारिस्थितिकी प्रारूप के अनुसार एक प्रक्रिया में व्यवस्थाओं के मध्य होने वाले कार्य सम्पादन को पारस्परिक विनिमय के नाम से जाना जा सकता है। एक व्यक्ति तथा एक सामाजिक पर्यावरण के बीच विनिमय आपस में होते हैं और वृत्तीय प्रतिपुष्टि के आधार पर चलते है। जो कि व्यक्ति के व्यवहार तथा अनुक्रिया और उसके सामाजिक पर्यावरण के आधार पर एक स्वरूप को प्राप्त करता है। पारस्परिक विनिमय के द्वारा प्रायः लोगों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों का अवलोकन किया जाता है।

उदाहरण के लिए 'अ' प्रायः देरी से किसी कार्य को करता है जिसके कारण वह अपने दायित्वों का निर्वहन उचित तरीके से नहीं कर पाता है जबकि 'क' 'अ' को प्रोत्साहित करने के लिए हमेशा तत्पर रहती है और यह प्रयास करती है कि 'अ' कुशल और सक्षम दिखायी दे। यहां तमक कि 'क' हमेशा 'देने की स्थिति' में होती है न कि किसी चीज को प्राप्त करने में। एक गहन परीक्षण के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि आपसी विनिमय के स्थान को ग्रहण करते हैं। दोनों 'अ' और 'क' सम्बन्धों के क्रम के अतिरिक्त और कुछ भी प्राप्त करते हैं। 'क' 'अ' की अपेक्षा हमेशा अथवा प्रत्येक समय में उत्तरदायी रहती है और प्रत्येक चीज को संगठित करती है। जिसको करने में वह आनन्द महसूस करती है और यह कामना करती है कि 'अ' में भी उत्तरदायित्व की भावना विकसित हो।

अनुकूलन

पारिस्थितिकी प्रारूप इस बात की व्याख्या करता है कि कार्य सम्पादन तथा पारस्परिक विनिमयों की एक श्रृंखला के द्वारा मानव अपने सामाजिक पर्यावरण के अनुसार अपने आप को अनुकूल पाता है अथवा असफल भी हो सकता है। व्यवस्थायें पर्यावरणीय तनाव को समय के अनुसार स्वीकार करती हैं।

उदाहरण के लिए 'अ' की एक दुर्घटना में चोट लग जाने के कारण स्पाइनल कॉर्ड में समस्या उत्पन्न होती है जिसका परिणाम यह होता है कि शीघ्रता से व्हील चेयर का प्रयोग करने लगता है और जल्दी ही उसे चलाने लगता है तथा अपनी चोट के अनुरूप ही अपने को समायोजित कर लेता है। ऐसी स्थिति में 'अ' अपने को दुखी महसूस करता है लेकिन वह अन्य लोगों को ऐसी परिस्थिति में देखता है तो वह अपने को अत्यधिक कुशलत और निपुण पाता है तथा अपने पर्यावरण (घर तथा समुदाय) के साथ समझौता कर लेता है। 'अ' अपनी बुद्धि तथा अन्य निपुणताओं का कुशलता से प्रयोग करते हुए अयोग्यता की स्थिति मे और अधिक सक्रिय हो जाता है। यह पारस्परिक विनिमय 'ब' की सहायता करते हैं जिससे कि वह अपने जीवन के प्रति अत्यधिक चिंतनशील हो जाता है और सदैव प्रगति के विषय में सोचता हैं। यह अनुकूलन का एक अच्छा उदाहरण है।

तनाव

पारिस्थितिकी परिप्रेक्ष्य में एक सामान्य मानवीय अनुभव है जिसमें एक व्यक्ति भारीपन को महसूस करता है जो कि पर्यावरण में पायी जाने वाली विभिन्न मांगों तथा तनावों के द्वारा उत्पन्न होता है। तनाव सकारात्मक (यदि कोई व्यक्ति नौकरी पाने की इच्छा के कारण तनाव महसूस करता है) हो सकता है और नकारात्मक भी (यदि किसी व्यक्ति का घर प्राकृतिक आपदा के कारण नष्ट हो गया हो)। सकारात्मक तनाव हमे विकास के लिए अवसर प्रदान करता है तथा नई-नई चुनौतियां उत्पन्न करता है जिसको पूर्ण करने पर हमारे आत्म सम्मान में वृद्धि होती है जबकि नकारात्मक तनाव हमें कमजोर और दुर्बल बनाता है तथा हमारे जीवन को खतरे में डालता है।

साधक व्यवहार

जीवन की समस्या के साथ साधक व्यवहार की योग्यता के द्वारा तनाव को समाप्त करने अथवा कम करने के लिए एक उपाय के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। साधक व्यवहार एक ऐसी संरचना है जिसमें व्यवहारिक तथा व्यक्तित्व सम्बन्धित पक्षों का प्रयोग करते हुए पर्यावरणीय दबाव के अनुरूप बिना किसी लक्ष्य अथवा उद्देश्यों को संशोधित करते हुए समायोजित अथवा अनुकूलन करने का प्रयास किया जाता है।

दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि साधक व्यवहार एक ऐसी स्थिति अथवा परिस्थिति होती है जिसके द्वारा हम अच्छे परिणाम प्राप्त कर सकते हैं यदि हम तनाव के साथ साधक व्यवहार करने में समर्थ होते है तो हम तनाव अथवा भय को कम कर सकते हैं। दूसरी ओर यदि हम तनाव के द्वारा अत्यधिक भारीपन महसूस करते है और अनुभव किये जाने वाले भय के साथ साधक व्यवहार करने में असमर्थ है तो हम असफल हो जाते है और हार कर तनाव अथवा दबाव में हमारी कार्यक्षमता अकार्यात्मक हो जाती है। अकार्यात्मकता समस्या जनित व्यवहार को पर्यायवाची है। उदाहरण के लिए 'अ' ने व्हील चेयर का प्रयोग करते समय नकारात्मक तनावों का सामना किया लेकिन वह साधक व्यवहार के द्वारा अपने कार्यों को कुशलतापूर्वक करने में सक्षम रहा।

सम्बद्धता

पारिस्थितिकी परिप्रेक्ष्य में सम्बद्धता एक व्यक्ति के चारों ओर स्थित सामाजिक संयोजन की स्थिति को स्पष्ट करता है। संयोजन सम्बन्धों की गुणवत्ता के द्वारा निर्धारित होता है। यथा एक परिवार में आपसी नियमों की समझ और प्रत्येक सदस्यों के द्वारा अनुभव की जाने वाली भूमिकाओं में सम्बद्धता या तो वृद्धि करती है अथवा कमी लाती है। अनुकूलन की स्थिति में सम्बद्धता स्वस्थ अथवा अस्वस्थ प्रक्रिया हो सकती है तथा इसका नियमन किस प्रकार से होगा यह व्यक्ति के पर्यावरण के साथ उपयुक्त हो, के द्वारा सम्भव होता है।

पारिस्थितिकी प्रारूप व्यक्ति, परिवार तथा वृहत् व्यवस्था के सम्पूर्ण चित्रण पर केन्द्रित करके समाज कार्यकर्ता की सहायता करता है लेकिन पारिस्थितिकी प्रारूप किसी भी विशिष्ट चरणों की स्पष्ट व्याख्या नहीं करता

है जिससे कि समाज कार्यकर्ता हस्तक्षेप की प्रक्रिया को अपना सके। इन सीमाओं को ध्यान में रखते हुए पारिस्थितिकी परिप्रेक्ष्य प्रभावी परिवर्तन के लिए साक्ष्य आधारित उपचारात्मक हस्तक्षेप को विकसित करने में समाज कार्यकर्ता की सहायता करता है।

उदाहरण के लिए बहुव्यवस्थित उपचार एक हस्तक्षेप की प्रक्रिया है जिसमें पारिस्थितिकी परिप्रेक्ष्य की अवधारणाओं को सम्मिलित किया जाता है। यह उपचारात्मक हस्तक्षेप एक व्यवस्थित शोध के द्वारा तथा जो कि विभिन्न साक्ष्यों पर आधारित होता है के माध्यम से एक युवा व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन के कार्य सम्पादनों को लक्ष्य बनाता है। जिससे कि पारस्परिक विनिमय युवा तथा अन्य व्यवस्थाओं के मध्य स्थान ग्रहण करते हैं (यथा पारिवारिक सदस्य, माता-पिता, शिक्षक इत्यादि)। जिससे कि सामाजिक पर्यावरण समाज के प्रति अधिक से अधिक सकारात्मक हो सके। बहुव्यवस्थित उपचार प्रक्रिया युवा व्यक्तियों को उनके साधक व्यवहार के साथ मजबूत बनाती है जिससे कि वह तनावपूर्ण परिस्थितियों का सामना कर सके उनमें विश्वास उत्पन्न हो सके और उनमें क्षमता तथा तादाम्य स्थापित करने की समझ उत्पन्न हो सके।

3.7सारांश

सारांश के रूप में संज्ञानात्मक व्यवहार समाज कार्य सिद्धान्त व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध प्रक्रिया है जिसके द्वारा सेवार्थी की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हुए समायोजन सम्बन्धी समस्याओं को दूर किया जाता है। जिससे कि सेवार्थी अपने सामाजिक पर्यावरण के साथ समायोजन स्थापित कर सके और एक संतोषजनक जीवन स्तर को पा सके। पारिस्थितिकी समाज कार्य सिद्धान्त सेवार्थी की सामाजिक पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करत है। इस सिद्धान्त में सामाजिक पर्यावरण को सम्पूर्णता में स्वीकार किया जाता है। इस सिद्धान्त में एक सेवार्थी की सहायता इस प्रकार से की जाती है जिससे कि वह अपने सामाजिक पर्यावरण के साथ समायोजन स्थापित कर सके और एक सामान्य जीवन स्तर को जी सके।

3.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. संज्ञानात्मक व्यवहार अभ्यास सिद्धान्त पर अपने विचार दीजिए।

2.संज्ञानात्मक व्यवहार सिद्धान्त एवं समाज कार्य को स्पष्ट कीजिए।

3. शूटन के संज्ञानात्मक व्यवहार सिद्धान्त के विचार को स्पष्ट कीजिए।

4. पारिस्थितिकी समाज कार्य सिद्धान्त पर अपने विचार दीजिए।

5. पारिस्थितिकी समाज कार्य सिद्धान्त पर डीनिटों एवं मैक्नीस के विचार को स्पष्ट कीजिए।

3.9 सन्दर्भ पुस्तकें

Dinitto and Mcneece, Social Work: Issues and Opportunities, In Challenging Profession, LYCEUM, Chicago, 2008.

Malcom Payne, Modern Theory of Social Work, Mcmillan, London, 1997.

Adams, R., Dominelli, L. and Malcom Payne, (eds.), Social Work: Themes, Issues and Critical Debates, PALGRAVE, New York, 2002.

Specht, H., and Vickery, A., Integrating Social Work Methods, George Allen and Unwin, London, 1978.

इकाई-4

दमनविरोधी समाज कार्य सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 दमनविरोधी समाज कार्य सिद्धान्त की अवधारणा

4.3 दमनविरोधी अभ्यासः डेलरिम्पल एवं बर्क

4.4 महत्वपूर्ण रणनीतियां ;

4.5 दमनविरोधी अभ्यास का महत्व

4.6 सारांश

4.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.8 सन्दर्भ पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

1. दमनविरोधी समाज कार्य अभ्यास का अर्थ जान सकेंगे |
2. क्लिीफर्ड के दमनविरोधी अभ्यास के सन्दर्भ में विचारों को समझ सकेंगे |
3. डेलरिम्पल एवं बर्क के दमनविरोधी अभ्यास के सन्दर्भ उनके दृष्टिकोण से परिचित हो जायेंगें|
4. दमनविरोधी सिद्धान्त के महत्व को जान जायेंगे |

4.1 प्रस्तावना

प्रायः समाज में शक्तिशाली लोगों के द्वारा कमजोर एवं दुर्बल वर्ग के लोगो पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास करते है। ऐसी स्थिति में समाज में असमानता की स्थिति उत्पन्न होती है। दमनविरोधी समाज कार्य समाज में व्याप्त असमानता को दूर करने में सेवार्थी की मदद करता है। जिससे सामुदायिक जीवन बेहतर हो सके और समाज में सन्तुलन स्थापित हो सके।

दमनविरोधी समाज कार्य सिद्धान्त का मुख्य लक्ष्य समाज में सामाजिक न्याय की स्थापना करना है। दमनविरोधी समाज कार्य अभ्यास के द्वारा समाज में व्याप्त असमानता को दूर करने का प्रयास किया जाता है। यह सिद्धान्त सम्पूर्ण विकास के विचार को स्वीकार करता है। जो जीवन के सभी पक्षों का प्रभावित करता है। वर्तमान समय में समाज कार्य ने व्यवसायिक रूप को धारण किया है और लोगो कि व्यक्तिगत पहचान तथा सामाजिक अस्तित्व जटिल हो रहे है और सामाजिक सम्बन्ध प्रभावित हो रहे है। उक्त समस्याओं का सामना करने एवं उनका समाधान प्रस्तुत करने में दमनविरोधी समाज कार्य सिद्धान्त अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

4.2 दमनविरोधी समाज कार्य सिद्धान्त की अवधारणा(Concept of Anti-Oppressive Social Work Theory)

दमनविरोधी समाज कार्य सिद्धान्त अभ्यास से आशय सामाजिक न्याय की स्थापना से हैं। जिसका मुख्य लक्ष्य लोगों की जीवन गुणक्ता में सुधार करना है। अर्थात व्यक्तियों, समूहों और समुदायों के जीवन को बेहतर बनाना है। यह सिद्धान्त 'सम्पूर्ण विकास' की अवधारणा पर आधारित है। जिसमें जीवन के सभी पक्षों क्रमशः संस्कृति, संस्थाओं, कानूनी प्रारूपों, राजनैतिक व्यवस्थाओं, सामाजिक-आर्थिक अधःसंरचना और अन्तरवैयक्तिक सम्बन्धों का निर्माण किया जाता है अथवा सामाजिक वास्तविकता द्वारा निर्माण होता है। अपने प्रारम्भिक समय में दमनविरोधी अभ्यास विशेष सामाजिक विभाजनों पर विशेष रूप से व्यक्गित लक्षणों जिसमें प्रजाति, वगर्, आयु, लिंग, तथा सेक्सुअल ओरियेन्टेशन पर बल दिया जाता था। जिसका एक विशेष अर्थ होता था। जो कि असमान शक्ति सम्बन्धों पर आधारित था। जिसमें अन्य लोगों के द्वारा दूसरों पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। यथा पुरूषों द्वारा महिलाओं पर। ऐसी स्थिति में विशेष अभ्यासों का जन्म हुआ। जिसका उद्देश्य सामाजिक विभाजन सम्बन्धी समस्याओं को व्यक्त करना है जैसा कि अमूल समाज कार्य में वर्ग विशेष, नारीवाद समाज कार्य में महिलाए, गैर-प्रजाति समाज कार्य में काले रंग के लोग, तथा अन्य।

वर्तमान समय में इस बात को महसूस किया जा रहा है। कि व्यक्गित पहचान तथा सामाजिक अस्तित्व अत्यधिक जटिल होते जा रहे है। जिसके कारण एकल सामाजिक विभाजन के लक्षण दिखायी देने लगे है। वास्तव में ऐसी स्थिति में सामाजिक जीवन विखंडित होने लगा है। जैसे श्वेत और काली महिलाएं, आयोग्य लोग, वृद्ध लोग इत्यादि। इन सभी विचारधाराओं ने स्थानीय स्तर के साथ-साथ वैश्विक स्तर पर सामाजिक सम्बन्धों को प्रभावित किया है। इस सिद्धान्त का उद्देश्य सामाजिक सम्बन्धों को सुरक्षित बनाना तथा सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करना है जिससे कि स्थायी जन- केन्द्रित सामाजिक पर्यावरण की स्थापना की जा सके और प्रत्येक व्यक्ति, समूह अथवा समुदाय को ऐसे अवसर प्रदान करना जिससे कि वे पूर्ण क्षमता के साथ अपने को विकसित कर सके और एक दूसरे की सांस्कृतिक परम्पराओं का आनन्द ले सके, अधिकारों का आदर कर सके तथा एक दूसरे का सम्मान कर सके।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है। कि दमनविरोधी समाज कार्य सिद्धान्त अभ्यास आगम निगमन तथा प्रक्रियाओं पर बल देता है। वास्तव में, दमनविरोधी समाज कार्य अभ्यास की सम्पूर्ण अवधारणा है।

4.2.1 दमनविरोधी अभ्यास का अर्थ एवं परिभाषा

दमनविरोधी अभ्यास, समाज कार्य का वह प्रारूप है जो कि सेवार्थी अथवा कार्यकर्ता के साथ किए जाने वाले कार्यो में संरचनात्मक असमानताएं तथा सामाजिक विभेदता को व्यक्त करता है। दमनविरोधी अभ्यास का उद्देश्य लोगों द्वारा व्यक्त की गई आवश्यकताओं के अनुरूप अत्यधिक उपुयक्त तथा संवेदनशील से वाओं को बिना किसी सामाजिक स्थिति को ध्यान रखते हुए प्रदान करना है। दमनविरोधी अभ्यास जन-केन्द्रित दर्शन पर

आधारित है। जिसमें समतावादी मूल्य द्वारा व्यवस्था के आधार पर, संरचनात्मक असमानता के प्रभावों को कम करना है, और लोगों के जीवन को बहेतर बनाना है| इसके अतिरिक्त लोगों संशक्त बनाना है जिससे कि वे नकारात्मक प्रभावों को कम कर सके और एक अच्छा जीवन स्तर प्राप्त कर सके (डोमिनली,1993)।

4.2.2 क्लिीफर्ड का विचार (Clifford Views)

क्लिीफर्ड (1995) ने दमनविरोधी अभ्यास के सन्दर्भ में स्पष्ट किया है कि:-

- दमनविरोधी अभ्यास सामाजिक विभेदता की स्थिति का मूल्यांकन करता है। विशेष रूप से प्रजाति, वर्ग, लिंग, अयोग्यता तथा सेक्सुअल ओरियेन्टेशन और आयु को जो कि वृहत सामाजिक संरचना से सम्बन्धित होता है साथ ही इसी समय जीवन से सम्बन्धित व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक मुद्दों का भी मूल्यांकन करता है।
- दमनविरोधी अभ्यास यह देखता है कि व्यक्तिगत अथवा संगठनात्मक रिश्तों में शक्ति का उपयोग कैसे हो रहा है और दुरूपयोग भी।
- दमनविरोधी अभ्यास ऐसे कारकों को स्पष्ट करता है जिसे लोग समझ सके और जीवन को जटिल बनाने वाले कारकों को दूर कर सके।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है। कि दमनविरोधी समाज कार्य सिद्धान्त अभ्यास का वह प्रारूप है जो कि मानवीय और सामाजिक न्याय सम्बन्धी मूल्यों की स्थापना में सहायता करता है और दमित लोगों के अनुभवों के दृष्टिकोण के आधार पर कार्य करता है।

समाज कार्य हस्तक्षेप के सम्पूर्ण अभिगम के रूप में, दमनविरोधी अभ्यास ने, पारम्परिक अभ्यास के विपरीत, नये अभ्यास के प्रारूप को विकसित किया है जिससे कि सेवार्थी अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में प्राप्त शक्ति सम्बन्धों के अनुसार समायोजन कर सके और जीवन को बनाए रख सके। दमनविरोधी अभ्यास की आचार संहिताए तथा नैतिकता, समतावादी मूल्यों पर आधारित है। जिसके अभ्यास के द्वारा समाज कार्यकर्ता संवेार्थी के जीवन से सम्बन्धित वास्तविकताओं को ज्ञात कर सके, समझ सके और उसमें परिवर्तन ला सके क्योंकि दमनविरोधी अभ्यास साधक व्यवहार तथा परिवर्तित होने वाली रणनीतियों को सहायता प्रदान करता है।

4.3 दमनविरोधी अभ्यास: डेलरिम्पल एवं बर्क(Anti-Oppressive Practice: Dalrymple and Burke)

डेलरिम्पल एवं बर्क (1995) ने दमनविरोधी अभ्यास के सन्दर्भ में अपने विस्तृत विचार दिए है। आपके अनुसार किस प्रकार से वैधानिक और व्यवसायिक उत्तरदायित्वों को, समाज कार्यकर्ता दमनकारी अथवा सशक्त माध्यम से लागू करते हैं, पर केन्द्रित किया जाता है। इस प्रारूप को समाज कार्य के कठिन क्षेत्र में विकसित किया गया है जहां पर शक्ति और प्राधिकार का प्रयोग जनता तथा सेवार्थी दोनों को संरक्षण प्रदान करने के लिए किया जाता है। इस प्रक्रिया में अन्तर्गत समाज कार्य के उन क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है जहां पर अत्यधिक शक्ति का निरूपण किया जाता है। जिससे कि असमानता पर आक्रमण करके सेवार्थी को अधिक से अधिक शक्तिशाली बनाया जा सके।

दमनविरोधी अभ्यास, दमनविरोधी कार्य को करने के लिए एक स्पष्ट व्याख्यात्मक परिप्रेक्ष्य चाहता है जो कि मूल्यों पर आधारित हो। यह शक्ति के विषय में स्पष्ट ज्ञान और दमन, मूल्य आधारित अभ्यास को प्रेरित करता

है। शक्ति को यहां पर व्यक्तिगत तथा सामाजिक सम्बन्धो के रूप में देखा जा सकता है जहां पर एक व्यक्ति अथवा समूह दूसरों को रोकता है जो कि शक्ति विहीन होते है जोकि अपनी इच्छाओ और आवश्यकताओं को पूरा करना चाहते हैं। दमन को हम शक्ति की असमानता की मान्यता के आधार पर समझ सकते हैं। जोकि व्यक्तिगत तथा सामाजिक सम्बन्धों को विशेषता पर निर्भर करता है। जिससे लोग अपने को असहाय महसूस करते हैं और अपने जीवन को नियंत्रित करने में शक्ति की कमी को महसूस करते है। डेलरिम्पल तथा बर्क ने स्पष्ट किया है कि व्यक्तियों तथा सामाजिक सम्बन्धों के बीच स्पष्ट सम्बन्ध पाया जाता है जो कि शक्ति विहीन को प्रस्तुत करते है। इसके अतिरिक्त वृहत् सामाजिक व्यवस्थाओं में अनेक ऐसे समूह होते है जो शक्तिविहीन लोगों से लाभ प्राप्त करना चाहतें हैं। कार्यकर्ता, संस्था के विषय में सम्पूर्ण ज्ञान रखते हैं ऐसी स्थिति में सेवाओं से सम्बन्धित नीतिगत विषयों को शीघ्रता से स्वीकार नहीं करते है और किसी भी कार्य को करने से पूर्व पूरी तरह से उसका मूल्यांकन करते हैं।

4.3.1 दमनविरोधी अभ्यास के सिद्धान्त (Principles of Anti-Oppressive Practice)

दमनविरोधी अभ्यास में जब सिद्धान्तों को लागू किया जाता है तो ये सिद्धान्त कार्यकर्ता को इस योग्य बनाते हैं जिससे कि वे समझ पाते है कि कहां पर मूल्यों, कानूनी अधिकारों और कर्तव्यों को क्रान्तिकारी तरीके से लागू किया जाए अथवा उदार तरीके से। इस प्रकार डेलरिम्पल एवं बर्क ने दमनविरोधी अभ्यास के लिए कुछ सिद्धान्तों का पालन करना आवश्यक बताया है:-

- सशक्तीकरण अभिगम,
- सेवार्थी के साथ साझेदारी मे कार्य करना, तथा
- न्यूनतम हस्तक्षेप

कार्यकर्ता इन अभ्यासों का प्रयोग करते हुए समाज कार्य के पारम्परिक शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सूचित कर सकता है और दमनकारी प्रवृत्तियों को अस्वीकार करता है।

उदाहरण के लिए एक कार्यकर्ता एक वृद्ध की सहायता करने के लिए अलग घर की व्यवस्था नहीं करता है बल्कि उसका उद्देश्य सेवार्थी की क्षमता का उपयोग करते हुए उसका अकेलापन दूर करना है। वास्तव में, कार्यकर्ता सेवार्थी से खुले तरीके से उससे विचार-विमर्श करता है और सेवार्थी के साथ कार्य करते हुए ऐसी योजना का निर्माण करता है जिससे कि समस्या पुनः उत्पन्न न हो। कार्यकर्ता ऐसे कार्यों को करने से दूर रहता है जिससे कि सेवार्थी अपने उत्तरदायित्व से दूर हो जाए। इस अभ्यास से तात्पर्य यह है कि कम अभ्यास के द्वारा सेवार्थी अपनी सुरक्षा हेतु उत्तरदायित्व को गृहण कर ले।

4.3.1.1 सशक्तीकरण अभिगम(Empowerment Approach)

एक सशक्तीकरण अभिगम से तात्पर्य ऐसी स्थिति से है जिसमें सेवार्थी की सहायता इस प्रकार की जाती है जिससे कि अपने जीवन को नियंत्रित कर सके, पहले की अपेक्षा अधिक जागरूक हो सके, और अपने संसाधनों का उपयोग करते हुए, बाधाओं को दूर कर सके तथा अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं को पूरा कर सके। निर्णय की प्रक्रिया में अपनी आवाज बुलंद कर सके और जिससे कि असमानता व दमनकारी प्रवृत्तियों को जान सके। सशक्तीकरण संरचनात्मक असमानताओं और सेवार्थी की व्यक्तिगत स्थिति के बीच सम्पर्क स्थापित करना चाहता है। सशक्तीकरण सेवार्थी की सहायता करता है जिससे कि वह समझ सके कि यह कैसे सम्पन्न हुआ है और उन मार्गों को पता लगा सके जिससे इन पर निमंत्रण स्थापित किया जा सकता है जोकि जीवन के पक्षों से

सम्बन्धित होती है। सशक्तीकरण भ्रम को समाप्त करता है और सेवार्थी की सहायता करता है जिससे कि वह जीवन से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों को महसूस कर सके और उचित जीवन जी सके।

उदाहरण के लिए श्रीमती 'क' एक वृद्ध महिला है और वह अपने जीवन को सुरक्षित करना चाहती है लेकिन वह अपनी 'कम पेंशन' से ऐसा कार्य करने में असमर्थ है। यह स्थिति श्रीमती 'क' के अन्दर प्राथमिकताओं के प्रति भ्रम उत्पन्न करती है। ऐसी स्थिति में कार्यकर्ता वृद्ध महिला की सहायता करता है जिससे कि वह समझ सके वह निर्धनता की स्थिति का सामना कर रही है। साथ ही कार्यकर्ता यह देखता है कि वृद्ध महिला अपनी दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सस्ते स्टोर को उपयोग में नहीं ला रही है और स्थानीय स्टोर जो कि महंगे है, उनका उपयोग कर रही है और इस कारण से अपनी कम पेंशन के द्वारा अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने में अक्षम है। कार्यकर्ता, वृद्ध महिला की प्राथमिकताएं निर्धारित करने यथा भोजन, किराया, विद्युत इत्यादि पर कितना व्यय होगा, करने में मदद करता है। यह प्राथमिकताएं वृद्ध महिला की पेंशन से सम्भव पाती है और तब वह कुशलता से अपनी सभी चीजों का प्रबन्धन करने में सहज महसूस करती है। इस प्रबन्धन से वह अपनी बचत को बढ़ाती है और अधिक व्यय करके उपकरणों तथा कपड़ों की खरीददारी करती है। इस प्रकार वह अपने व्यय को नियंत्रित करने के लिए अपनी बचत का प्रयोग करती है, तथा वृद्ध महिला को इस बात का ज्ञान होता है कि वह अपने व्यय के लिए कितनी बचत करे बजाय इसके कि दिन-प्रतिदिन परेशान रहे। कार्यकर्ता वृद्ध महिला को यह सलाह देता है कि अपनी बचत को किस प्रकार से निवेश करे जिससे कि वह अपनी आय के स्रोत बढ़ा सके। ऐसी स्थिति में कार्यकर्ता अन्तरवैयक्तिक सम्बन्धों का प्रयोग करते हुए सेवार्थी को इस प्रकार प्रेरित करता है जिससे कि वह अपने संसाधनों को स्वयं गतिमान कर सके और संस्था के ज्ञान का उपयोग कर सके तथा संगठनात्मक स्तर पर सूचना सम्बन्धी संसाधनों का भी उपयोग कर सके। कार्यकर्ता के लिए आवश्यक है कि वह दीर्घकालीन अवधि के लिए इस प्रकार की सूचनाओं को संचित करे जिससे कि नीति स्तर पर पेंशन सम्बन्धी प्रावधानों के लिए सुझाव प्रस्तुत किये जा सके जिससे कि पेंशन स्तरों में वृद्धि सम्भव हो सके।

डेलरिम्पल तथा बर्क ने विभिन्न स्तरों पर कार्य किया जो कि निम्नवत् है:-

अनुभव करना (Feelings)

जहां पर व्यक्तिगत अनुभवों को कम करने का प्रयास करना जहां सेवार्थी अपने को शक्तीविहीन समझता है। ऐसी स्थिति मे सेवार्थी के विषय सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना जिससे उसके व्यक्तिगत अनुभवों के विषय ज्ञान प्राप्त किया जा सके।

विचार (Ideas)

जहां सेवार्थी के मूल्य को अनुभव करना और उसे मजबूत करना जिससे कि वह अपनी क्षमता का उपयोग करते हुए अपने जीवन को नियंत्रित कर सके। यह ठीक उसी प्रकार है जैसा कि मनोगत्यात्मक समाज कार्य में अहं को आत्मबल प्रदान किया जाता है और जैसा कि संज्ञानात्मक सिद्धान्त में किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य चेतना में परिवर्तन लाना जिससे कि सेवार्थी की क्षमता में परिवर्तन लाया जा सके।

क्रिया (Action)

क्रिया मुख्य रूप से संस्था में होने वाले परिवर्तन पर बल देता है जहां पर समाज कल्याण अथवा वृहत् व्यवस्था में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है जोकि सेवार्थी पर विपरीत प्रभाव डालता है।

सेवार्थी के साथ साझेदारी में कार्य

डेलरिम्पल तथा बर्क के अनुसार दमनविरोधी अभ्यास का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष साझेदारी है। साझेदारी की अवधारणा को स्टीवेन्सन एवं पारलो(Stevenson and Parsloe, 1993) ने 'सामुदायिक देखभाल परियोजना' से प्राप्त किया है जिसके लिए निम्नलिखित नीतियों का होना आवश्यक है:-

- सेवार्थी की स्पष्ट सहमति के साथ केवल समस्या की खोज करना,
- कार्यवाही के सेवार्थी अथवा स्पष्ट कानूनी आवश्यकता द्वारा स्पष्ट समझौता होना,
- परिवार केसभी महत्वपूर्ण सदस्यों की आवश्यकताओं और दृष्टिकोण पर क्रिया को आधारित करना,
- सेवार्थी की आवश्यकताओं और इच्छाओं से सम्बन्धित पूर्वाग्रह अथवा मान्यताओं के स्थान पर बातचीत द्वारा समझौते को क्रिया का आधार बनाना,
- सेवार्थी को अधिक से अधिक सम्भावित विकल्प के अवसर प्रदान करना, उस स्थिति में और अधिक उसके लिए कानूनी बाध्यता हो।

डेलरिम्पल तथा बर्क ने लिखित समझौते के उपयोग की सिफारिश की है जिसे उस समय उपयोग में लाया जा सकता है जहां पर सेवार्थी और कार्यकर्ता के बीच प्रभावी सम्प्रेषण हो। इसके अतिरिक्त सेवार्थी पूर्ण रूप से स्वतंत्र होना चाहिए जिससे कि वह अपने दृष्टिकोण प्रभावपूर्ण रूप से व्यक्त कर सके तथा उसकी वकालत कर सके। लिखित समझौता अथवा सेवाओं के मानक और सेवार्थी के अधिकारों की व्याख्या स्पष्ट रूपरेखा का निर्माण करता है जो अपने अधिकार को समझने में मदद करता है। साझेदारी में प्रभावी अन्तर संस्था कार्य और उचित सेवाओं की उचित योजना को शामिल किया जाता है जिसके कारण सेवार्थी को वृहत् विकल्प के अवसर प्राप्त होते हैं जिससे विकल्पों के चुनाव में संस्थाओं का न्यूनतम अवरोध होता है।

4.3.1.3 न्यूनतम हस्तक्षेप (Minimal Intervention)

डेलरिम्पल एवं बर्क के अनुसार दमनविरोधी अभ्यास का तीसरा महत्वपूर्ण पक्ष न्यूनतम हस्तक्षेप है। न्यूनतम हस्तक्षेप के लिए आवश्यक है कि कार्यकर्ता अपनी सम्भावित शक्ति के प्रति सजग रहे। यह सजगता सेवार्थी के लिए दमनकारी हो सकती है अथवा असहभागी। हस्तक्षेप अथवा उस समय वह असफल हो सकता है जब उसको अपनी शक्ति की आवश्यकता हो जो कि सेवार्थी को संरक्षण और सहायता प्रदान करती है। कार्यकर्ता को चाहिए कि विभिन्न स्तरों पर हस्तक्षेप को प्राथमिकता दें, जो कि निम्नवत् है:-

प्राथमिक स्तर (Primary Level)

प्राथमिक स्तर समस्या को उत्पन्न होने से रोकती है। सेवार्थी को इस प्रकार अपनाया जाना चाहिए जो कि सेवार्थी के लिए उपयुक्त और सहायता प्रदान करे वाली हो, सामुदायिक संसाधनों को इस प्रकार लामबन्द करना चाहिए जो उनको सहायता प्रदान करे तथा लोगों को शामिल करते हुए सूचनाओं को प्रदान किया जाना चाहिए। सेवार्थी को इस प्रकार से शिक्षित किया जाना चाहिए जिससे कि वे स्वयं अपना प्रबन्धन कर सके।

द्वितीय स्तर (Secondary Level)

द्वितीय स्तर पर समस्या के विषय में जानकारी प्रापत करनी चाहिए और शीघ्रता से निपटने का प्रयास करना चाहिए, इससे पहले कि वह चिन्ताजनक हो जाए। यह प्रक्रिया सेवार्थी के जीवन में हस्तक्षेप करने की मात्रा को कम करती है।

तृतीयक स्तर (Tertiary Level)

तृतीयक स्तर लोगों के लिए उन परिणामों को कम करने का प्रयास किया जाता है जब गलत होने की आशंका अथवा संस्था पर बलपूर्वक कार्य करने के लिए बाध्य किया जाए।

यह अभिगम इस बात पर बल नहीं देता है कि अन्तिम क्षणों का इन्तजार किया जाए और तब दमनकारी प्रवृत्तियों की आवृत्ति बढ़ जाए। आवश्यकता इस बात की है जब सेवार्थी का जीवन प्रभावित होना शुरू हो तो इसे प्रारम्भिक चरण में ही हस्तक्षेप के द्वारा इसे रोका जाए।

4.4 महत्वपूर्ण रणनीतियां (Important Strategies)

डेलरिम्पल एवं बर्क के अभिगम में महत्वपूर्ण तत्व उचित रणनीतियां है जो दिन प्रतिदिन के कार्यो को वृहत् स्तर पर परिवर्तित करती है। कार्यकर्ता के कार्यों तथा संस्था की नीतियों एवं सेवाओं द्वारा प्रभावित सेवार्थी को दमन से दूर रखने का प्रयास किया जाता है। एक रणनीतिक अभिगम में निम्नलिखित मुद्दों को सम्मिलित किया जाता है:-

- सेवार्थी की समस्या समाधान हेतु स्पष्ट मुद्दों तथा लक्ष्यों की पहचान करना,
- मुद्दों तथा लक्ष्यों को विभाजित करना जिससे कि आसानी से प्रबन्धन किया जा सके,
- लक्ष्य और समय सीमा का निर्धारण करना,
- लक्ष्य और परिभाषित उद्देश्यों से प्राप्त उपलब्धियों का पुर्नपरीक्षण एवं मूल्यांकन करना, एवं
- अन्य लोगों के साथ सम्पर्क स्थापित करना जो कि समान अथवा एक जैसे मुद्दें पर कार्य कर रहें।

4.5 दमनविरोधी अभ्यास का महत्व (Importance of Anti-Oppressive Practice)

समाज कार्य के सिद्धान्तों में दमनविरोधी सिद्धान्त का अत्यधिक महत्व है। जिसने 1980 तथा 1990 के दशक में समाज कार्य प्रभावित किया। जिसका व्यवहारिक एवं सैद्धान्तिक कारण है। व्यवहारिक रूप से विभिन्न समाजों अथवा संस्थाए वैश्विक अर्थव्यवस्था के कारण लोग एक स्थान से दूसरे स्थान की और हस्तांतरण कर हे है, जिसके कारण अत्यधिक दबाव का सामना करना पड रहा है। सैद्वान्तिक आधार पर नये सामाजिक मुद्दों को समझने तथा उसका विश्लेषण करने के लिए सहायता की आवश्यकता पड़ रही है। दमनविरोधी अभ्यास के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत आसानी से समझा जा सकता है:-

- दमनविरोधी अभ्यास सामान्य सामाजिक परिवर्तन पर केन्द्रित होता है और उस ज्ञान व मान्यताओं को अस्वीकार करता है तो कि व्यक्तिगत अभ्यास पर आधारित होते है। बहुत से संरचनावादी समाज कार्य की सस्थाओं और प्रशिक्षण मे परिवर्तन पर केन्द्रित होते है और उसका विश्लेषण करते है बजाय व्यक्तियों और परिवारों के साथ अभ्यास पर।
- वे समाज का ओलोचनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते है अधिकतर सामाजिक स्तर पर कार्य करते है जिससे परिवर्तन की सफलता की उम्मीद अत्यन्त कम होती है। और व्यक्तिगत कार्य में आशाबादी दृष्टिकोण को अपनाते है। इस प्रकार यह अभिगम समाज कार्य के सभी समाज वादी और एकी कृत दृष्टिकोण पर बल देती है बजाय व्यक्तिगत परिपेक्ष्य में।

- इस अभिगम में समान शक्ति के साथ दमित लोगों को नियंत्रित किया जाता है। और सशक्तीकरण की और सम्भावनाओं को अस्वीकार किया जाता है। इसके अन्तर्गत सशक्तीकरण अभिगम पर बल दिया जाता है।
- इस अभिगम में अधिकार के कुछ क्षेत्रों को अस्वीकार किया जाता है तथा सीमित प्राथतिकताओं का पक्ष लेते हुए मानवीय समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया जाता है उदाहरण के लिए निर्धनता और आवासीय समस्याए अथवा बच्चों की देख भाल और व्यक्तिगत मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याए अत्यधिक महत्वपूर्ण है बजाए जेण्डर में सशक्तीकरण अथवा प्रजाति असमानता के विरूद्ध कार्य।

इस प्रकार इनमें से कुछ समस्याए सरचंनात्मक असमानता के कारण उत्पन्न होती है तो कुछ सामाजिक निर्माण के द्वारा। यथा प्रजाति, लिंग असमानता, निर्योग्यता आदि। अतः सेवार्थी की प्राथमिकता के आधार पर एवं सामाजिक प्राथमिकता के आधार पर मुख्य समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। यह सिद्धान्त सहकारी तथा चेतनात्मक दृष्टिकोण का पक्ष लेता है जो कि लोगों कर अपर्याप्त आवश्यकताओं पर प्रतिक्रिया नहीं करता है, जो कि व्यक्तिगत सहायता प्राप्त करना चाहतें है।

4.6 सारांश

सारांश के रूप में दमनविरोधी समाज कार्य सिद्धान्त सामाजिक परिवर्तन पर केन्द्रित होता है। जो सामाजिक विभेदता सम्बन्धी समस्याओं को दूर करते हुए सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करता है। इस सिद्धान्त में सम्पूर्णता की अवधारणा को स्वीकार किया जाता है। इस सिद्धान्त में एक सेवार्थी की सहायता इस प्रकार से की जाती है कि समाज में व्याप्त असमानता को दूर करके में सेवार्थी के सामुदायिक जीवन को बेहतर बनाया जा सके जिससे कि वह खुशी जीवन व्यतीत कर सके।

4.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) दमनविरोधी समाज कार्य सिद्धान्त की अवधारणा पर अपने विचार दीजिए।

(2) दमनविरोधी अभ्यास का अर्थ एवं परिभाषा पर प्रकाश डालिए।

(3) दमनविरोधी अभ्यास के सिद्धान्तों को स्पष्ट कीजिए।

(4) दमनविरोधी अभ्यास पर डेलरिम्पल एवं बर्क के विचार को स्पष्ट कीजिए।

(5) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(अ) सशक्तीकरण अभिगम

(ब) सेवार्थी के साथ साझेदारी में कार्य

(स) न्यूनतम हस्तक्षेप

(द) दमनविरोधी अभ्यास का महत्व

4.8 सन्दर्भ पुस्तकें

- Dinitto and Mcneece, Social Work: Issues and Opportunities, In Challenging Profession, LYCEUM, Chicago, 2008.

- Malcom Payne, Modern Theory of Social Work, Mcmillan, London, 1997.
- Adams, R., Dominelli, L. and Malcom Payne, (eds.), Social Work: Themes, Issues and Critical Debates, PALGRAVE, New York, 2002.
- Specht, H., and Vickery, A., Integrating Social Work Methods, George Allen and Unwin, London, 1978.

इकाई-5

उत्तरआधुनिकतावादी एवं अमूलकारी समाज कार्य सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 उत्तरआधुनिकता समाज कार्य

5.3 आधुनिकता एवं उत्तरआधुनिकता

5.4 उत्तरआधुनिकता का सैद्धान्तिक व संबोधात्मक अर्थ

5.5 उत्तरआधुनिकता एवं समाज कार्य

5.6 अमूलकारी समाज कार्य

5.7 सारांश

5.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.9 सन्दर्भ पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

1. उत्तरआधुनिकतावादी समाज कार्य से अवगत हो जायेगे |
2. उत्तरआधुनिकता तथा आधुनिकता के मध्य अंतर को समझ सकेंगे|
3. अमूलकारी समाज कार्य के अर्थ तथा उद्देश्य को जान सकेंगे|

5.1 प्रस्तावना

प्रत्येक समाज में किसी न किसी प्रकार की समस्याएं सदैव विराज़मान रहती है। इन समस्याओं के कारण मानव समायोजन स्थापित करने में अपने को असहज महसूस करता है। जिसके कारण अनेक प्रकार की समायोजन सम्बन्धी समस्याएं उत्पन्न होती है और उसका व्यवहार असंतुलित हो जाता है। समाज कार्य के उत्तरआधुनिकता समाज कार्य एवं अमूलकारी समाज कार्य सिद्धान्त इन समायोजन सम्बन्धी समस्याओं को दूर करने के लिए उपयुक्त प्रकिया को अपनाता है जिससे कि सेवार्थी समायोजन स्थापित कर सके। उत्तरआधुनिकता समाज कार्य एवं अमूलकारी समाज कार्य सिद्धान्त समाज कार्य का महत्वपूर्ण अभिगम है। इन सिद्धान्तों के द्वारा सेवार्थी की

समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया जाता है जिससे कि सेवार्थी समायोजन स्थापित कर सके। इस इकाई में समाज कार्य के उत्तरआधुनिकता समाज कार्य एवं अमूलकारी समाज कार्य सिद्धान्त के विभिन्न आयामों को समझाया गया है।

5.2 उत्तरआधुनिकतावादी समाज कार्य (Postmodernist social work theory)

वर्तमान समय में उत्तरआधुनिकता ने समाज कार्य अभ्यास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। विभिन्न परिपेक्ष्य में, समाज कार्य ने अपने प्रारम्भिक समय से अब तक अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लाया है। समाज कार्य की इस अवधारणा में परिवर्तन दिन प्रतिदिन किये जाने वाले अभ्यासों के फलस्वरूप हुआ है। इसलिए आज के समय में समाज कार्य अभ्यास के लिए नयी निपुणताओं, नये प्रारूप तथा नये ज्ञान की जरूरत है।

उत्तरआधुनिकता का सिद्धान्त विगत दो दशकों से अनेक विषयों में प्रभावी ढंग से विकसित हुआ है। इसका उद्गम भवन शिल्प या वास्तुकला में माना गया है।

5.2.1 उत्तरआधुनिकता का अर्थ

उद्गम से लेकर अब तक कि यात्रा में उत्तरआधुनिकता के अर्थ, परिभाषा, व्याख्या बदलते रहे हैं। उत्तरआधुनिकता के लेखकों के मध्य एक अलिखित करार सा है कि इसकी परिभाषा न की जाए। यह भी सही है कि जितने इस सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं उतनी ही इसकी परिभाषा है। गिराक्स (Giroux) के अनुसार उत्तरआधुनिकता ने निश्चयात्मक श्रेणियों व आधारवाद के विरूद्ध युद्ध छेड़ा है। इसकी जड़ आलोचना में है जो कि अब पकड़ से बाहर हो गयी है। आलोचना की जिनी बोतल से निकल चुकी है।

उत्तरआधुनिकता अभिगम का पहला प्रयोग वास्तुकला में किया गया था। तद्पश्चात् कला के अन्य क्षेत्रों में इसका उपयोग हुआ जैसे संगीत नृत्य, चित्रकला, अन्तमुखी रूपेण इसका प्रयोग कला के क्षेत्र में हुआ जबकि बहुमुखी रूपेण इसका उपयोग वास्तविक जीवन से जुड़े विषयों से रहा, जैसे इतिहास, समाजशास्त्र।

उत्तरआधुनिकता शब्द का प्रथम बार उपयोग सन् 1960 में किया गया था। इसे सर्वप्रथम लेसलि फिल्डर (Leslie Fielder) व इहब हस्तान (Ihab Hastan) ने प्रयोग किया। सत्तर के प्रारम्भिक व मध्य दशक से इस शब्द का व्यापक प्रचार हुआ। वास्तुशास्त्र, नृत्य, रंगमंच, संगीत व तद्पश्चात् समाज व संस्कृति से जुड़े शास्त्रों में इसका व्यापक उपयोग हुआ।

उत्तरआधुनिकता के दो अर्थ स्पष्ट रूप से प्रस्तुत हुए है:-

प्रथम, यह एक उपागम अथवा सिद्धान्त के रूप में अध्ययन का विशिष्ट परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करता है। इस परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत सामाजिक प्रघटना के विश्लेषण की प्रक्रिया सैद्धान्तिक व पद्धतिशास्त्र एक विशिष्ट स्वरूप व दृष्टिकोण से निर्धारित होती है।

दूसरे अर्थ में उत्तरआधुनिकता वैकल्पिक समाज व्यवस्था के स्वरूप की रूपावली प्रस्तुत करती है। इस व्यवस्था के आदर्श प्रारूप के अमूर्त निर्माण का प्रयास किया गया है। उत्तरआधुनिकता के अन्तर्गत समाज, संस्कृति आर्थिकी व व्यक्ति का परिवर्तित व भिन्न स्वरूप उभर कर आया।

प्रथम औद्योगिक क्रांति ने मनुष्य के शारीरिक श्रम का अवमूल्यन किया, द्वितीय ने तद्पश्चात् नैत्यिक मानसिक कार्य का अवमूल्यन किया व तृतीय ने मानवीय सोच व विचार का अवमूल्यन किया।

5.2.2 टुरेन के अनुसार (According to Touraine)

टुरेन के अनुसार आर्थिकी व संस्कृति के बढ़ते हुए अन्तर्राष्ट्रीय ने राष्ट्र राज्य की सार्वभौमिकता व उनके समुदायों की एकता को छिन्न-भिन्न किया है। पूंजीवाद ने असमानता व शोषण को अपनाया जिससे अन्तराली असमान वितरण व अन्याय के बीच अंकुरित हुए। इस व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वार्थों को बढ़ावा मिलता है तथा सार्वजनिक व सामुदायिक हितों का कुठाराघात होता है। विकासशील देश विकसित देश विकसित देशों को कच्चा माल देते हैं, जबकि विकसित देश उसी के माध्यम से लाभ कमाकर पुनः बेचता है। इन देशों के अन्तर्राष्ट्रीय कर्ज बढ़ गए है व वित्तीय विफलताएं बढ़ गई हैं। मशीनी उत्पादन के बाहुल्य ने उपभोक्ता को मोहिनी प्रभाव से विलोभित किया भी हैं।

प्रजातंत्र मात्र मत देने की स्वतंत्रता है। आम व्यक्ति की उसमें सहभागिता नहीं है। निहित स्वार्थ हावी होते जा रहे है। अपराध की दर बढ़ रही है। हिंसा, नशे की आदत तनावमय स्थितियां बढ़ रही है। प्रशासनतंत्र संवेदनहीन हो गया है। अतः वर्तमान को पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता है। प्रगति की तकनीकीत्व रूपावली की सीमाएं है। विज्ञान के मूल्य व तर्क की शक्ति भी सीमित है।

अतीत के संचित मूल्यों का अपरदन पश्चिमी सभ्यता का वर्चस्व, आर्थिक विकास के लक्ष्यों को प्राथमिकता, विज्ञान की तार्किकता में आस्था, ऐहिक व सांसारिकता के मूल्यों को अंतरंग स्वीकृति इत्यादि आयामों ने विश्व की वर्तमान स्थिति को परिभाषित किया है।

पूंजीवाद समाज में अक्षीय सिद्धान्त व निजी सम्पदा को संस्थात्मक स्वीकृति प्रदान है। पश्चिमी समाज का अक्षीय सिद्धान्त आधुनिकता है, जबकि उत्तर प्रौद्योगिकी समाज का अक्षीय आधार सिद्धान्तगत ज्ञान की केन्द्रीयता है। उत्तर-आधुनिक समाज सामुदायिक समाज होगा।

5.2.3 इलिच के अनुसार (According to Illich)

इलिच ने भी इसी परिप्रेक्ष्य में आधुनिक पश्चिमी समाज व संस्कृति की आलोचना की। विकृत तकनीकी के माध्यम से पर्यावरण का ह्रास हुआ है। उग्रवादी एकाधिकार ने स्वायत्ता व व्यक्तिगत उपयोग व संतोष को रूढ़रूपीय उत्पादन के स्वरूप से नष्ट किया है। 'सीखने' की क्षमताशील स्वायत्त क्रिया को शिक्षा के अतिनियोजन के माध्यम से नियंत्रित व्यापार के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है। इसके माध्यम से व्यक्तियों को सतत् सिखाया जाता है, उनका परीक्षण किया जाता है व उनको सुधारा जाता है। इसके माध्यम से शक्ति व असमानता का ध्रूवण हुआ है। गरीबी का आधुनिकीकरण और अतीत का अवमूल्यन भी इसी प्रक्रिया का अंग है। हमें क्या चाहिए और क्या नहीं, को परिभाषित करने की विशेषज्ञों को छूट से, हमारे अधिकारों व स्वतंत्रता में विभ्रान्ति उत्पन्न होती है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में विशेषज्ञों का महत्व बढ़ गया है। जीवन के हर आयाम को विशेषज्ञों की सलाह में जीने का दबाव बढ़ा है। जब हर वस्तु को किसी विशेषज्ञ के विशिष्ट ज्ञान क्षेत्र के अंतर्गत विभक्त कर दिया जाता है, तब साधारण व्यक्ति की सोच का क्या अर्थ रहता है? सम्भवतया शून्य। यह कहा जाता है कि आखिर वह क्या है जिसकी जानकारी व्यक्ति स बेहतर विशेषज्ञों को नहीं होती? यहां तक की जीवन के हर क्षेत्र में विशेषज्ञों का दखल हो गया है-उदाहरण यौन सम्बन्धों के विशेषज्ञ, हमारे स्वप्नों के विशेषज्ञ, हमारे बच्चों के साथ सम्बन्ध कैसे हो, उनके विशेषज्ञ हमारी अभिरूचियों आवश्यकताओं व नैतिकता के विशेषज्ञ।

5.3 आधुनिकता एवं उत्तरआधुनिकता (Modernity and Postmodernist)

आधुनिकता प्रगति का पर्याय नहीं है न ही पश्चिमी सभ्यता व समाज व्यवस्था एक आदर्श प्रारूप के रूप में सर्वत्र स्वीकार की जाती है। एक वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में उत्तरआधुनिकता की विशेषताएं आधुनिकता से व्याद्यातक है। आधुनिकता ने विज्ञान को महत्व दिया, जबकि उत्तरआधुनिकता मानवतावाद को महत्व देता है। विज्ञान व तकनीकी विकास के प्रभावों ने समाज व संस्कृति के अनेक पक्षों को विकृत किया है हलांकि इस विकृति का कारण विज्ञान का उन संस्थागत शक्तियो के हाथ में नियंत्रण होना था जो कि इस स्वार्थवश शोषण व अमानवीयकरण की प्रक्रियाओं को जन्म देने मे सक्षम व सफल हो रहे थे। घातक, विनाशकारी व विस्फोटक बम का निर्माण मानव समाज केा नष्ट करने की क्षमता रखते हैं। विज्ञान व प्रौद्य़ोगिकी ने उपभोगवाद की मनोवृत्ति व संस्कृति को जन्म दिया है। इसमें भौतिकवाद को जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य माना गया व आनुभाविक आधार पर यथार्थ को समझने को प्राथमिकता प्रदान की गई। ज्ञान प्राप्ति की प्रमुख विद्या के रूप में वैज्ञानिक पद्धति को स्वीकार करने के प्रति संकल्प ने, ज्ञान प्राप्ति के अन्य साधनों व मार्गों को अवरूद्ध किया। विज्ञान व प्रौद्योगिकी द्वारा समाज में जो परिवर्तन आये, उसमें अमानवीयकरण की प्रक्रिया प्रमुख थी। उत्तरआधुनिकता ने मनुष्य के वस्तुकरण को नकारा। मानव को व्यक्ति के रूप में देखने का अर्थ है कि उसकी संवेदनशीलतार के प्रति जागरूकता, मानवीय सम्बन्धों में सद्भाव, स्नेह, शालीनता, आत्मीयता व नैतिक-मूल्यों के आधार पर विभिन्न संस्थाओं का नियमन व संचालन। नैतिक मूल्य, संस्थाएं, संरचनाएं भौतिक व अभौतिक संस्कृति विचार व ज्ञान ये सभी मनुष्य द्वारा निर्मित है अतः मनुष्य को ही मानवता के विकास प प्रगति के लिए ऐसे आधार निर्माण करने होंगे जो कि व्यक्ति व समूह के लिए इस विश्व को सार्थक व सुखमय बना सकें।

आधुनिकता के अन्तर्गत तर्क को प्रधानता दी गयी थी जबकि उत्तरआधुनिकता ने भावना को प्रधानता दी है। भावना का मानवीय जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। तार्किकता, मात्र बौद्धिक व यांत्रिक होती है। जीवन के अनेक पक्ष भावनाओं पर आधारित है। जीवन व्यवस्था स्नेह-सम्बन्ध आस्था, भक्ति, त्याग व अनेक उच्च मूल्यों का आधार भावना ही है। भगवान में आस्था तर्क पर आधारित नहीं होतीहै। मानवता के प्रति प्रेम, सहृदयता, बच्चों की विशेष देखभाल, वृद्ध, विकलांग, अभित्यज, लाचार, बेबस, अनाथ व शोषित वर्ग के प्रति संवेदनशीलता, सेवाभाव से कार्य, जीवन की अनेक साहसिक क्रियाएं भावनातमक नींव पर निर्मित होती हैं।

आधुनिकता ने प्रतिस्पर्धा को महत्व दिया, जबकि उत्तरआधुनिकता सहयोग को महत्व देता है। प्रतिस्पर्धा जीवन के हर क्षेत्र में एक मूल्य के रूप में स्थापित हो गयी है। उदारीकरण की आर्थिक नीति के अन्तर्गत विभिन्न उद्योगो, व्यापारियों व वित्तीय संस्थाओं में व्यापक प्रतिस्पर्धा स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है। शिक्षा का आरम्भ ही प्रतिस्पर्धात्मक माध्यमों से होता है। शिशु का शाला में प्रवेश साक्षात्कार की प्रतिस्पर्धात्मक प्रक्रिया से प्रारम्भ होता है। हर वर्ष परीक्षा परिणाम प्रतिस्पर्धा के आधार पर ही प्राप्त होते है। खेलों में, व्यापार में, व्यवसाय में, सौन्दर्य में, उद्योग में, राजनीति में, व्यक्तियों में, समूहों में, धर्म में, जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रतियोगिता प्रतिस्पर्धा संघर्ष के स्वरूप स्पष्ट रूप से प्रकट होते हैं। हर प्रतिस्पर्धा में परोक्ष संघर्ष के बीच निहित हैं। उत्तरआधुनिकता का प्रारूप सहयोग को महत्व देता है। सहयोग में सहज प्रेम का भाव हैं, पारस्पारिकता का बोध निहित है। यह समूहगत जीवन को प्राथमिकता देता है। इसमें एक दूसरे के लिए चिन्ता होती है। इसमें समाज व्यवस्था व विभिन्न नृजाति समूहों के सम्बन्ध सुदृढ़ होते हैं। सहयोग, पारस्परिकता का एक महत्वपूर्ण गुण है।

आधुनिकता के अन्तर्गत विशिष्टीकरण को महत्व दिया गया, जबकि उत्तरआधुनिकता में साक्लयता को। आधुनिकता में व्यावसायिकता, शिक्षा, कानून, औषधि, तकनीकी कार्य व विभिन्न कार्य प्रणालियों में विशेषज्ञता को महत्व दिया गया। विशेषज्ञता मे साक्लयता को नकारा जाता है। कान, आंख व गले के विशेषज्ञ पूर्ण शरीर के

ज्ञान से अनभिज्ञ होंगे तो उपचार अधूरा ही रहेगा। साधारण व साक्लय समझ के बिना, विश्लेषण, वर्णन एवं निदान, किसी भी क्षेत्र में, अधूरा ही रहेगा।

आधुनिकता के व्यक्तिवाद के विपरित उत्तरआधुनिकता समूहयता को महत्व देता है। व्यक्तिवाद किसी स्तर पर स्व-परक व स्वार्थमय हो जाता है। परिवार की संस्था के लिए व्यक्तिवाद घातक व अहितकारी हो जाता है। समूह में व्यक्ति की क्षमताओं का विकास सार्थकमय होता है व व्यक्ति स्वयं को सुरक्षित पाता है।

अतः उत्तरआधुनिकता समाज को भिन्न विशेषताओं के आधार पर निर्मित करता है। ये विशेषताएं आधुनिकता के प्रारूप से भिन्न व एक अर्थ में विपरित है।

5.4 उत्तरआधुनिकता का सैद्धान्तिक व संबोधात्मक अर्थ

उत्तरआधुनिकता का दूसरा अर्थ नितान्त सैद्धान्तिक व संबोधात्मक है। इस दृष्टिकोण से उत्तरआधुनिकता बौद्धिक प्राण शक्ति का संचार करने का आन्दोलन है। इस उपागम में विज्ञान के प्रति एक भिन्न दृष्टिकोण अपनाया गया है। यह उपागम विज्ञान के व्यावहारिक व नैतिक अर्थों की खोज करता है। नैतिकता व व्यवहार में सामन्जस्यता स्थापित करके उसके माध्यम से, जीवन का नियमन, व प्रवाह निरन्तरता व परिवर्तन को बनाए रखा जाता है के तर्क को आधार बनाया जाता है। समाज विज्ञान जिस सभ्यता में विकसित होते है उस समाज की शक्तियों से उनका प्रारूप, उपागम व सिद्धान्त प्रभावित होते हैं। यहीं नहीं समाज विज्ञान विशिष्ट वर्ग, प्रजाति, लिंग व लाभ उत्पादकों के यौन अभिमुखन से भी प्रभावित व निर्मित होता है। इन प्रभावों से विमुक्त होने के लिए सिडमेन ने विज्ञान के उग्रवादी विकेन्द्रीकरण की वकालत की है। यह भी कहा गया है कि सामाजिक विज्ञान के ज्ञान का व्यक्तियों व समूहों के निहित स्वार्थ व शक्ति संघर्ष की सामरिकी के रूप में उपयोग किया जाता हैं। समाजविज्ञान द्वारा उत्पादित ज्ञान उसकी अभिव्यक्ति शैली का वाक्-जाल स्व -पोषण व शक्तिकरण के लिए उपयोग में लाया गया है। ज्ञान को स्व-शक्ति व प्रदर्शन के रूप में प्रस्तुत करने की प्रक्रिया को बाजार ताकतों के माध्यम से बेचा गया है। लेमर्ट विनिर्माण पद्धति के द्वारा सामाजिक अनुसंधान करके भ्रमित संबोध समाप्ति की अनुशंसा करते हैं।

उत्तरआधुनिकता के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि इस उपागम के विचारकों में एक अलिखित समझौता सा है कि इस विद्या को परिभाषित नहीं किया जाए, परिभाषा को लेकर विचारकों में एक मत भी नहीं है। उत्तरआधुनिकता का प्रवचन विरोधाभासों से भरा हैं। उसमें असबद्धता भी देखी जाती है। लाथर का यह मानना है कि पश्चिमी संबोधात्मक व्यवस्था के संकट का उत्तरआधुनिकता कूछ संकेत है। गिरोक्ष की यह मान्यता है कि इस उत्तरआधुनिकता की नींव आलोचना पर खड़ी है। आलोचना की जिनी बोतल से निकल गयी है और इधर-उधर दौड़ रही है। वह शैतानी पर उतर आई है। आलोचना के माध्यम से सत्य के हर प्राकथन को चुनौती दी जा रही है। यह एक दृष्टिकोण से विध्वंशात्मक निराशा में परिणित हो रही है। उत्तरआधुनिकता का यह कथन कि ज्ञान मीमांसात्मक निश्चय, उत्पीड़न का कारक होता है, वजनदार है।

5.4.1 उत्तर-आधुनिकता सांस्कृतिक परिवर्तन के अर्थ में

उत्तर-आधुनिकता एक अर्थ में सांस्कृतिक परिवर्तन का सिद्धान्त भी है। आधुनिकता सांस्कृतिक विभेदीकरण की एक प्रक्रिया है जबकि उत्तरआधुनिकता सांस्कृतिक वि-विभेदीकरण की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को शासन के संकेतन के माध्यम से समझा जा सकता है। संचयन-शासन के अन्तर्गत यह बात महत्वपूर्ण हो जाती है कि व्यक्ति उपभोग कैसे करता है और उत्पादन भी। बाजार भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि उत्पादन

स्थल। इसके अन्तर्गत सांस्कृतिक आर्थिकी निहित है। वस्तुओं का सांस्कृतिक अर्थ होता है। जीन्स पहनना, धूप के चश्मे लगाना, कोका-कोला पीना, टी.वी. देखना, मारूति चलाना-ये एक विशिष्ट संस्कृतिक के अंग हो जाते हैं। सांस्कृतिक वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्ट सम्बन्ध है। इन वस्तुओं के अभिग्रहण की विशिष्ट दशा होती है। साथ ही एक संस्थात्मक स्वरूप के आधार पर उत्पादन व अभिग्रहण व्यवहित होता है। साथ ही एक विशिष्ट तरीके से सांस्कृतिक वस्तुएं परिचालित होती है। आर्थिक उपभोग की प्रक्रिया व प्रतिमानों में विशिष्टतया होती है।

5.5 उत्तरआधुनिकता एवं समाज कार्य

उत्तर आधुनिक सिद्धान्त के दृष्टिकोण को समझना एक जटिल कार्य है। यह विचार मुख्य रूप से उत्तर औद्योगिक समाज से सम्बन्धित है अर्थात् औद्योगिक समाज जोकि विचारों और मूल्यों से सम्बन्धित है जहां पर बहुत से लोग विशिष्टता के आधार पर बड़े-बड़े कारखानों में कार्य करते हैं, जो समाप्त हो जाती है। ऐसा समाज अत्यधिक लोचशील होता है लेकिन समाज विखंडित हो जाता है। यहां पर 'ज्ञान-आधारित' कार्य का अधिक महत्व होता है और इस तथ्य से अवगत हो सकते हैं कि ऐसे समाज में सामाजिक संरचनाएं और मूल्य अपेक्षाकृत कम होते हैं।

समाजकार्य के क्षेत्र में उत्तरआधुनिक दृष्टिकोण का प्रारम्भ 1990 के दशक में माना जा सकता है। यह माना जा सकता है कि 'उत्तर औद्योगिक समाज' ने समाज को किस प्रकार से प्रभावित किया अर्थात् संगठनों के सभी पक्षों एवं समाज को विखंडित करने में, जहां पर लोगों के सम्बन्धों के निर्माण की आवश्यक को पहचाना गया जिससे समाज कार्य आधुनिक समाज को उत्तर दे सके। वास्तव में यह दृष्टिकोण समाज कार्य के सामाजिक रचनात्मक दृष्टिकोण के अधिक निकट हैं।

उत्तरआधुनिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत 'सिद्धान्त' के अर्थ को कम रखते हुए इसका सामान्यीकरण किया गया है और इसमें तीन प्रकार की सम्भावनाएं हो सकती हैं।

- सामान्य अवसर पर अभ्यास के दौरान क्या होता है, को प्रारूप वर्णित करता है, एक संरचित तरीके से विस्तृत परिस्थितियों पर लागू करना है, जिससे निश्चित सिद्धान्तों और कार्यविधियों के द्वारा अभ्यास मे तारतम्यता बनी रही है। क्लार्क (1995) ने कहा है कि यह वर्गीकरण की एक व्यवस्था है जिसमें अभ्यास करने के सम्बन्ध में व्यवस्थित और आर्थिक तरीके से वर्णित और व्याख्यित किया जाता है।
- अभिगम अथवा दृष्टिकोण एक जटिल मानवीय क्रिया है जो संसार के मूल्यों व दृष्टिकोणों को स्पष्ट करती है जोकि सहभागियों के मस्तिष्क केा इस प्रकार निर्देशित करती है जिससे कि वे अपने को संभाल सके। क्लार्क (1995) ने इसे शैक्षिक विधि अथवा प्रारूप के रूप में वर्णित किया है।
- व्याख्यात्म 'सिद्धान्त' विशेष परिणामों तथा परिस्थितियों में निष्कर्ष के लिए क्यों क्रिया आवश्यक है। क्लार्क (1995) ने इसे 'कारणात्मक वर्णन' के रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया है जिसकी स्थापना किया जाना आवश्यक है।

5.6 अमूलकारी समाज कार्य(Radical Social Work)

समाज कार्य अभ्यास को बदलने का प्रयास किया जा रहा है कि सामाजिक उद्देश्यों पर आधारित होते हैं। समाज कार्य की दिशा में परिवर्तन हुआ है। समाज कार्य के इतिहास से ज्ञात होता है कि समाज कार्य ने अपनी भूमिकाओं को ठीक ढंग से प्रतिपादित नहीं किया है।

पीटर लियोनार्ड के अनुसार, ''समाज कार्य की शिक्षा और अभ्यास के इतिहास को देखे तो यह स्पष्ट होगा कि इसमें समाज कार्य के मूल्यों और आदर्शों को तोड़-मरोड़ कर पेश किया गया है। यदि हम समाज कार्य के दर्शन एवं इतिहास को देखते है तो यह स्पष्ट होता है कि उसका झुकाव पूंजीवादी मूल्यों की ओर है, और समाज कल्याण के पूंजीवादी मूल्यों की तरफ है। इसका ज्ञान समाज कर्ताओं को नहीं है। समाज कार्य के विभिन्न प्रकार्यों को देखा जाये, तो यह स्पष्ट होता है कि उनका विकास एक विशेष सामाजिक आर्थिक परिस्थिति में हुआ है। इसी के साथ-साथ समाज कार्य में इस बात का प्रयास किया गया है कि संस्थाओं के अत्याचार सम्बन्धी प्रकार्यों को छुपाया जाये और उसके मूलभूत आधारों को स्पष्ट न होने दिया जायेगा।

समाज कार्य में मनोवंचित मूल्यों की घोषणा की जाती है और यह कहा जाता है कि समाज कार्य आत्मनिर्देशन और वैयक्तिक प्रतिष्ठा पर आधारित है। परन्तु यह घोषणा एक धोखे पर आधारित है इसीलिए कि यह घोषणा एक ऐसे उद्देश्य को सामने रखती है जिसकी प्राप्ति पूंजीवादी समाज में सम्भव नहीं है इसका कारण यह है कि पूंजीवाद के संदर्भ में समाज कार्य की पद्धतियों में एक गहरा अन्तःसम्बन्ध है जिसमें एक और मानव कल्याण को बढ़ावा देने की बात कही जाती है और दूसरी ओर इसके विरूद्ध कार्य किया जाता है। समाज कार्य के लिए एक समेकित विचारधारा का प्रचार किया है इसके अनुसार जो लोग मौलिक एवं अमूलकारी समाज का विकास चाहते है उनके लिए आवश्यक है कि वह अभ्यास का ऐसा नमूना विकसित करे जिसमें समाज कार्य क्रियाओं का विभिन्न रूप सम्मिलित हो और जिसमें समाज कार्य की प्रणालियों को पृथक रूप से देखा जाये।

5.6.1 पिन्कस तथा मिन्हा के अनुसार (According to Pincus and Minhan)

पिन्कस तथा मिन्हा के अनुसार समाज कार्य अभ्यास का अभिकेन्द्र व्यक्तियों और उनके सामाजिक पर्यावरण के बीच परस्पर सम्बन्धी क्रिया पर होना चाहिए। इस विचारधारा के अनुसार समाज कल्याण की क्रियाओं का उद्देश्य यह होना चाहिए कि व्यक्तियों को इस बात की क्षमता दिलायी जाये कि वह अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सके। परिवर्तन लाने के लिए जनता एवं साधनों में सम्बन्ध स्थापित करने के लिए पद्धतियों में स्वयं परिवर्तन लाने के लिए और जनता को इस बात की क्षमता देने के लिए कि वह पद्धति के अन्दर रहते हुए अपनी भूमिकाओं का सम्पादन कर सके। इस विचार धारा के अनुसार समाज कार्य की क्रियाओं में अमूलकारी क्रियाएं भी सम्मिलित है जिनका उद्देश्य साधनों की पद्धति से लड़ना या संघर्ष करना है। यह विचारधारा व्यक्तिगत या सामूहिक असन्तुलन से हटकर परस्पर सम्बन्धी क्रिया को और अग्रसर है। इनका यह कहना है कि समस्याएं वयक्तियों की विशेषता नहीं है बल्कि समाज की विशेषता है।

मिनहाम के अनुसार, समाज कार्यकर्ताओं को चार मौलिक पद्धतियों से परस्पर सम्बन्ध रखना पड़ता है:-

1. परिवर्तनकारी कर्ता
2. सेवार्थी व्यवस्था
3. लक्ष्य व्यवस्था
4. क्रिया विधि

परिवर्तनकारी कर्ता **(Change Agent)** सेवार्थी व्यवस्था के अन्तर्गत समाज कार्यकर्ताओं की नियोक्ता संस्थाएं आती है।

लक्ष्य व्यवस्था **(Target System)** में व्यक्ति या संरचनाएं आती है जिनको परिवर्तन करने की आवश्यकता है। जिसमें समाज कार्य के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। इसमें कल्याणकारी सेवाओं के सेवार्थी भी सम्मिलित होते हैं। या अन्य समूह सम्मिलित होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य संस्थाएं भी आती है।

क्रिया विधि **(Action System)** में समाज कार्यकर्ता और वह व्यक्ति आतें हैं जिनके साथ समाज कार्यकर्ता परिवर्तन लाने के उद्देश्य से कार्य करता है इसमें सेवार्थियों की पद्धति तथा अन्य समूह भी आते हैं।

इय विचारधारा के अनुसार समाज कार्यकर्ता को विभिन्न प्रकार की पद्धतियों से परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है। इस परस्पर सम्बन्ध में उनके साथ सहयोग, सौदेबाजी और संघर्ष तीनों सम्मिलित होते हैं।

Peter Leonard ने व्यवस्था सिद्धान्त का प्रतिपादित किया जो अमेरिका में विकसित हुआ जिसका प्रारम्भ टालकर पारसन्स ने किया था। इस विचारधारा में यह विशेषता है जिसके अनुसार सामाजिक पद्धति के विभिन्न अंग होते हैं। इन अंगों में परस्पर निर्भरता होती है। इस सिद्धान्त में सामाजिक संरचना के आदर्शव्यापी तथ्यों पर अधिक बल दिया जाता है। यह सिद्धान्त अमेरिका के पूंजीवाद को बचाने के लिए विकसित किया गया। पारसन्स का कहना है कि सामाजिक पद्धति का सिद्धान्त वर्तमान समस्याओं को उचित सिद्ध करने का प्रयास है।

व्यवस्था सिद्धान्त को Peter Leonard ने अमूलकारी रूप दिया। उनका कहना है कि विभिन्न पद्धतियों में परस्पर सम्बन्ध अवश्य होता है परन्तु यह सम्बन्ध पक्ष-विपक्षीय dilectics होता है। इसके दो पक्ष होते हैं उनमें टकराव होता है नये समझौता होता है। इसी को buds कहते हैं। इनके अनुसार राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं के द्वारा संरचना और इन विचारधाराओं में जो उचित बताती है। ये दोनो परस्पर सम्बन्ध करते हैं। आर्थिक उत्पादन को निम्न संरचना से इस परस्पर सम्बन्ध में संतुलन आर्थिक निम्न संरचना की ओर है।

नये अमूलकारी समाज कार्य का मूल उद्देश्य है कि पूरे सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन किया जाये। चेतना का जागरण का भी इसमें महत्व है। इन्होंने साक्षरता को सेवा अनुभव प्रदान किया जो लोगों को मुक्ति प्रदान कर सके।

5.6.2 अमूलकारी समाज कार्य के उद्देश्य

अमूलकारी समाज कार्य के निम्नलिखित उद्देश्य है:-

शिक्षा (Education)

सामान्य रूप से पूंजीवाद समाजवाद में अमूलकारी समाज कार्य का उद्देश्य यह है कि आर्थिक उत्पादन से उत्पन्न होने वाले वैयक्तिक समस्याओं को दूर करना और समूहों के साथ मिलकर एक ऐसे संघर्ष में सम्मिलित होना जिससे अन्याय पर आधारित सामाजिक पद्धति को बदला जा सके। परन्तु इसके लिए समाज के विभिन्न वर्गों को शिक्षित करना होगा और विभिन्न वर्गों को शिक्षित करना होगा और उनमें उनकी वास्तविकता के विषय में जानकारी देगा।

व्यक्तियों तथा पद्धतियों में सम्बन्ध स्थापित करना (Relationship Establishment Between Persons and Methods)

अमूलकारी समाज कार्य का उद्देश्य प्रमुख रूप से व्यक्तियों एवं पद्धतियों सम्बन्ध स्थापित करना है। इसके लिए कभी तो उन्हें उपभोक्ता समुदाय सम्बन्धी क्रियात्मक समूहों की सहायता लेनी पड़ेगी। कहीं तो व्यक्तियों की तरफ से संघर्ष करना होगा।

प्रति पद्धति का निर्माण (Building Counter System)

यह पद्धति वर्तमान पद्धति के अन्दर तथा बाहर दोनों ही रूप में बन सकती है। इस तरह की क्रिया में उद्देश्य यह होता है कि एक ऐसा आधार बनाये जाये जिससे वर्तमान परिस्थिति में परिवर्तन लाया जा सके या जिससे वर्तमान परिस्थितियों को तोड़ दिया जाये।

व्यक्तिगत एवं संरचनात्मक प्रतिक्रिया(Individual and Structural Reaction)

अमूलकारी समाज कार्य का उद्देश्य व्यक्तिगत एवं संरचनात्मक स्तर पर क्रियाओं को आयोजित करना है जिससे समाज मे अमूलकारी परिवर्तन लाया जा सके।

5.6.3 अमूलकारी समाज कार्य की विधियां (Methods of Radical Social Work)

संवाद सम्बन्ध (Dialogue Relationship)

लोगों के साथ विचारों का आदान प्रदान करना होगा तथा उन्हें परिस्थिति परिवर्तन के लिए समझायेंगे प्रेरित करेंगे। लोगों को क्रियाओं के लिए सम्प्रेरित करेंगे।

कार्यप्रणाली(Strategy)

कार्यप्रणाली में हमकों विभिन्न प्रकार के कार्य करने पड़ेगे जैसे अभियान चलाया अन्य समूहों से सहयोग प्राप्त करना और संघर्ष भी करना होगा। इसके लिए वास्तविक परिस्थितियों का राजनैतिक विश्लेषण करना होगा। और अपने कार्यक्रमों के परिणामों का परिणाम ज्ञात करना होगा। इसके लिए समाज कार्यकर्ता को विभिन्न निपुणताओं की जानकारी आवश्यक है। तभी वह अमूलकारी समाज कार्य की स्थापना कर सकेगा।

5.7 सारांश

सारांश के रूप में उत्तरआधुनिकता समाज कार्य एवं अमूलकारी समाज कार्य सिद्धान्त व्यवस्थित प्रक्रिया के द्वारा सेवार्थी की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हुए समायोजन सम्बन्धी समस्याओं को दूर करता है। जिससे कि सेवार्थी पर्यावरण के साथ समायोजन स्थापित कर सके और एक संतोषजनक जीवन को जी सके।

5.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) उत्तरआधुनिकता समाज कार्य पर अपने विचार दीजिए।

(2) आधुनिकता एवं उत्तरआधुनिकता पर प्रकाश डालिए।

(3) उत्तरआधुनिकता का सैद्धान्तिक व संबोधात्मक अर्थ को स्पष्ट कीजिए।

(4) अमूलकारी समाज कार्य को स्पष्ट कीजिए।

(5) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(अ) पिन्कस तथा मिन्हा के अनुसार

(ब) अमूलकारी समाज कार्य के उद्देश्य

(स) अमूलकारी समाज कार्य की विधियां

(द) इलिच के अनुसार

5.9 सन्दर्भ पुस्तकें

- Dinitto and Mcneece, Social Work: Issues and Opportunities, In Challenging Profession, LYCEUM, Chicago, 2008.
- Malcom Payne, Modern Theory of Social Work, Mcmillan, London, 1997.
- Adams, R., Dominelli, L. and Malcom Payne, (eds.), Social Work: Themes, Issues and Critical Debates, PALGRAVE, New York, 2002.

इकाई-6

व्यवस्था समाज कार्य तथा नारीवादी समाज कार्य सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 व्यवस्था सिद्धान्त: पिन्कस एवं मिन्हान

6.3 व्यवस्था सिद्धान्तः डीनिटों एवं मैक्नीस नारीवाद की अवधारणा

6.4 नारीवाद की अवधारणा

6.5 नारीवादी समाज कार्य की अवधारणा

6.6 नारीवाद से सम्बन्धित सिद्धान्त

6.7 नारीवाद समाज कार्य के कार्य

6.8 नारीवाद समाज कार्य के मुख्य विषय

6.9 नारीवादी समाज कार्य में आवश्यक निपुणताएं

6.10 सारांश

6.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.12 सन्दर्भ पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का के अध्ययन के पश्चात आप -

1. पिन्कस एवं मिन्हान के व्यवस्था सिद्धान्त का विश्लेषण कर सकेंगे।
2. डीनिटों एवं मैक्नीस के व्यवस्था सिद्धान्त को जान सकेंगे।
3. नारीवादी समाज कार्य के अर्थ को समझ सकेंगे |
4. इसके अंतर्गत नारीवाद के विभिन्न स्वरूपों को जान सकेंगे।
5. नारीवादी समाज कार्य के द्वारा महिलाओं को समाज में किस प्रकार से एक सम्मानजनक स्थान दिलाया जा सकता है , इसका विश्लेषण कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

प्रत्येक समाज में किसी न किसी प्रकार की समस्याएं सदैव विराज़मान रहती है। इन समस्याओं के कारण मानव समायोजन स्थापित करने में अपने को असहज महसूस करता है। जिसके कारण अनेक प्रकार की समायोजन सम्बन्धी समस्याएं उत्पन्न होती है और उसका व्यवहार असंतुलित हो जाता है। समाज कार्य के व्यवस्था सिद्धान्त इन समायोजन सम्बन्धी समस्याओं को दूर करने के लिए उपयुक्त प्रकिया को अपनाता है जिससे कि सेवार्थी समायोजन स्थापित कर सके। व्यवस्था सिद्धान्त समाज कार्य का महत्वपूर्ण अभिगम है। इस सिद्धान्त के द्वारा सेवार्थी की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया जाता है जिससे कि सेवार्थी समायोजन स्थापित कर सके। इस इकाई में समाज कार्य के व्यवस्था सिद्धान्त के विभिन्न आयामों को समझाया गया है।

प्रत्येक समाज में महिलाओं की प्रस्थिति, उनकी भूमिका, उनके कार्य एवं उनके योगदान को मापने के आधार भिन्न-भिन्न रहे हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत ग्रन्थों में नारी का उल्लेख एक विशिष्ट स्थिति एवं स्वरूप को लेकर ही किया गया है। साहित्य एवं लोक ज्ञान के माध्यम से निर्मित नारी का स्वरूप व छवि उसे गृहकार्य एवं काम प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। काव्यकारों ने नारी के नख-शिख वर्णन के माध्यम से उसके सौंदर्य बोधक पक्ष की प्रस्तुति की है। अनेक धार्मिक ग्रंथों में उसे मोक्ष प्राप्ति में बाधक मानकर, वर्जित करार दिया गया है। नारी निर्माण की इस प्रक्रिया से समाज में उसकी स्थिति असमानता, शोषण व उत्पीड़न के अनुभवों से जुड़ती चली गयी है।

6.2 व्यवस्था सिद्धान्त :पिन्कस एवं मिन्हान (System Theory)

समाजकार्य में व्यवस्था का विचार वॉन बार्टेलेनकी के (1971) सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ। यह एक जैविकीय सिद्धान्त है जो कि यह स्पष्ट करता है कि सभी अवयव व्यवस्थाएं हैं, जो कि उपव्यवस्थाओं से बने हैं और ये व्यवस्थाएं वृहत् व्यवस्थाओं का अंग हैं। इस प्रकार मानव, समाज का अंग है और वह समाज का निर्माण करता है। उदाहरण के लिए, व्यवस्था कोशिकाओं से , कोशिकाएं अणुओं से, इसी प्रकार अणु छोटे-छोटे कणों से मिलकर बने होते हैं। इस सिद्धान्त को सामाजिक व्यवस्था पर लागू करते है।यथा समूह, परिवार और समाज ठीक इसी प्रकार जैविकीय व्यवस्थाएं अथवा सामाजिक व्यवस्थाएं इस सिद्धान्त का प्रमुख पक्ष है। जो कि जैविकीय अथवा तकनीकी व्यवस्थाओं से कम विकसित है। हैनसन का कथन है कि व्यवस्था सिद्धान्त के मूल्य मानव को सम्पूर्णता के रूप में स्वीकार करते हैं बजाय एक भाग के रूप में जैसा कि अन्य सिद्धान्तों में होता है।

व्यवस्था सिद्धान्त ने 1970 के दशक में समाज कार्य पर बहुत प्रभाव डाला और लम्बे समय तक विवाद का विषय बना रहा। समाज कार्य में व्यवस्था सिद्धान्त के दो प्रारूपों के आधार पर अन्तर किया जा सकता है:-

- सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त **(Generic System Theory)**
- पारिस्थितिकी व्यवस्था सिद्धान्त **(Ecological System Theory)**

हेयर्न (1958, 1969) ने व्यवस्था सिद्धान्त को समाज कार्य के एक अभिगम के रूप में अन्य लोगों की अपेक्षा पहले योगदान दिया। व्यवस्था, विचार के अभ्यास में समानान्तर रूप से दो महत्वपूर्ण प्रकाशित अभिमत का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। ये दोनों अभिमत यूनाइटेड किंगडम में विकरी (Vickery, 1977) तथा ओलसन

(Olsen,1978) द्वारा प्रभावित हुआ। जिसे बाद में सिपोरिन (Siporin, 1975) और जरमेन एवं गिटरमेन (Germain, 1979 and Gitterman, 1980) के पारिस्थितिकी व्यवस्था सिद्धान्त के रूप में संयुक्त राज्य में प्रभाव पड़ा। ब्राउन (Brown,1993द्ध ने समूह कार्य के सन्दर्भ में सीमाएं (Boundary) तथा पर्यावरण के विचार को स्पष्ट किया। इलियट (Elliott, 1993)व्यवस्था सिद्धान्त को एकीकृत रूप में सामाजिक विकास के विचार को बाद में औद्योगिक देशों में समाज कार्य में लागू किया। कबादकी ने बताया कि कैसे सामाजिक विकास कार्य के लिए समाज के विभिन्न स्तरों पर सम्भावित हस्तक्षेप विशेष रूप से महत्व रखता है।

व्यवस्था सिद्धान्त की उपयोगिता व्यवस्था सिद्धान्त, मनोगत्यात्मक सिद्धान्त के साथ उत्पन्न हुए असंतुष्टि के आधार पर सैद्धान्तिक विकास को प्रस्तुत करता है। यह सामाजिक तार्किक रूप से मनोगत्यात्मक सिद्धान्त के असफल होने पर उसके प्रतिउत्तर के रूप में देखा जा सकता है जोकि समाज कार्य में 'समाज' के साथ पर्याप्त रूप से परिणाम देता है। इसने समाज कार्य को उस समय प्रभावित करने किया जब समाज कार्य एक सामान्य क्रिया के रूप में अलग से जब विशिष्ट समाज कार्य के रूप में स्थापित हो रहा था। यूनाइटेड किंगडम तथा संयुक्त राज्य में अलग समाज कार्य व्यावसायिक संगठनों को एक में कर दिया गया। इस प्रकार इस सिद्धान्त ने 'सम्पूर्णता' की अवधारणा को अंगीकार किया। राबर्टस (1990) ने देखा कि समाज कार्य में एकीकृत अवधारणात्मक प्रारूप को विकसित किया जा रहा था तब, वास्तव में, दो लेखको पिन्कस (Pincus, 1974), और गोल्डस्टीन (Goldstein, 1973) ने अपने सिद्धान्तों को क्रमशः एकीकृत (Integrated) और ऐकिक (Unitary) कर परिभाषित किया। 1970 दशक के मध्य में एक अन्य विचारधारा पारिवारिक चिकित्सा (Family Therapy) ने जन्म लिया। जिसने समाज कार्य पर अपना प्रभाव डाला। यहां, व्यवस्था सिद्धान्त को वृहत् स्तर पर, यह स्वीकार किया गया कि एक परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे को किस प्रकार से प्रभावित करते हैं, और प्रभाव डालते हैं।

व्यवस्था सिद्धान्तः पिन्कस एवं मिन्हान (System Theory: Pincus and Minhan)

पिन्कस एवं मिन्हान (Pincus and Minhan) ने अपनी पुस्तक Social Work Practice: Model & Method (1973) समाज कार्य के सन्दर्भ में व्यवस्था के विचार को प्रतिपादित किया। इस सिद्धान्त में व्यवस्था का मुख्य दृष्टिकोण यह है कि लोग व्यवस्था तथा उससे सम्बन्धित सामाजिक पर्यावरण पर निर्भर करते हैं जिससे कि वे संतोषजनक जीवन को जी सके। इस प्रकार समाज कार्य कुछ व्यवस्थाओं पर केन्द्रित होता है। तीन प्रकार की व्यवस्थाएं होती है जो लोगों की सहायता करती हैं:-

- अनौपचारिक अथवा प्राकृतिक व्यवस्थाएं जैसे परिवार, मित्र, डाकिया, सहयोगी आदि।
- औपचारिक व्यवस्थाएं जैसे सामुदायिक समूह, श्रमिक संघ इत्यादि।
- सामाजिक व्यवस्थाएं जैसे विद्यालय, अस्पताल आदि।

यदि व्यक्ति समस्याओं के साथ होता है तो वह सहायता प्रदान करने वाली व्यवस्थाओं को उपयोग करने में असमर्थ होता है क्योंकि:

- कुछ व्यवस्थाएं अथवा तन्त्र लोगों के जीवन से सम्बन्ध नहीं रखती है अथवा आवश्यक संसाधन अथवा उनकी समस्याओं से सम्बन्ध नहीं रखती है उदाहरण के लिए वृद्ध लोग के पास रिश्तेदार अथवा मित्रवत पड़ोसी नहीं होते है अतः वे अनौपचारिक व्यवस्था के बगैर जीवन जीते हैं।
- कुछ लोग अपने विषय में नहीं जानते हैं अथवा अपनी इच्छाओं का उपयोग कर सकते हैं उदाहरण के लिए एक बालक के साथ उसके माता-पिता के द्वारा दृव्यवहार किया जाता है जो वह यह नहीं जानता है

कि सहायता के लिए कहां जाए अथवा उसे इस बात का भय रहता है कि यदि वह पुलिस के पास जाए अथवा अन्य सेवाएं ले तो ऐसी स्थिति में उसके माता-पिता उससे दूर हो जाएंगे और उससे प्यार करने के स्थान पर दुव्र्यवहार करेंगे।

- उपयोगकर्ता के लिए व्यवस्थाओं की नीतियां नई समस्याओं को उत्पन्न करती है उदाहरण के लिए यदि आश्रित है अथवा इच्छाओं में मतभेद है।
- यह सम्भव है कि व्यवस्था अन्य लोगों के साथ परस्पर विरोधी हो।

समाज कार्य प्रयास करता है कि कारणात्मक समस्याओं को पहचाना जाए जहां पर सेवार्थी तथा उनका पर्यावरण आपस में एक दूसरे अन्तक्रिया करते हैं। सामान्य तौर पर सेवार्थी अथवा पर्यावरण दोनो में से कोई नहीं जिसके कारण समस्या है, को पहचाना जा सकता है। दोनों के मध्य अन्तक्रिया मुश्किल हो सकती है। इस सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य लोगों की सहायता करना है जिससे कि जीवन के नियमित कार्यो को कर सके, कष्ट को समाप्त कर सके और लक्ष्य को प्राप्त कर सके और मूल्य आधारित स्थिति को प्राप्त कर सके जो कि सेवार्थी के लिए महत्वपूर्ण है। जीवन के नियमित कार्य से तात्पर्य उन क्रियाओं से है जो कि हमारे जीवन के एि महत्वपूर्ण है और जिनका विशेष महत्व है।

समाज कार्यकर्ता 'निजी कष्ट से सार्वजनिक मुद्दों' के सम्बन्धों के साथ दिलचस्पी रखता है। ये व्यक्तिगत समस्याओं को सामान्य रूप से लेकर कार्य करते हैं और इसका प्रभाव व्यक्तियों पर सामान्य मुद्दों से ज्यादा पड़ता है।

समाज कार्य के कार्य :-समाज कार्य के निम्नलिखित कार्य है:-

- लोगों की सहायता करना जिसका उपयोग करके वे अपनी क्षमताओं में वृद्धि कर सके जिससे समस्या का समाधान हो सके।
- लोगों तथा संसाधन व्यवस्थाओं के मध्य नये सम्पर्कों का निर्माण करना।
- लोगों और संसाधन व्यवस्थाओं के बीच पारस्परिक क्रिया को सहायता देनाअथवा उसमें परिवर्तन लाना
- संसाधन व्यवस्थाओं के साथ लोगों के बीच पारस्परिक क्रिया में वृद्धि लाना।
- सामाजिक को परिवर्तित करने और विकसित करने में सहायता करना,
- व्यवहारिक सहायता प्रदान करना, तथा
- सामाजिक नियंत्रण के एक अभिकर्ता के रूप में कार्य करना।

चार मुख्य व्यवस्थाएं (Four Basic System)

पिन्कस एवं मिन्हान ने समाज कार्य में चार मुख्य व्यवस्थाओं को परिभाषित किया है। जोकि व्यवस्था सिद्धान्त के महत्वपूर्ण तत्व है। इन चारों तत्वों का विश्लेषण निम्नवत् किया गया है:-

- परिवर्तनकर्ता व्यवस्था **(Change Agent System)**:- यहां पर परिवर्तनकर्ता से तात्पर्य समाजकार्यकर्ता से और उस संगठन से है जहां पर वह कार्यरत है।

- सेवार्थी व्यवस्था **(Client System)**:- सेवार्थी व्यवस्था से तात्पर्य लोग, समूह, परिवार, समुदाय से है जो कि सहायता प्राप्त करना चाहते हैं और परिवर्तन अभिकर्ता के साथ कार्य करने से सम्बन्धित है। वास्तव में सेवार्थी सहायता प्राप्त करने के लिए तैयार होता है और अपने को व्यवस्था में बनाए रखना है।
- लक्ष्य व्यवस्था **(Traget System)**:- लक्ष्य व्यवस्था से तात्पर्य उस स्थिति से जहां पर सेवार्थी, परिवर्तन अभिकर्ता के साथ परिवर्तन के लिए प्रयास करता है जिससे कि वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सके। इस प्रक्रिया में सेवार्थी तथा लक्ष्य व्यवस्था समान हो सकते हैं और नहीं भी।
- क्रियात्मक व्यवस्था **(Action Sysytem)**:-क्रियात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत सेवार्थी तथा परिवर्तन अभिकर्ता लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मिलकर कार्य करते हैं। ऐसी स्थिति में सेवार्थी लक्ष्य तथा क्रियात्मक व्यवस्था समान हो सकते हैं और नहीं भी।

कार्यकर्ताओं और अन्य के मध्य सम्बन्ध (Relations Between Worker and Others)

कार्यकर्ताओं और अन्य के मध्य निम्नलिखित सम्बन्ध पाये जाते है:-

- सहयोगात्मक सम्बन्ध होते है जहां पर उद्देश्यों को आपस में साझा किया जाता है।
- समझौता, समझौता युक्त सम्बन्ध होते है जहां पर आवश्यकताओं तक पहुंचने के लिए करार किया जाता है।
- विरोधात्मक परस्पर विरोधात्मक सम्बन्ध होते है जहां पर उद्देश्य एक दूसरे के विपरीत होते हैं।

प्रक्रिया :-

विभिन्न अध्ययनों के आधार पर जो कि विभिन्न परिवर्तन अभिकर्ता यथा समाज कार्यकर्ता मनोवैज्ञानिक और संगठन के परामर्शदाताओं द्वारा किए गये है, पर परिवर्तन की प्रक्रिया को निम्नलिखित सात चरणों में विभाजित किया जा सकता है:-

- परिवर्तन के लिए आवश्यकता को विकसित करना,
- परिवर्तन के लिए सम्बन्धों को स्थापित करना,
- सेवार्थी व्यवस्था की समस्या का निदान करना अथवा उसे स्पष्ट करना,
- वैकल्पिक मार्गों अथवा लक्ष्यों का परीक्षण करना और लक्ष्यों को निर्धारित करना तथा उसके अनुरूप कार्य करना,
- निश्चित अभिप्रायों को वास्तविक परिवर्तन प्रयासों में रूपान्तरित करना,
- परिवर्तन को स्थिरता तथा सामान्यीकरण करना, तथा
- समापन सम्बन्धों को प्राप्त करना।

6.3 व्यवस्था सिद्धान्त: डीनिटों एवं मैक्नीस

डीनिटों एवं मैक्नीस ने अपनी पुस्तक 'Social Work: Issues and Opportunities in a Challenging Profession' (2008) में व्यवस्था सिद्धान्त को प्रस्तुत किया है। जिसे सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है। जिसके आधार पर भौतिक विज्ञान की सहायता से मानव सम्बन्धों की अन्तःक्रिया की गत्यात्मक

प्रक्रिया को समझाने का प्रयास किया जाता है। समाज कार्य का यह सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है जिसे समाज कार्यकर्ता समूहों, परिवारों अथवा व्यक्तियों के बीच व्याप्त सम्बन्धों तथा अन्तःक्रिया के प्रभावों को समझने अथवा संगठित करने का प्रयास करता है। उदाहरण के लिए व्यवस्था सिद्धान्त के अन्तर्गत एक समाज कार्यकर्ता आत्महत्या के प्रभावों को समझने के लिए विभिन्न व्यवस्थाओं को जानने का प्रयास करता है। लेकिन वास्तव में समाज कार्यकर्ता क्या करेगा? यह परिभाषित नहीं किया जाता। व्यवस्था सिद्धान्त समाज कार्यकर्ता के अभ्यासों द्वारा कैसे प्रभाव डालेगा तथा सेवार्थी के साथ किस प्रकार से हस्तक्षेप करेगा, के प्रभावों को परिभाषित करता है।

व्यवस्था सिद्धान्त की मुख्य अवधारणाएं (Key Concept of System Theory)

व्यवस्था सिद्धान्त के अन्तर्गत पर्यावरण, व्यवस्था तथा उससे सम्बन्धित उपव्यवस्था, सीमाएं तथा आगम तथा निगमन , महत्वपूर्ण अवधारणाएं हैं। जिसका विश्लेषण निम्नवत् किया गया है:-

पर्यावरण

व्यवस्था सिद्धान्त में पर्यावरण से तात्पर्य एक ऐसे सम्पूर्ण परिपेरक्ष्य से है जिसमें सभी व्यवस्थाएं एक-दूसरे के साथ मिलकर कार्य करती हैं। समाजकार्य के अन्तर्गत पर्यावरण शब्द से तात्पर्य सामाजिक पर्यावरण से लिया जाता है। जो कि मानव व्यवस्था के चारों ओर स्थित पर्यावरण को परिभाषित करता है अर्थात् एक मानव पर्यावरण के अन्दर अपनी सम्पूर्ण क्रियाओं को सम्पादित करता हैं। इन मानवीय व्यवस्थाओं में व्यक्तियों, समूहों तथा परिवारों के साथ-साथ वृहत् व्यवस्था में पड़ोस, समुदायों अथवा विस्तृत समाज को शामिल किया जाता है। व्यवस्था सिद्धान्त आकार को आधार नहीं मानता है क्योंकि कोई भी व्यवस्था सामाजिक पर्यावरण के अन्तर्गत ही अन्तर्निहित होता है।

व्यवस्था एवं उपव्यवस्था

व्यवस्था सिद्धान्त में एक अन्य महत्वपूर्ण अवधारणा व्यवस्था तथा उससे सम्बन्धित उपव्यवस्था है। अर्थात् व्यवस्थाओं में विभिन्न अवयव अथवा उपव्यवस्थायें शामिल होती हैं जो कि एक वृहत् स्तर पर आपस में अन्तःक्रिया करते हुए संरचना के अन्तर्गत एक विशेष कार्यों को करते हैं। यथा एक पारिवारिक व्यवस्था व्यक्तियों (पारिवारिक सदस्यों) से मिलकर पूर्ण होती है। इनमें व्यक्तित्व के, जैविकीय लक्षणों के आधार पर तथा सामाजिक आदतों के आधार पर विभिन्नताएं पायी जाती हैं। इसी प्रकार एक पारिवारिक व्यवस्था वृहत् व्यवस्था का अंग होती है। यथा पड़ोस, समुदाय, धर्म इत्यादि। यह सभी व्यवस्थाएं समुदाय अथवा समाज का अंग होती हैं।

सीमाएं

एक अन्य महत्वपूर्ण व्यवस्था सिद्धान्त की अवधारणा में सीमाएं हैं जो कि व्यवस्था तथा उससे सम्बन्धित अन्य उपव्यवस्था के परिसीमन को व्यक्त करती हैं। समाज कार्यकर्ता सीमा शब्द का प्रयोग सामाजिक व्यवस्था की निश्चित सीमाओं को परिभाषित करने के लिए करता हैं। साधारण रूप में कोई भी व्यवस्था सीमा से बाहर है तो वह पर्यावरण से सम्बन्धित है और यदि वह सीमाओं के अन्दर है तो व्यवस्था से सम्बन्धित होगी। सीमाओं के दो महत्वपूर्ण कार्य होते हैं कि इसके द्वारा व्यवस्था को एक पहचान प्राप्त होती है तथा व्यवस्था की स्वतत्रंता तथा सम्पूर्णता को किस प्रकार से बनाए रखा जाये, में सहायता करती है। सीमाओं की अवधारणा परिवारों के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है क्योंकि इसके द्वारा परिवार व्यवस्था की सीमाएं के गुणात्मक पहलुओं को प्रभावित करते हुए पारिवारिक कार्यों को निर्धारित किया जाता है। उपव्यवस्थाओं के मध्य तथा व्यक्तियों के मध्य सीमाओं के माध्यम से ही परिवार के सदस्यों की पहचान और आत्म-निर्भरता स्पष्ट होती है। जबकि स्थिर सीमाओं के द्वारा उपव्यवस्थाओं के मध्य संचार की प्रक्रिया बाधित होती है तथा सूचनाओं का आदान-प्रदान नहीं हो पाता है

जिससे सदस्यों की संपूर्णता को नाकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए एक पिता तथा उसकी बेटी के बीच की सीमाएं अथवा माता तथा पिता के बीच पायी जाने वाली सीमाओं के बीच अन्तर होता है।

आगमन तथा निगमन

आगमन तथा निगमन व्यवस्था सिद्धान्त के दो महत्वपूर्ण अंग हैं। यदि कोई चीज व्यवस्था के अन्तर्गत वाह्य पर्यावरण से अन्दर आती है तो उसे आगमन कहते हैं तथा यदि कोई चीज व्यवस्था से बाहर जाती है तो उसे निगमन कहा जाता है। आगमन तथा निगमन दोनों को व्यवस्थाओं की सीमाओं के द्वारा अलग-अलग किया जाता है। आगमन एक व्यवस्था को हस्तांतरित होकर के अथवा ऊर्जा प्रदान करके बनाये रखता है। उदाहरण के लिए एक मां अयोग्य बच्चे की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सामूहिक व्यवस्था में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है जिससे कि वह बच्चे की मदद कर सके। निगमन एक व्यवस्था को संसाधन अथवा आलम्बन प्रदान करता है। व्यवस्था सिद्धान्त के अनुसार आगमन तथा निगमन के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों के द्वारा एक व्यवस्था को बनाये रखा जा सकता है।

इस प्रकार व्यवस्था सिद्धान्त व्यक्तियों, परिवारों, समूहों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों की अन्तःक्रिया को परिभाषित करने का प्रयास करता है। बजाय वृहत् सामाजिक पर्यावरण के व्यवस्था सिद्धान्त इस बात की व्याख्या करता है कि किस प्रकार से व्यक्ति, परिवार तथा समूह व्यवस्था के बीच पाये जाने वाले अकार्यात्मक कार्यों के द्वारा अकार्यात्मक व्यवहार उत्पन्न होता है जिससे व्यवहारिक लक्षणों की पहचान की जाती है।

6.4 नारीवाद की अवधारणा

महिलाओं की शारीरिक संरचना को पुरूष प्रधान समाज ने एक भिन्न सांस्कृतिक अर्थ प्रदान किया है। नारी शरीर का निर्माण पुरूष की सोच, कल्पना व अपेक्षाओं के अनुरूप निर्मित हुआ। इसी सोच को नारी ने स्वीकार करके स्व-शरीर को अपेक्षित स्वरूप में ढालने की प्रक्रिया अपनायी। यह प्रक्रिया सामाजीकरण व संस्कारगत व्यवहार मूल्यों के आधार पर प्रतिकृत होती रही। नारी की चाल ढाल, आदतें, तौर-तरीकें, अंग प्रत्यंग की साज-सज्जा, श्रंगार प्रसाधन वस्त्र आभूषण इत्यादि, आचार-विचार व उपकरणों के माध्यम से समाज के मानदण्ड निर्धारित होते गए। ये परंपराओं व प्रथाओं के माध्यम से संस्थात्मक प्रतिकृत होती रहे। नैतिकता व सौन्दर्य के मानदण्ड पुरूषों के द्वारा निर्धारित थे, जिन्हें महिलाओं ने व्यवहार से जोड़कर 'स्व' की पहचान को पुरूष के अनुरूप बनाया व पुरूष की दृष्टि के अनुरूप स्वयं को परिभाषित भी किया। इस संदर्भ में यह माना जाता है कि महिलाओं की रति-परिकल्पना, पुरूष के द्वारा उनसे अपेक्षित यौन व्यवहार की कल्पना से निर्मित हुआ है। इस दृष्टिकोण से नारी की स्व इच्छा व सोच स्वतंत्र रूप से प्रकट नहीं हो पाई और आरोपित मान्यताओं के आधार पर वह व्यवहार करने के लिए बाधित होती गयी।

स्त्री की सामाजिक व सांस्कृतिक संरचना में, जैसा कि कहा जा चुका है, धर्म, साहित्य, परंपराएं लोक ज्ञान का प्रभाव रहा है। साहित्य में स्त्री को प्रायः एक भोग्या के रूप में प्रस्तुत किया गया है। साहित्य में स्त्री नारी के काम स्वरूप की अभिव्यक्ति हुई है। नारी के द्वारा सृजनात्मक कार्यों को साहित्य में समुचित स्थान नहीं दिया गया है। साहित्य में नारी स्वयं के सौन्दर्य वर्णन से अभिभूत रही है। नारी की समानता व लौकिक शक्तिकरण के आयाम साहित्य में विश्लेषित किए जा रहे हैं-विशेषकर महिला लेखिकाओं द्वारा।

नारी संबंधित विचार की व्याख्या के संदर्भ में तीन संबोधों की चर्चा करना आवश्यक है। ये तीन संबोध निम्न है:

- नारीत्व
- नारीयता
- नारीवाद

नारीत्व

नारीत्व, पुरूष व स्त्री के बीच शारीरिक व जैविक अन्तर को स्पष्ट करने वाला शब्द हैै। शारीरिक विभेद जन्म से प्राप्त होते हैं जिनका आधार जननिक होता है। पुरूष और स्त्री के शरीर की बनावट में आवाज में, जनन अंगों में व अन्य कतिपय अंग भागों में अन्तर दो विभिन्न लिंगों के मध्य भेद को इंगित करते हैं। शरीर के भेद का अन्तर सभी प्रजातियों में पाया जाता है। यह भेद किसी एक श्रेणी को अधिक क्षमताशील नहीं बनाता और इस बात को स्पष्ट करता है कि विभेद, असमानता नहीं है। प्राणीशास्त्रीय विभेदों को सामाजिक असमानता में परिवर्तित करने की प्रक्रिया पुरूष प्रधान समाज की राजनैतिक जोड़-तोड़ का प्रतिफल है।

नारीयता

नारीयता, समाज व संस्कृति के द्वारा नारी का विशिष्ट निर्माण है, जिसके माध्यम से उसकी प्रस्थिति भूमिका पहचान, सोच, मूल्य व अपेक्षाओं को गढ़ा जाता है। नारीयता के निर्माण की प्रक्रिया समाज की संस्थाओं, सांस्कृतिक 'मूल्य व व्यवहारों, प्रथा, रीतियों, लिखित व मौखिक ज्ञान परंपराओं, धार्मिक अनुष्ठानों व नारी अपेक्षित विशिष्ट मूल्यों से स्थापित होती है। जन्म से ही बालक व बालिका के सामाजीकरण की प्रक्रिया इस तरह से संचालित होती है कि बालक को साहसिक बौद्धिक, आक्रामक कार्यों के प्रति ढालने का स्वरूप बनाया जाता है। बालिका को क्षमा, भय, लज्जा, सहनशीलता, सहिष्णुता, नमनीयता के गुणों को आत्मसात करने की शिक्षा-दीक्षा प्रदान की जाती है। यह प्रक्रिया बालक व बालिका के परिवेश से इस तरह जोड़ दी जाती है कि अन्ततः स्व-पहचान व अन्य लोगों की परिभाषा के आधार पर उसके अनुरूप व्यवहार करना सामान्य माना जाता है व प्रदत्त अपेक्षाओंसे भिन्न व्यवहार असामान्य करार कर दिया जाता है।बालक व बालिका के खेल व खिलौने इस तरह से भिन्न होते है कि समाज द्वारा परिभाषित नर-नारी के क्षेत्र में अनुरूप ही उनका विकास हो सके। सौंदर्य के प्रति अभिरूचि की आधारशिला भी बाल्यकाल से ही लड़की के मन में अंकित कर दी जाती है।इस प्रक्रिया में बालिका के संदर्भ में सौंदर्य को बुद्धि की तुलना में प्राथमिकता दी जाती है। एक अर्थ में इस छवि निर्माण के माध्यम से उसकी बौद्धिक क्षमताओं को द्वितीयक स्थान मिलता है। समाज की अनेक संस्थाएं नारी की प्रस्थिति को निम्न बनाने में सहायक होती है। परिवार व विवाह जैसी संस्थाएं जो कि व्यक्ति को भावनात्मक, सामाजिक, सास्कृतिक आर्थिक सुरक्षा प्रदान करते हैं, किसी स्तर पर नारी की असमान प्रस्थिति व शोषण की प्रक्रिया के लिए उत्तरदायी है। पितृ सत्तात्मक परिवारों में विवाह के पश्चात् लड़की को पति के घर जाना होता है। उसका पारिवारिक नाम बदल जाता है, अनेक समाजों में उसे सम्पत्ति में अधिकार नहीं होता। विवाह से जुड़े अनेक आयाम उदाहरणतः दहेज-प्रथा, वैधव्य, कौमार्य, अदृश्य हिंसा के आयाम नारी की प्रस्थिति के नकारात्मक पक्ष को प्रस्तुत करते हैं।

नारीवाद

नारीवाद, एक ऐसा विचार है कि पुरूष व स्त्री के मध्य असमानता को अस्वीकार कर नारी के सबलीकरण की प्रक्रिया को बौद्धिक व क्रियात्मक रूप से प्रस्तुत करता हैं। नारीवाद एक विचारधारा भी है और एक आंदोलन भी। नारीवाद की विचारधारा के अन्तर्गत अनेक प्रकार के संबोधो व सिद्धान्तों का निरूपण हुआ है। नारीवाद के सिद्धान्त के अन्तर्गत मूलरूप से समानता व सबलीकरण के माध्यम से महिलाओं व पुरूष के मध्य व्याप्त

समाजमत असमानता को नकारना है। नारीवाद के अनेक प्रकार है जिसमें अलग-अलग विचारकों ने विभिन्न आयामो को महत्व दिया है।

नारीवाद एक आन्दोलन है जिसकी यह मान्यता है कि नारी के हर वो अधिकार, अवसर (कानूनी, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक) मिले जो एक पुरूष को मिलते हैं। नारीवाद को प्रोत्साहन देने वाले लोग नारीवादी कहलाते हैं।

6.5 नारीवादी समाज कार्य की अवधारणा

स्त्री और दबे हुए वर्गों की तरह हमेशा से ही अपेक्षित रही है, उसे शिक्षा, पद और एक मनुष्य की पहचान भी नहीं मिली, नारी की दृढ़ निश्चय कि वह कमजोर नहीं है और उसकी सोच एवं कल्पना की वह हर अंधकारमय परिस्थितियों के बाहर आयेगी, नारीवाद समाज कार्य का जन्म इन्हीं कारणों के बाद हुआ जिससे अपना योगदान दिया और नारी के लिए कुछ कल्याणकारी कार्य किए। पारम्परिक समाजकार्य अभ्यास में नारी की निजी समस्याओं को कभी तूल नहीं दिया गया और कभी उन कारणों को नहीं खोजा गया जो उसे असहाय, निस्त्र और शोषित मानती है। उसकी समस्याएं अहमत्वपूर्ण रही क्योंकि गरीलब समुदाय में दूसरी समस्याएं (गरीबता, आर्थिक तंगी व्यवस्था) आकर्षित करती है।

नारीवाद समाज कार्य महिलाओं को व्यक्तिगत के रूप में नहीं देखता है बल्कि एक व्यक्तिगत रूप में वह महिला है, के दृष्टिकोण को स्वीकार करता है। नारीवाद समाज कार्य महिलाओं एवं पुरूषों में समानता की अवधारणा तथा समाजकार्य का मुद्दा है और सतत् जन-केन्द्रित विकास का एक सूचक तथा पूर्व अनिवार्य शर्त है। डोमिनली (1998) ने कुछ सिद्धान्तों को बताया है जो कि नारीवादी समाज कार्य अभ्यास को निर्देशित करता है। ये सिद्धान्त महिलाओं के द्वारा निभायी जाने वाली पालन-पोषण तथा देखभाल जैसी भूमिकाओं को अस्वीकार नहीं करता है बल्कि उन्हें यह अधिकार देता है कि वे घर पर उसके अतिरिक्त अन्य कार्यों को करे। इस प्रक्रिया में आवश्यक है कि महिलाओं को आलम्बन व संसाधन उपलब्ध कराये जाये जिससे कि वे वास्तव में वृद्धि कर सके। नारीवादी समाज कार्यकर्ता प्रत्येक महिला को एक-दूसरे के सम्पर्क में लाता है और सामूहिक प्रयास के द्वारा महिलाओं के व्यक्तिगत मुद्दों को सार्वजनिक करता है तथा इसे सामाजिक स्तर पर लाकर समाधान करता है। इस अभिगम में समाज कार्यकर्ता पुरूषों का विरोध नहीं करता है बल्कि पुरूषों के साथ मिलकर महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने तथा उन्हें समानता का अधिकार दिलाने में मदद करता है। समाजकार्य इस प्रक्रिया के दौरान पूरी आत्मीयता के साथ सहायता करता है अन्तिम क्षणों तक अपनी उपस्थिति को बनाए रखता है। नारीवादी समाज कार्यकर्ता मूल्यों के आधार पर समग्रवादी तथा प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण को अपनाता है। इसके अन्तर्गत महिलाओं को प्रोत्साहित करते हुए यह अभ्यास कराया जाता है कि वे आत्म-निर्धारण अधिकार का प्रयोग करते हुए अपने जीवन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं पर निर्णय ले। नारीवादी समाजकार्य एक समग्रवादी दृष्टिकोण है जिसमें समाज कार्य दर्शन एवं नारीवादी विचार धाराओं को शामिल किया जाता है।

6.6 नारीवाद से सम्बन्धित सिद्धान्त

नारीवाद की विचारधारा को समझने के लिए नारीवाद से सम्बन्धित विभिन्न दृष्टिकोणों को समझना अनिवार्य है। इन विचारधाराओं के आधार पर महिलाओं के मुद्दों को समझना, उसका विश्लेषण करना तथा उसका समाधान प्राप्त करना मुख्य लक्ष्य है। समय-समय पर उपलब्ध साहित्य में नारीवाद से सम्बन्धित विभिन्न विचारों का प्रतिपादन हुआ है। सबका अपना-अपना विश्लेषण और कार्य करने का तरीका है, फिर भी कुछ समान्य सिद्धान्त इस प्रकार हैं:-

- व्यक्तिगत और राजनैतिक जीवन के आयाम को एकबद्ध करना,
- नारी की विविधता को सम्मान देना,
- एक ऐसे सामाजिक सम्बन्ध की खोज करना,
- जहां स्त्री व पुरूष में समानता हो और
- सामाजिक व्यवस्था मे बदलाव लाना क्योंकि यह व्यवस्था स्त्री, पुरूष व बच्चों की जरूरतों को अनदेखा करती हैं।

उक्त समान्य सिद्धान्त के अतिरिक्त सभी विचारों को यहां पर संक्षिप्त रूप में समझाया जा रहा हैः-

उदारवादी नारीवादी

उदारवादी नारीवाद विचारधारा के लोग यह स्वीकार करते है के किसी कार्य की उपलब्धि के लिए पुरूष एवं महिलाओं के पास समाज सामथ्र्य होता है। इन विचारकों के अनुसार असमानता के मानवीय सामथ्र्य में व्यक्तिगत विभिन्नता तथा सम्प्रेषण के द्वारा होती है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में इस प्रकार की विभेदता देखने को मिलती है। यदि कुछ असमानताएं घंटी के आकार की होती है तो उसे सामान्य माना जाता है जबकि महिलाओं के समान अवसर का नकारते हैं। समाज जेण्डर विभेदता केा उत्पन्न करता है जिसे समाप्त किया जाना चाहिए। कुछ अन्य उदारवादी विचारकों की दृष्टि में महिलाओं को पुरूषों के समान प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। जो कि व्यक्तिगतवादी तथा स्वयं निर्देशित हो इसके अतिरिक्त तथ्य को भी स्वीकार करते हैं कि महिलाओं को सभी लाभ प्रदान किए जाने चाहिए जो पुरूषों को प्राप्त होते हैं।

उदार नारीवाद इस बात को महत्व देता है कि एक नारी की स्थिति में बदलाव तभी आ सकता है जब वह स्वतंत्र हो और उसे पुरूष के समाज अवसर मिले। इसकी मूल पद्धति नारी को स्वतंत्रता, समान अवसर और उसके व्यक्तित्व को सम्मान देने से हैं।

उदार नारीवाद में उन सीमाओं की आलोचना की है जो उसे उचित एवं उच्च शिक्षा नहीं देती है, जो उसे नौकरी के लिए समान अवसर नहीं प्रदान करती। यह उन नीतियों की मांग करता है जो एक नारी को निम्न अधिकार दे सके। समान अवसर की बढ़ोत्तरी होना और इस बात पर बल देना कि, एक नारी का वह अधिकार है कि उसे भी सामाजिक संसाधनों का प्रयोग करने का हक मिले।

उदार नारीवाद की यह मांग है कि नारी समान कार्य के लिए समान वेतन मिले और वह नारी को प्रोत्साहित करती है कि वह आर्थिक या वित्तीय स्वतंत्रता पा सके क्योंकि वह भी मजदूरी करती है।

अमूल नारीवादी

अमूल नारीवाद को मानने वाले मुख्य रूप से इस बात को स्वीकार करते हैं कि पुरूष एवं महिलाएं बात को स्वीकार करते हैं कि पुरूष एवं महिलाएं विरासत के रूप में एक दूसरे से अलग हैं। महिलाओं में जहां प्रेम और देखभाल के विशेष लक्षण होते हैं वहीं पुरूष शक्ति तथा प्रभुत्वशाली विचार धारा वाले और व्यक्तिगतवादी स्पर्धी तथा व्यस्त होते हैं। पुरूषों में यह विशेषताएं संस्थागत रूप में पैतृक तथा परम्परागत होती है। पितृसत्तामक व्यवस्था परिवार में स्पष्टतया देखने को मिलती है। जिसे निजी रूप में स्वीकार किया जाता है। अमूल नारीवाद यह देखते हैं जहां एक ओर महिलाओं के साथ लैंगिक स्वतंत्रता है वहीं दूसरी ओर उन पर अत्याचार नहीं होता है जहां

पुरूषों को महिलाओं की तरह कार्य करने के लिए उकसाया जाता है। अमूल नारीवाद लोग यह मानते है कि एक ऐसा समाज जहां पुरूषों द्वारा कोई अत्याचार नहीं किया जाता है और जहां पर लोग उन मूल्यों व मनोवृत्तियों को स्वीकार करते है जो कि पारम्परिक परिभाषा से अलग होती है।

अमूल नारीवाद का विकल्प संसाधनों के प्रयोग से नारी सहायता स्वयं कर सके और अपने पर, स्वयं का अधिकार कर सके। अमूलनारीवाद सिद्धान्त का मुख्य ध्येय यह है कि स्वयं विभिन्न प्रकार की सेवाओं का विकास करें, जिन्हें नारी ही क्रियान्वित करें, और जो नारी के हित के लिए हों।

इस सिद्धान्त का मत है कि एक नारी की समस्या सुलझ सकती है, जब वह पुरूषों के साथ काम करें, जिससे आचरण और व्यवहार में परिवर्तन आ सके। यह सिद्धान्त बच्चों पर शारीरिक हिंसा और यौन हिंसा से सम्बन्धित है। नारी को अत्यन्त संघर्ष करना पड़ता है और कठोर जीवन व्यतीत करना पड़ता है, क्योंकि पुरूष की आय कम है या जो वेतन घर ला रहा है वो कम हो, उस स्थिति में स्त्री का खर्च चलाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। जिसके कारण परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती है।

समाजवादी नारीवादी

समाजवादी नारीवादी इस अवधारणा को स्वीकार करते है कि समाज में महिलाओं के साथ अत्याचार किया जाता है जो कि लिंगवाद, नस्लवाद और वर्ग विभेद पर आधारित होता है। जो कि पूंजीवाद के विभिन्न उत्पाद/स्वरूप है। समाजवादी नारीवादी इस बात की वकालत करते हैं कि पूंजीवादी तथा पितृसत्तामक व्यवस्था के विरूद्ध लोगों को जागरूक किया जाये जिससे कि सशक्त होकर व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से राजनैतिक कार्यकलापों को करसके। वास्तव में यह ऐसी व्यवस्था है जो स्वयं को अत्याचार के विरूद्ध लड़ने के लिए प्रेरित करती है। समाजवादी नारीवाद यह आशा करते है कि इस व्यवस्था में, महिलाओं एवं पुरूष बिना एक दूसरे का शोषण करते हुए अपने सामथ्र्य का पूर्ण उपयोग करते हैं। इस प्रकार समाजवादी नारीवाद के दृष्टिकोण में यह एक ऐसा समाज है जहां पर महिलाओं एवं पुरूषों के बीच के सम्बन्ध आदर व सम्मान है तथा समग्रवादी सम्बन्ध पर आधारित है।

उत्तर आधुनिकता नारीवादी

उत्तर आधुनिकता नारीवादी दृष्टिकोण अन्य नारीवादी दृष्टिकोण से अलग तथा इसका सूत्रपात अन्य विचारों की अपेक्षा देर से हुआ है। उत्तर आधुनिकता वास्तव में एक सांस्कृतिक अवधारणा है जो कि उपलब्ध साहित्य में अलग से दिखायी देती है और जो नारीवादियों से अभिप्रेरित है। उत्तर आधुनिकता नारीवाद की रूपरेखा सैण्ड्स और न्यूकियो द्वारा प्रस्तुत की गयी है जो कि पितृसत्तामक व्यवस्था को चुनौती देता है तथा इसी समय महिलाओं में व्याप्त सांस्कृतिक विभिन्नता को प्रोत्साहित करता है। उदाहरण के लिए उत्तर आधुनिकता नारीवाद पश्चिमी तथा भारतीय महिलाओं कीचुनौतियों को भारतीय महिलाओं मे इसे ग्रामीण व नगरीय परिवेश के आधार पर अलग-अलग लेते हैं। यहां तक कि महिलाओं के कार्यों के आधार पर हिन्दू-मुस्लिम आधार पर और इत्यादि। ये सभीवर्गीकृत श्रेणियां लगभग एक जैसी होती है और इनकी चुनौतियां विशिष्ट होती है। इस प्रकार उत्तर आधुनिकता नारीवाद विभिन्नता, विविधता तथा बहुवादी दृष्टिकोणों पर बल देता है।

ऊपर दिये गये सिद्धान्तों का यदि विश्लेषण किया जाए तो यह प्रश्न सामने आता है कि कौन सा सिद्धान्त समाज कार्य अभ्यास के प्रारूप के लिए उपयुक्त होगा। सैद्धान्ति दृष्टिकोण के आधार पर उदारवादी तथा उत्तर आधुनिकता नारीवाद समाज कार्य अभ्यास के लिए अत्यधिक उपयुक्त प्रारूप है। इसका कारणयह है कि उदारवादी नारीवाद पुरूषों के विरूद्ध न होकर के उदारवादी नारीवाद पुरूषों के विरूद्ध न होकर के प्रजातांत्रिक

तरीके से महिलाओं की व्यक्तिगत तथा सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता करता है। उदारवादी नारीवाद इस बात में विश्वास करते है कि बिना किसी भय के सामाजिक तथा संस्थागत रूपों में परिवर्तन प्रजातांत्रिक तरीकों से ही लाया जा सकता है। ठीक इसी प्रकार उत्तर आधुनिकता नारीवाद सांस्कृतिक आधार पर विभिन्नताएं महिलाओं में होती है तथा उनकीचुनौतियां भी अद्वितीय होती हैं।

नारीवाद सिद्धान्त व अभ्यास बहुत ही ज्ञानवर्धक है। नारीवाद समाज कार्य के द्वारा कर्ताओं को यह बताया जा सकता है कि वे इन सिद्धान्तों को अपने व्यवसाय में प्रयोग कर सकते है। नारीवाद समाज कार्य प्रोत्साहन देता है कि, नारी से सम्बन्धित कोई भी समस्या में उसकी स्थिति और निवेदनशीलता को समझा जाए और नारी के ज्ञान, प्रतिभा को महत्व प्रदान करना और सहायता करना है।

नारीवाद सिद्धान्त के परिणामस्वरूप नारी को एक इंसान के समान समझा जाने लगा, जिसकी अपनी रूचि, विशिष्ट आकांक्षा अपने लिए और परिवार के लिए और उनके करीबियों के लिए और वे कोई कार्य करने का अपना तरीका खुद (स्वयं) निर्धारण कर सकती है क्योंकि उनमें वो ज्ञान है और मूल्यांकन करने की क्षमता है।

इस प्रकार महिलाओं को सामान्य सेवाएं प्रदान की जाती है और उसी समय विभिन्नता तथा विशिष्टता के आधार पर विशेष समूह को भी सहायता की जाती है। ये विचारधाराएं महिलाओं को स्वयं सशक्त होने के लिए प्रेरित करती है बजाय अन्य के विरूद्ध/ उत्तर आधुनिकता नारीवाद दृष्टिकोण भारतीय परिप्रेक्ष्य अत्यधिक उपयोगी प्रारूप है क्योंकि यहां पर भिन्न-भिन्न संस्कृति के लोग निवास करते हैं।

6.7 नारीवाद समाज कार्य के कार्य

- नारीवाद समाज कार्यकर्ता को यह आपत्ति है कि औरतों के अनुभव और स्थिति को समझने के लिए पुरूषों के अनुभव को ही माप माना जाता है,
- उन विश्वत त्याग करना (आलोचना) जिससे एक नारी को समझा जाता है।
- नारी के बहुमुखी व्यक्तित्व को सम्मान मिलना चाहिए।
- सभी को यह मानना चाहिए कि नारी में वह क्षमता है, जिससे किसी भी कार्य के संदर्भ में अपने आप निर्णय ले सकें।

6.8 नारीवाद समाज कार्य के मुख्य विषय

- नारीवादी समाजकार्य का महत्व,
- समाजकार्य दर्शन, मानव अधिकार, सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय घोषणाएं, नारीवादी आन्दोलन
- लिंग, जेण्डर, पहचान, नारीवाद, पुरूषत्व, पितृसत्तामक आदि शब्दों का अर्थ एवं समझ,
- नारीवाद के प्रारूप -उदारवादी, अमूलकारी, समाजवादी, उत्तर आधुनिकता और समाज कार्य का महत्व,
- नारीवादी समाज कार्य में गुणात्मक शोध,

- महिलाओं एवं पुरूषों के संरचनात्मक, संस्थागत, अन्तवैयक्ति, व्यक्तिगत कारको के बीच अंतर पर अंतर,
- सकारात्मक विभेद को न्यायसंगत बनाना, सार्थक नीति, वैधानिक उपायों तथा अन्य संस्थागत तथा गैर संस्थागत संरचनाओं की स्थापना।

6.9 नारीवाद समाज कार्य में आवश्यक निपुणताएं

- आत्म चेतना,
- सकारात्मक मूल्यांकन की निपुणता,
- महिलाओं को प्रोत्साहित करने की निपुणता,
- गहन साक्षात्कार की निपुणता,
- बातचीत, समन्वय तथा नेटवर्किंग सम्बन्धी निपुणता।

6.10 सारांश

सारांश के रूप में समाज कार्य के व्यवस्था सिद्धान्त व्यवस्थित प्रक्रिया के द्वारा सेवार्थी की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हुए समायोजन सम्बन्धी समस्याओं को दूर करता है। जिससे कि सेवार्थी पर्यावरण के साथ समायोजन स्थापित कर सके और एक संतोषजनक जीवन को जी सके। नारीवाद समाज कार्य में किसी भी विश्लेषण का केन्द्र बिन्दु एक नारी ही है। अगर समाज नारी को सहयोग देने के लिए सोचता है, जिससे उन्हें अपने जीवन पर पूर्ण अधिकार मिल जाय, तो उस समाज को वरिष्ठ सम्बन्ध प्रबन्ध पर आपत्ति करनी होगी और राज्य का हस्तक्षेप नारी उत्थान की दिशा में किस हद तक कारगर साबित हुआ है, मूल्यांकन करने योग्य है। उसके साथ ही पुरूष की गतिविधियों का विश्लेषण करना होगा कि, इस सन्दर्भ में जहां नारी पर अत्याचार होता है।

6.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) व्यवस्था सिद्धान्त पर अपने विचार दीजिए।

(2) पिन्कस एवं मिन्हान के व्यवस्था सिद्धान्त पर प्रकाश डालिए।

(3) व्यवस्था सिद्धान्त की मुख्य अवधारणाओं को स्पष्ट कीजिए।

(4) डीनिटों एवं मैक्नीस के व्यवस्था सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए।

(5) नारीवाद की अवधारणा पर अपने विचार दीजिए।

(6) नारीवादी समाज कार्य की अवधारणा पर प्रकाश डालिए।

(7) नारीवाद से सम्बन्धित सिद्धान्तों को स्पष्ट कीजिए।

(8) नारीवादी समाज कार्य में आवश्यक निपुणताओ को स्पष्ट कीजिए।

6.12 सन्दर्भ पुस्तकें

- Dinitto and Mcneece, Social Work: Issues and Opportunities, In Challenging Profession, LYCEUM, Chicago, 2008
- Malcom Payne, Modern Theory of Social Work, Mcmillan, London, 1997
- Adams, R., Dominelli, L. and Malcom Payne, (eds.), Social Work: Themes, Issues and Critical Debates, PALGRAVE, New York, 2002
- Specht, H., and Vickery, A., Integrating Social Work Methods, George Allen and Unwin, London, 1978.

- Agrawal, R. and Rao, BVLN, Gender Issues: A Road Map to Empowerment, Shipra Publications, Delhi, 2004.
- Sarkar, I., (ed.), Women in Changing Society, Serial Publication, New Delhi, 2008.
- Singh, S. and Srivastava, S.P., (ed.) Social Work Education in India: Challenges and Opportunities, NRBC, Lucknow, 2003.
- Wallace, T and March (ed.), Changing Perception: Reading in Gender and Development, 1991.
- Mosser, C., Gender Planning and Development: Theory, Practice and Trainning, Routledge, London, 1993.
- Mann, M. (eds.), Gender and Stratification, Polity Press, Cambridge,.
- Young, Kate., Planning Development with Women, Mcmillan, London, 1995.
- Dominielli, L. Feminist Social Work: An Expression of universal Rights, The Indian Journal of Social Work, Vol 59, Issue 4, 1998.
- Sands, R.G., and Nuccio, K., Postmodern Feminist theory and Social Work, Social Work, Vol 37, no 1, 1995.
- Nes, J A and Ladicola P., Towards Definition of Feminist Social Work: A Comprasion of liberal, radical and Socialist model, Social Work, Vol 34, No 1, 1989.

ईकाई-7

विभिन्न क्षेत्रों में समाज कार्य प्रक्रिया एवं परिवर्तनकर्ता के रूप में समाज कार्यकर्ता

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 समाज कार्य प्रक्रिया का अर्थ

7.3 समाज कार्य प्रक्रिया के चरण

7.4 समाज कार्य प्रक्रिया में मूल्यांकन एवं प्रतिपुष्टि

7.5 परिवर्तन कर्ता की भूमिका एवं कार्य

7.6 मध्यस्थकर्ता के रूप में परिवर्तन कर्ता

7.7 अधिवक्ता के रूप में परिवर्तन कर्ता

7.8 शिक्षक के रूप में परिवर्तन कर्ता

7.9 परामर्शदाता/चिकित्सक के रूप में परिवर्तन कर्ता

7.10 प्रबन्धक के रूप में परिवर्तन कर्ता

7.11 परिवर्तनकर्ता के रूप में परिवर्तन कर्ता

7.12 पथप्रदर्शक के रूप में परिवर्तन कर्ता

7.13 सामथ्र्यदाता के रूप में परिवर्तन कर्ता

7.14 विशेषज्ञ के रूप में परिवर्तन कर्ता

7.15 सक्रियदाता के रूप में परिवर्तन कर्ता

7.16 सारांश

7.17 अभ्यास प्रश्न

7.18 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्यनन के बाद आप –

1. समाज कार्य प्रक्रिया का अर्थ एवं उसके चरण को जान सकेंगे|
2. समाज कार्य प्रक्रिया के द्वारा यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि किस प्रकार से हस्तक्षेप के द्वारा व्यक्ति, समूह अथवा समुदाय की मनोसामाजिक अथवा आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है|
3. एक व्यावसायिक समाज कार्यकर्ता को किन-किन महत्वपूर्ण पहलुओं को ध्यान में रखना आवश्यक है ,यह ज्ञात हो जाएगा। समाज कायकर्ता की भूमिका एवं कार्यों को जान सकेंगे।
4. परिवर्तन कर्ता समाज कार्य प्रक्रिया के द्वारा विभिन्न प्रकार की भूमिकाओं का प्रतिपादन करते हुए व्यक्ति, समूह अथवा समुदाय की मनोसामाजिक अथवा मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में किस प्रकार सहायता प्रदान करता है, इसे समझ सकेंगे |

7.1 प्रस्तावना

समाज कार्य प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति, समूह अथवा समुदाय की मनोसामाजिक समस्या तथा आवश्यकताग्रस्त व्यक्तियों की सहायता हस्तक्षेप के द्वारा करना है। समाज कार्य प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्ति, समूह अथवा समुदाय की स्थिति को बेहतर बनाना तथा उनको वे सभी अवसर प्रदान करना है जो उनके सामंजस्य में बाधा उत्पन्न करती है। जिससे कि वे एक अच्छा जीवन स्तर जी सके और सामाजिक उत्तरदायित्व का उचित निर्वाहन कर सके।

परिवर्तन कर्ता का मुख्य उद्देश्य लोगों की सहायता करना जिससे कि वे सामंजस्यपूर्ण जीवन व्यतीत कर सके। परिवर्तन कर्ता व्यावसायिक के रूप में कार्य करता है और समुदाय में आत्मनिर्भरता तथा आत्मनिर्देशन का विकास करता है। जिससे कि व्यक्ति, समूह अथवा समुदाय स्वयं निर्णय कर सके और अपने संसधानों को गतिमान कर सके। परिवर्तन कर्ता वास्तव में एक सहायता देने वाला व्यक्ति है जो कि सेवार्थी की आवश्यकताओं तथा उपलब्ध संसाधनों के मध्य सामंजस्य स्थापित करते हुए उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होता है।

वर्तमान समय में अधिकतर परिवर्तन कर्ता विभिन्न प्रकार की भूमिकाओं का प्रतिपादन कर रहे हैं। एक व्यवसाय में प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि वह निश्चित क्रियाओं का सम्पादन करेगा। यथा एक चिकित्सक से यह आशा की जाती है कि वह बीमार व्यक्ति की स्थिति का निदान करने के लिए कुछ परीक्षण करेगा, उपचार देगा तथा परिणाम का मूल्यांकन करेगा। इसी प्रकार जब एक व्यक्ति परिवर्तन कर्ता की भूमिका का निर्वहन करता है तो यह आशा की जाती है कि अभ्यास की परिस्थितियों का विश्लेषण सावधानीपूर्वक करेगा, अतिमहत्वपूर्ण हस्तक्षेप तकनीकियों को लागू करेगा, और किए गए प्रयासों की सफलता अथवा असफलता का आंकलन करेगा। अतः व्यवसाय के व्यक्तिगत रूप से एक व्यक्ति की भूमिका क्या होगी, का निर्धारण व्यावसायिक मानकों और सीमाओं द्वारा होता है कि परिवर्तन कर्ता क्या करेगा अथवा नहीं।

7.2 समाज कार्य प्रक्रिया का अर्थ

समाज कार्य अभ्यास विशेष वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित है। समाज कार्य में अभ्यास का विकास समाज कार्य ज्ञान पर आधारित पर निपुणता, क्षेत्रीय अनुभव तथा सतत् शिक्षा द्वारा हुआ है। बिना उचित ज्ञान, सैद्वान्तिक जागरूकता, व्यावसायिक अभ्यास तथा निपुणता के, व्यक्ति की स्थिति का आकलन नहीं किया जा सकता है। इसीलिए सैद्वान्तिक ज्ञान, निपुणता, क्षेत्रीय अनुभव, समाज कार्य ज्ञान के विकास का मुख्य आधार है। समाज कार्य ज्ञान अभ्यास आधारित शोध तथा समाज कार्य हस्तक्षेप के मूल्यांकन के बगैर समाज कार्य ज्ञान स्थैतिक, अनुपयोगी एवं अप्राप्त हो जायेगा।

समाज कार्य एक व्यावसायिक क्रिया है जो कि व्यक्तियों समूहों अथवा समुदायों की सामाजिक कार्यात्मकता की क्षमताओं को बनायें रखने अथवा उसमें वृद्वि करने तथा लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सामाजिक स्थिति को अनुकूल बनाने सहायता करती है। समाज कार्य एक व्यावहारिक विज्ञान है जिसके द्वारा लोगो की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए प्रभावी रूप से मनोसामाजिक एवं सामाजिक परिवर्तन के लिए सहायता की जाती है।

7.3 समाज कार्य प्रक्रिया के चरण

समाज कार्य अभ्यास के द्वारा व्यक्तियों, समूहों अथवा समुदायों को सामाजिक कार्यात्मकता में वृद्वि करने के लिए सेवार्थी के साथ मुख्य पाच चरणों में कार्य करना पड़ता है | समाज कार्य अभ्यास प्रक्रिया के चरण संक्षिप्त में निम्नलिखित हैं-

1. समस्या की पहचान
2. आकलन एवं लक्ष्य का निर्धारण।
3. कार्य योजना का विकास।
4. कार्य योजना को लागू करना |
5. समापन |

समस्या की पहचान

समाज कार्य अभ्यास प्रक्रिया का प्रथम चरण समस्या की पहचान करना है। समाज कार्यकर्ता, हस्तक्षेप के द्वारा समस्याओं की पहचान करने एवं उसे सही रूप से परिभाषित करने में सेवार्थी की सहायता करता है। समाज कार्यकर्ता की भूमिका स्पष्ट रूप से समस्या की गत्यात्मकता, समस्या का प्रारम्भ एवं अन्त के विषय में जानकारी प्राप्त करने में तार्किक दृष्टिकोण को अपनाता है। समाज कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्या पर पूर्ण विचार-विमर्श करता है तथा गम्भीरता एवं पूर्ण समर्पण के साथ सेवार्थी की सहायता करने को तैयार होता है। सहायता प्रदान करने के इस प्रारंभिक चरण में समाज कार्यकर्ता अपने अनुभव के द्वारा सेवार्थी के साथ सौहार्द एवं घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करता है। घनिष्ठ सम्बन्ध की स्थापना से सेवार्थी सहज महसूस करते हुए परिवर्तन के लिए तैयार होता है। इस प्रक्रिया में अम्यासकर्ता सेवार्थी को साधारण सलाह देने से दूर रहता है। समाज कार्यकर्ता का चाहिए कि प्रक्रिया के प्रथम चरण में ही समापन के विषय में सेवार्थी से विचार विमर्श कर ले। ऐसा करने से सेवार्थी इस बात के लिए जागरूक हो जाता है कि उसके साथ क्या होने वाला है तथा उपचार के पश्चात उसके लिए क्या आवश्यक है।

कार्यकर्ता के लिए प्रत्येक सत्र अथवा मीटिंग के पश्चात् संक्षिप्तीकरण कर, तकनीकियों का उपयोग करना आवश्यक है, क्योंकि सेवार्थी यह पूछ सकता है कि सत्र में क्या-क्या सम्मिलित किया गया है और निर्धारित उद्देश्यों और लक्ष्यों की प्राप्ति में क्या प्रगति हुई है। सत्र में कार्यकर्ता द्वारा किये गये प्रयासों का संक्षिप्तीकरण सेवार्थी के लिए नही किया जाना चाहिए अपितु सेवार्थी द्वारा स्वयं के शब्दों से संक्षिप्तीकरण किया जाना चाहिए। सेवार्थी द्वारा दिये गये कथन के आधार पर समाज कार्यकर्ता को यह ज्ञात होता है कि निर्धारित लक्ष्यों में किन-किन आवश्यकताओं की पूर्ति हुई है और इसका क्या परिणाम हुआ है।

समाज कार्य अभ्यास प्रक्रिया के प्रथम चरण में समाज कार्यकर्ता यह भी निर्धारित और उसका मूल्यांकन करता है कि किस प्रकार से हस्तक्षेप के पश्चात् अभ्यास की प्रक्रिया प्रभावी होगी, क्योंकि प्रत्येक अध्ययन में अपनायी गयी तकनीकियां अलग-अलग होती है।

आकलन एवं लक्ष्य का निर्धारण

समाज कार्य अभ्यास प्रक्रिया का दूसरा मुख्य चरण आकलन एवं लक्ष्य का निर्धारण करना है। यह चरण सेवार्थी को सहायता प्रदान करता है जिससे कि वह लक्ष्यों अथवा उद्देश्यों को निश्चित कर सके, जो कि एक दुष्कर्य कार्य होता है। कार्यकर्ता तथा सेवार्थी की सहायता के लिए सेवार्थी की आवश्यकताओं का आंकलन करते है और किस प्रकार से समस्या को जाना जा सकता है, इसका प्रयास करते है। लक्ष्य सम्पूर्णता को स्पष्ट करता है तथा उद्देश्यों द्वारा अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। जिसके आधार पर प्राप्त होने वाले परिणाम का मापन किया जा सकता है। लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को निर्धारित करते समय निम्नालिखित महत्वपूर्ण बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिएः-

- यह आश्वस्त करना कि कार्यकर्ता तथा सेवार्थी हस्तक्षेप के लिए सहमत है,
- सेवार्थी को अवसर प्रदान करना जिससे कि वह अपनी समस्या को सम्बोधित कर सके,
- उपचार की उपयुक्त रणनीतियों के चयन के अवसर प्रदान करना अथवा आधार प्रदान करना,
- हस्तक्षेप की प्रगति तथा सत्र के लिए सेवार्थी को सहायता प्रदान करना,
- प्रभावी हस्तक्षेप की माप करने के लिए उद्देश्यों को निर्धारित करना।

उद्देश्यों तथा लक्ष्यों के निर्धारण के पश्चात निम्नलिखित को लागू करना चाहिए -

- लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को सेवार्थी की आवश्यकताओं से सम्बन्धित करना जिससे हस्तक्षेप के पश्चात प्राप्त किया जा सके,
- लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को उचित रूप में परिभाषित करना जिससे कि सेवार्थी को यह ज्ञान हो सके कि वह क्या चाहता है,
- उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिए, जिससे सेवार्थी अभ्यास प्रक्रिया पर विश्वास कर सके अन्यथा वह हस्तक्षेप प्रक्रिया को नकार सकता है,
- उद्देश्य एवं लक्ष्य ऐसे होने चाहिए जिससे कि कार्यकर्ता मार्ग दर्शन प्राप्त कर सके,

- सम्भावित लक्ष्य एवं उद्देश्य नकारात्मक न होकर सकारात्मक होने चाहिए , और
- सभी लक्ष्यों पर सेवार्थी की सहमति होनी चाहिए क्योकि बगैर सहमति के पूर्वाग्रह की सम्भावना बनी रहती है।

क्रिया योजना विकास

एक बार लक्ष्यों एवं उद्देश्यों स्पष्ट रूप से पहचान हो जाने के बाद समाज कार्यकर्ता कार्य योजना के विकास के लिए सेवार्थी की सहायता करता है। समाज कार्यकर्ता की भूमिका परिवर्तन और क्रिया के लिए उपयुक्त रणनीतियों की पहचान करने के लिए सर्वोपरि होती है। कार्य योजना को लागू करने के लिए समाज कार्यकर्ता प्रत्यक्ष रूप से अथवा सलाह के लिए समर्थ हो सकता है और वह सामान्य है तो विशेषज्ञ सेवाए प्रदान करने के लिए अन्य किसी विशेषज्ञ से मदद ले सकता है जिसमें सेवार्थी की मंजूरी आवश्यक है।

कार्य योजना में एक कार्य अथवा कार्यों की श्रंखला होती है। प्रत्येक कार्य स्पष्ट एवं विशेष होता है जिसका अनुश्रवण, कार्यकर्ता तथा सेवार्थी दोनो के द्वारा समय सीमा में किया जाता हैं। प्रत्येक कार्य पूर्व में किये गए प्रयासो से सम्बन्धित होता तथा साथ में निर्धारित किये गये लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को दिशा निर्देश प्रदान करता है।

कार्य योजना लागू करना

कार्य योजना को तब लागू किया जाता है जब सेवार्थी इसके लिए तैयार हो जाता है। कार्य योजना लागू करते समय कार्यकर्ता तथा सेवार्थी साथ में सेवार्थी की प्रगति का अनुश्रवण करते है। यह क्रिया योजना मूल्यांकन का एक भाग है जो कि साक्ष्य आधारित अभ्यास है। इसलिए अभ्यास मूल्यांकन यह निर्धारित करता है कि समस्या को दूर करने में उपयोगी है अथवा नहीं। अनुश्रवण द्वारा कार्यकर्ता तथा सेवार्थी लक्ष्य आधारित प्रगति का आंकलन करने में समर्थ होते हैं, हस्तक्षेप की प्रभविकता को जानते है, प्रगति अथवा कमी के प्रति सेवार्थी की प्रतिक्रिया का परीक्षण करते हैं तथा सम्प्रेरणा में वृद्धि करते है। सतत् अनुश्रवण की प्रक्रिया सेवार्थी तथा कार्यकर्ता को अधिकार देती है कि प्रक्रिया में आने वाली बाधाओं अथवा सुदृढ़ता का पता लगाए तथा नई रणनीतियों को निर्मित करके आने वाली बाधाओं को दूर करे। इसके अतिरिक्त मुख्य रूप से अनुश्रवण के द्वारा यह भी पता लगाया जाता है कि परिवर्तन के लिए किये जा रहे प्रयासों के प्रति सेवार्थी का क्या सकारात्मक विचार है।

कार्य-योजना को लागू करने में समाज कार्यकर्ता के लिए आवश्यक उसे अभ्यास का पूर्ण ज्ञान हो। समाज कार्य अभ्यास का ज्ञान समाज कार्यकर्ता के लिए आवश्यक है क्योंकि सेवार्थी की सहायता करने के लिए उसे कई प्रकार की रणनीतियों का उपयोग करना होता है।

समापन

समाज कार्य अभ्यास का आखिरी चरण प्रक्रिया का समापन है। सेवार्थी तथा समाज कार्यकर्ता कार्यशील सम्बन्धों को समाप्त करते है और इसके लिए कौन सी रणनीति विकसित करने के लिए उपयोगी हो सकती है, को परिभाषित करते है। अधिकतर बहुत से सेवार्थी समापन के चरण पर इस बात को महसूस करते हैं कि उन्हे अन्य अतिरिक्त सेवाएं और क्या सहायता चाहिए। ऐसी स्थिति में समाज कार्यकर्ता सेवार्थी को सूचित करता है कि सतत् हस्तक्षेप के अन्य विकल्प क्या है तथा उपयुक्त सन्दर्भ सेवाओं द्वारा कैसे सांवेगिक विकास को प्राप्त कर सकते है। इसके लिए सामूहिक चिकित्सा, व्यक्ति वृद्वि-निर्देशित चिकित्सा तथा चिकित्सा को शामिल किया जा सकता है।

उपरोक्त चरणों को समाज कार्य प्रक्रिया में अपनाया जाता है परन्तु कोई भी अभ्यास प्रक्रिया तब तक सफल नहीं हो सकती है जब तक कि उसका सतत् मूल्यांकन न हो और प्रदान की जाने वाली सेवायें अथवा सहायता के विषय में प्रतिपुष्टि न प्राप्त हो। इसीलिए समाज कार्य अभ्यास प्रक्रिया में मूल्यांकन एवं प्रतिपुष्टि, अभ्यास प्रक्रिया के प्रत्येक चरण पर लागू की जाती है।

7.4 समाज कार्य प्रक्रिया में मूल्यांकन एवं प्रतिपुष्टि

किसी भी प्रक्रिया की सफलता अथवा असफलता का मापन मूल्यांकन तथा प्रतिपुष्टि के द्वारा किया जा सकता है। मूल्यांकन एवं प्रतिपुष्टि प्रक्रिया के लिए अतिमहत्वपूर्ण है क्योंकि इसका उपयोग प्रक्रिया के प्रत्येक चरण पर किया जाता है। इसका लाभ यह होता है कि प्रत्येक चरण में किये जाने वाले कार्यों अथवा उद्देश्यों की प्राप्ति कहां तक संभव हो सकती है तथा आवश्यकता के अनुरूप उसमें किसी भी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता है तो उसे यथाशीघ्र लागू किया जा सके। मूल्यांकन तथा प्रतिपुष्टि की भूमिका समाज कार्य प्रक्रिया में क्या हो सकती है, इसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है जिससे इसकी उपयोगिता को समझा जा सकता है।

मूल्यांकन एवं प्रतिपुष्टि

एक अभ्यास प्रक्रिया तभी सफल मानी जा सकती है जब हस्तक्षेप के द्वारा सेवार्थी की कार्यात्मकता के स्तर में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाये। इन परिवर्तनों को आवश्यक रूप से साक्ष्य आधारित अभ्यास के द्वारा ही मापा जा सकता है। हस्तक्षेप की प्रभावशीलता को प्रतिपुष्टि के द्वारा आसानी से मापा जा सकता है अथवा सेवार्थी के व्यवहार में आये परिवर्तन को हस्तक्षेप के द्वारा पूर्व में किये गये प्रयासों तथा पश्चात् की कार्य योजना के द्वारा प्राप्त परिणामों को मानक स्केल के द्वारा तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा मापा जा सकता है। नियोजित अभ्यास मूल्यांकन तथा प्रतिपुष्टि हस्तक्षेप के लिए आवश्यक है इसीलिए शोध, मूल्यांकन एवं प्रतिपुष्टि को समाज कार्य अभ्यास की प्रक्रिया के प्रत्येक चरण पर शमिल किया जाता है।

7.5 परिवर्तन कर्ता की भूमिका एवं कार्य

एक व्यवसाय में प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि वह निश्चित क्रियाओं का सम्पादन करेगा। यथा एक चिकित्सक से यह आशा की जाती है कि वह बीमार व्यक्ति की स्थिति का निदान करने के लिए कुछ परीक्षण करेगा, उपचार देगा तथा परिणाम का मूल्यांकन करेगा। इसी प्रकार जब एक व्यक्ति परिवर्तन कर्ता की भूमिका का निर्वहन करता है तो यह आशा की जाती है कि अभ्यास की परिस्थितियों का विश्लेषण सावधानीपूर्वक करेगा, अतिमहत्वपूर्ण हस्तक्षेप तकनीकियों को लागू करेगा, और किए गए प्रयासों की सफलता अथवा असफलता का आंकलन करेगा। अतः व्यवसाय के व्यक्तिगत रूप से एक व्यक्ति की भूमिका क्या होगी, का निर्धारण व्यावसायिक मानकों और सीमाओं द्वारा होता है कि परिवर्तन कर्ता क्या करेगा अथवा नहीं।

वर्तमान समय में अधिकतर परिवर्तन कर्ता विभिन्न प्रकार की भूमिकाओं का प्रतिपादन कर रहे हैं। कुछ विशेष प्रकार की भूमिकाओं एवं कार्यों का निवर्हन कर रहे हैं तो कुछ सामान्य कार्यकर्ता के रूप में वृहत् स्तर पर अपनी भूमिका को प्रतिपादित कर रहे हैं।

एक व्यवसाय के व्यावसायिक कार्यकर्ता के कार्य एवं भूमिका सामाजिक प्रतिमानों तथा ऐतिहासिक परम्पराओं द्वारा परिभाषित की जाती है, वैधानिक संहिताओं तथा प्रशासनिक नियमनों के द्वारा कार्य करने की अनुमति दी जाती है, जिसमें संस्थागत नीतियों एवं प्रक्रियाओं की भूमिका होती है। यथा एक परिवर्तन कर्ता

सेवार्थी की स्थिति का अध्ययन करने में एक मध्यस्थ कर्ता, एक परामर्शदाता अथवा एक चिकित्सक अथवा एक वैयक्तिक प्रबन्धक की भूमिका का निवर्हन करता है।

7.6 मध्यस्थकर्ता के रूप में परिवर्तन कर्ता

समाज कार्य विशेष रूप से सहायता प्रदान करने वाला व्यवसाय है जो कि लोगों की सहायता करता है जो उनके सामाजिक पर्यावरण से सम्बन्धित होते हैं। ऐसे स्थान पर परिवर्तन कर्ता एक व्यावसायिक व्यक्ति होता है जो सेवार्थी तथा सामुदायिक संसाधनों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने में सहायता करता है। एक मध्यस्थता की स्थिति में परिवर्तन कर्ता सेवार्थी की आवश्यकताओं, उसके प्रेरणाओं का आंकलन तथा विभिन्न संसाधनों को उपयोग करने की क्षमता तथा संसाधनों को प्राप्त करने में सहायता करता है।

मानवीय सेवाओं के एक मध्यस्थकर्ता के रूप मे परिवर्तन कर्ता उपलब्ध विभिनन प्रकार की सेवाओं एवं कार्यक्रमों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। प्रत्येक की शक्ति एवं सीमाओं का आंकलन करता है तथा संसाधनों के आंकलन करने की प्रक्रिया को समझता है। ये सभी संसाधन सामाजिक प्रावधानों यथा धन, भोजन, वस्त्र, आवास तथा/अथवा सामाजिक सेवाओं में परामर्श, चिकित्सा, सामूहिक अन्तःक्रिया पुनर्वास सम्बन्धी सेवाएं हो सकती है।

परिवर्तन कर्ता के कार्य:-

सेवार्थी स्थिति का आंकलन:- मध्यस्थता के प्रथम चरण में सेवार्थी की योग्यता और आवश्यकताओं का सही रूप से आंकलन करते हुए वृहत् स्तर पर समझने का प्रयास करता है। एक निपुण मध्यस्थकर्ता सेवार्थी की स्वैच्छिक वादिता, संस्कृति, बोलने की क्षमता, सांवेगिक स्थिरता, बौद्धिकता तथा परिवर्तन के लिए कटिबद्धता इत्यादि कारकों आंकलन करने में निपुण होता है।

संसाधनों का आंकलन:- एक परिवर्तन कर्ता उन विभिन्न संसाधनों का पता लगाने का प्रयास करता है जिससे सेवार्थी की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। अपनी संस्था जिससे वह सम्बद्ध है अथवा अन्य सामुदायिक संस्थाओं द्वारा दी जाने वाली सेवाओं यथा सेवा की गुणवत्ता, सेवाओं के प्रकार, सेवाओं की लागत, सेवा को प्राप्त करने की योग्यता, इत्यादि के प्रति जागरूक होता है। अतिरिक्त रूप में परिवर्तन कर्ता संसाधनों को उपयोग में लाने वाले उचित मार्ग के विषय में भलीभांति परिचित होता है।

संदर्भ सेवाएं:- आवश्यक संसाधनों से सेवार्थी की सम्पर्क स्थापित होने की प्रक्रिया में परिवर्तन कर्ता सेवार्थी की योग्यता एवं प्रेरणा के अनुसार यह निर्णय करता है कि सेवार्थी इच्छानुसार किन सेवाओं को स्वीकार करेगा अथवा नहीं। इस निर्णय के आधार पर परिवर्तन कर्ता सन्दर्भ प्रक्रियाओं से ज्यादा से ज्यादा अथवा न्यूनतम स्तर पर सक्रिय होता है। परिवर्तन कर्ता इस बात की जांच करता अथवा परखता है कि सेवार्थी की आवश्यकताओं की पूर्ति हो पा रही है या नहीं। ऐसी स्थिति में पुनः कार्य करने की आवश्यकता पड़ती है।

सेवा व्यवस्था सम्बन्ध:- मध्यस्थता की स्थिति में समाजकार्य परिवर्तन कर्ता सेवा वितरण व्यवस्था के प्रत्येक स्तर पर लगातार सेवार्थी से सम्बन्ध बनाये रखता है। परिवर्तन कर्ता संस्था, कार्यक्रम तथा सेवाओं एवं संचार के माध्यमों, सूचनाओं, संसाधनों को गतिमान करने, संस्था की योजनाओं में, सूचनाओं में सुदृढ़ता प्रदान करना तथा लगातार सम्पर्क बनाये रखता है।

सूचना प्रदान करना:- परिवर्तन कर्ता सेवार्थी को लगातार सूचना प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त परिवर्तन कर्ता सामान्य जन सेवाओं के सेवार्थी की आवश्यकताओं तथा उपलब्ध सेवाओं के बीच जागरूकता स्थापित करता है।

7.7 अधिवक्ता के रूप में परिवर्तन कर्ता

वकालत करना समाज कार्य का मुख्य आधार है जो कि आचार संहिता द्वारा संचालित होती है। वकालत एक या एक से अधिक व्यक्तियों, समूहों, शामिल अथवा समुदायों की ओर प्रत्यक्ष रूप से बचाव करना, आलम्बन देना अथवा सिफारिश करने की क्रिया का एक माध्यम तथा साथ में सामाजिक न्याय के लक्ष्य की प्राप्ति अथवा संरक्षित करने का तरीका है। परिवर्तन कर्ता वकालत की विभिन्न विधियो के साथ परिवर्तन की प्रक्रिया में सेवार्थी के आत्मनिर्धारण एवं सहभागिता के सिद्धान्त का अधिकतम उपयोग करते हुए संतुलन बनाने का प्रयास करता है और यह भी प्रयास करता है कि सेवार्थी अपने उद्देश्यें की प्राप्ति स्वतः वकालत करके कर सके। एक परिवर्तन कर्ता सेवार्थी की विशेषताओं का चयन करते हुए उचित देखभाल करता है तथा नकारात्मक के विरूद्ध अथवा सम्पूर्ण अपेक्षित क्रियाओं के प्रति तैयार रहती है।

परिवर्तन कर्ता के कार्य

सेवार्थी अथवा वैयक्तिक वकालत:- इस प्रकार की वकालत में यह देखा जाता है कि सेवार्थी सेवाओं अथवा संसाधनों को प्राप्त करने योग्य है, अथवा प्राप्त किया है। इस प्रक्रिया में सेवार्थी से सम्बन्धित सूचनाओं को एकत्र किया जाता है तथा यह निर्धारित किया जाता है कि वह आवश्यक सेवाओं के लिए योग्य है। यह प्रक्रिया सेवार्थी को अपील करने में सहायता प्रदान करती है और अन्य स्थिति में यदि आवश्यकता पड़ती है तो सेवा प्रदान करने वाले अथवा संस्था के विरूद्ध वैधानिक कार्यवाही की जाती है।

वर्ग वकालत:- इस प्रकार के कार्य में परिवर्तन कर्ता सेवार्थी के समूहों अथवा जनसंख्या के एक भाग जिनकी सामान्य समस्या है, को सेवाएं प्रदान की जाती है। विशेष रूप से लोगों के समूहों को सेवाओ से प्राप्त होने वाले लाभों अथवा नागरिक अधिकारों से प्राप्त होने वाले लाभों में आने वाली बाधाओं अथवा रूकावटों को दूर करने में वर्ग वकालत के द्वारा कार्य किया जाता है। सामान्यतः इस प्रकार के प्रयासों का उद्देश्य संस्था के नियमों, सामाजिक नीतियों, कानूनों इत्यादि में परिवर्तन लाना होता है।

7.8 शिक्षक के रूप में परिवर्तन कर्ता

अधिकतर परिवर्तन कर्ता अभ्यास सेवार्थी अथवा सेवार्थी समूह के जीवन से सम्बन्धित समस्याओं को समझने अथवा उनके जीवन में आने वाली या उत्पन्न होने वाली समस्याओं/संकट की रोकथाम में शिक्षा प्रदान करता है। जिसका मुख्य उद्देश्य सेवार्थी को सशक्त करना है। शिक्षक की भूमिका में परिवर्तन कर्ता सेवार्थी को यह समझाने का प्रयास करता है कि किस प्रकार परिस्थितियों को स्वीकार किया जाये। जो परिस्थितियां लोगों पर नकारात्मक प्रभाव डालती है को समझने के लिए सूचनाएं, योग्य सलाह, सम्भावित विकल्पों की व्याख्या और उसके प्रभाव को जानने में सेवार्थी को सहायता करता है तथा उसके जीवन से सम्बन्धित विभिन्न मुद्दों से सम्बन्धित सूचनाएं उपलब्ध कराता है जिससे कि वह उचित निर्णय ले सके।

समाज कार्य अभ्यास का आधारभूत उद्देश्य है कि सेवार्थी को अकार्यात्मक व्यवहार को परिवर्तित करे और सामाजिक अन्तक्रिया के विभिन्न पक्षों को प्रभावशाली रूप से सीखे। इस प्रक्रिया के द्वारा सेवार्थी समाज के प्रतिमानों कानूनों अथवा नियमों सामाजिक निपुणता का विकास, कार्यात्मक भूमिका को सीखना, तथा अपने

व्यवहार के प्रति अन्तर्दृष्टि को प्राप्त करता है। इस प्रक्रिया में सेवार्थी की सहायता साक्षात्कार द्वारा अथवा संरचित शैक्षिक क्रियाओं यथा कार्यशाला द्वारा की जाती है।

परिवर्तन कर्ता के कार्य:-

सामाजिक और दैनिक जीवन जीने की कला:- शिक्षक, सेवार्थी के कौशल का उपयोग संघर्ष समाधान, मुद्रा प्रबन्धन, जन यातायात के उपयोग, जीवन के नये आयाम के साथ समायोजन, वैयक्तिक देखभाल एवं स्वच्छता, प्रभावी संचार इत्यादि इस क्रिया के उदाहरण हैं, जहां पर परिवर्तन कर्ता के रूप में नियमित रूप से कार्य करते रहते हैं।

व्यवहार परिवर्तन में सहायता:- परिवर्तन कर्ता संकेतात्मक अभिगम का प्रयोग करते हुए यथा भूमिका प्रतिपादन, मूल्यों का स्पष्टीकरण, व्यवहार आशोधन के द्वारा सेवार्थी के अन्तरावैयक्तिक व्यवहार को प्रभावी बनाता है।

प्रारम्भिक रोकथाम:- ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यदि देखा जाये जो स्पष्ट होता है कि समाज कार्य व्यवसाय मानवीय समस्याओं एवं उससे सम्बन्धित लोगों की स्थिति से सम्बन्धित रहा है। वर्तमान में परिवर्तन कर्ता ने प्राथमिक रोकथाम की ओर अत्यधिक ध्यान दिया है। समस्याओं के विकास की रोकथाम कई स्थानों पर निरोधात्मक प्रयासों के द्वारा परिवर्तन कर्ता ने एक शिक्षक यहां तक की एक जन शिक्षककर्ता की भूमिका का प्रतिपादन कर रहा है। उदाहरण के रूप में पूर्व विवाह परामर्श, परिवार नियोजन से सम्बन्धित सूचनाओं को देना तथा सामाजिक मुद्दों एवं समस्याओं के प्रति लोगों को जागरूक करना।

7.9 परामर्शदाता/चिकित्सक के रूप में परिवर्तन कर्ता

परिवर्तन कर्ता ने अधिकतर एक परामर्शदाता/चिकित्सक की भूमिका में साक्ष्य आधारित मूल्यांकन का निष्पादन करता है तथा वैयक्तिक पारिवारिक तथा सामूहिक स्तर पर लोगों से सम्बन्धित सामाजिक एवं सांवेगिक मुद्दों पर आधारित स्थिति पर हस्तक्षेप द्वारा प्रयास करता है। इस प्रकार की भूमिका में परिवर्तन कर्ता के लिए आवश्यक है कि उसे मानवीय व्यवहार एवं सामाजिक पर्यावरण लोगों को कैसे प्रभावित करता है, सेवार्थी की आवश्यकताओं का पता लगाने की योग्यता, सेवार्थी को हस्तक्षेप द्वारा कैसे सहायता प्रदान की जा सकती है, कौन सी हस्तक्षेप तकनीकियों को अपनाया जायेगा तथा परिवर्तन की प्रक्रिया के द्वारा सेवार्थी को निर्देशित करने की योग्यता, इत्यादि का ज्ञान हो।

परिवर्तन कर्ता के कार्य:-

मनोसामाजिक आंकलन एवं निदान:- सेवार्थी की स्थिति को समझने के लिए उसकी प्रेरणाओं, क्षमताओं तथा परिवर्तन के अवसरों का आंकलन करना, आवश्यक है। सेवार्थी तथा उसके पर्यावरण को प्रोत्साहित करने के लिए सूचनाओं का अवधारणात्मक संकलन होना आवश्यक है। इसके साथ ही परिवर्तन कर्ता को निदान के उद्देश्य की प्राप्ति लिए आवश्यक है कि शोध, कार्यक्रम नियोजन इत्यादि के विषय में ज्ञान हो।

उचित देखभाल - एक परामर्शदाता/चिकित्सक की यह भूमिका नहीं है कि वह हमेशा सेवार्थी अथवा सामाजिक स्थितियों को परिवर्तित करने का प्रयास करे बल्कि यह भी आवश्यक है कि लगातार सेवार्थी को सम्बल प्रदान करे अथवा उसकी देखभाल करे।

सामाजिक उपचार:- एक परिवर्तन कर्ता का, सहायता करने के लिए सेवार्थी का उससे सम्बन्धित लोगों एवं समूहों से कैसे रिश्ते हैं, सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन के लिए किये गये सेवार्थी के प्रयासों को आलम्बन प्रदान करना,

समस्या समाधान अथवा अन्तरवैयक्तिक परिवर्तन के प्रयासों मे सेवार्थी को सम्मिलित करना, तथा सामाजिक परिस्थितियों और/अथवा व्यक्तियों के बीच संघर्षों अथवा असमानताओं को दूर करना इत्यादि कार्य सम्मिलित हैं। प्रत्यक्ष रणनीतियों द्वारा सेवार्थी के साथ आमने-सामने तथा अप्रत्यक्ष रणनीतियों द्वारा सेवार्थी को सन्दर्भित सेवाओं द्वारा सहायता प्रदान करने के प्रयास किये जाते हैं।

7.10 प्रबन्धक के रूप में परिवर्तन कर्ता

विभिन्न संस्थाओं द्वारा सेवार्थी को प्रदान की जाने वाली सेवाओं के लिए परिवर्तन कर्ता एक प्रबन्धक की भूमिका निवर्हन करता है। एक प्रबन्धकर्ता की भूमिका में परिवर्तन कर्ता का कार्य सहायता के लिए आवश्यकताओं का पता लगाना, सफल जीवन में आने वाली बाधाओं के मार्गों का पता लगाना, सेवार्थी को सलाह देने के लिए योग्य सहायताकर्ता से सम्पर्क स्थापित करना, और सेवार्थी को प्रत्यक्ष रूप से सेवाएं प्रदान करने के अवसर उपलब्ध कराना है। वास्तव में परिवर्तन कर्ता समस्याओं के समाधान हेतु दी जाने वाली सहायता तथा सेवा योजना की सफलता का मूल्यांकन करता रहता है। एक कुशल प्रबन्धक के रूप में परिवर्तन कर्ता के लिए आवश्यक है कि वह उद्देश्य के प्रति उन्मुख, क्रियाशील एवं सकारात्मक सोच वाला हो।

परिवर्तन कर्ता के कार्य

सेवार्थी की पहचान एवं परिचय - इस कार्य में परिवर्तन कर्ता ऐसे लोगों का पता लगाता है जो कि सेवा चाहते हो, तथा वे परिवर्तन की निर्देशित प्रक्रियाएं, जो सकारात्मक रूप से जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करती है, का प्रत्यक्ष रूप से पता लगाता है।

सेवार्थी का आंकलन - इस कार्य में सूचनाओं का संकलन और सेवार्थी की आवश्यकताओं का आंकलन, जीवन की स्थिति तथा संसाधनों का निरूपण करना है।

सेवा उपचार योजना का निर्माण करना - सेवार्थी तथा सेवाओ के मध्य समन्वय स्थापित करना, सहायता प्रदान करते समय सेवार्थी को विभिन्न प्रकार संसाधनों द्वारा सेवाएं प्रदान करना। नियमित रूप से सेवार्थी तथा सेवा प्रदान करने वाले के बीच समन्वय स्थापित करते हुए सेवाओं का सतत् मूल्यांकन करना तथा उसका अनुवर्तन प्राप्त करना।

7.11 परिवर्तनकर्ता के रूप में परिवर्तन कर्ता

समाज कार्य, व्यक्ति विशेष तथा पर्यावरण जिसमे परिवर्तन कर्ता वैयक्तिक, समूहों समुदायों अथवा सामाजिक व्यवस्था में आवश्यकता परिवर्तन लाने हेतु सहयोग, दोनों पर केन्द्रित करता है। परिवर्तनकर्ता की भूमिका, परिवर्तन कर्ता की भूमिका को अन्य व्यवसायों से अलग करता है। जब कार्यकर्ता सेवार्थी के साथ प्रत्यक्ष रूप से कार्य करता है तो मानवीय सेवाओं की आवश्यकताओं तथा व्यक्ति के तनाव को कम करने की स्थिति को पहचानने में बेहतर स्थिति में होता है। परिवर्तन कर्ता सेवार्थी को यह आश्वस्त करता है कि आवश्कताओं की पूर्ति हेतु संसाधन तथा सामाजिक समस्याओं की स्थिति में परिवर्तन लाने अथवा संसाधनों को अभिप्रेरित करने का उत्तरदायित्व उसका है। सामाजिक परिवर्तन आसान नहीं है तथा राजनैतिक परिवेश में यह कार्य करना अत्यधिक कठिन है।

परिवर्तन कर्ता के कार्य

- सामाजिक समस्याओं अथवा नीतियों का विश्लेषण करना,
- सामुदायिक संसाधनों को गतिमान करना,
- सामाजिक संसाधनों को विकसित करना।

7.12 पथप्रदर्शक के रूप में परिवर्तन कर्ता

परिवर्तन कर्ता पथप्रदर्शक के रूप में कार्य करता है। वह व्यक्ति, समूह एवं समुदाय की सहायता करता है जिससे कि वह अपने उद्देश्यों को निश्चित कर सके और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के साधनों का पता लगा सके। कार्यकर्ता अपने पूर्व अनुभव के आधार पर सेवार्थी को सचेत करता है कि वह असत्य मार्ग का अनुसरण न करे। परिवर्तन कर्ता सेवार्थी को आवश्यक सूचना उपलब्ध कराता है परन्तु वह स्वयं किसी सुझाव को मानने पर सेवार्थी को विवश नहीं कर सकता। परिवर्तन कर्ता सामाजिक परिवर्तन का दिशा निर्देशक होता है। इस प्रकार एक मार्गदर्शक/पथप्रदर्शक के रूप में वह निम्नलिखित कार्य करता हैः-

परिवर्तन कर्ता के कार्य

- सामुदायिक लक्ष्य निर्धारण एवं लक्ष्य प्राप्ति के साधनों को खोजने में सहायता करना,
- लोगों में साथ कार्य करने के लिए कदम उठाना,
- समुदाय की वर्तमान स्थितियों में वस्तुनिष्ठतापूर्ण व्यवहार करना,
- सम्पूर्ण समुदाय के साथ सहायक होकर,
- भूमिका को सार्थक एवं समझने योग्य बनाना।

7.1 3 सामर्थ्यदाता के रूप में परिवर्तन कर्ता

परिवर्तन कर्ता का कार्य न केवल एक मार्गदर्शक के रूप में सदस्यों के रास्तों की बाधा मुक्त बनाना है, बल्कि एक व्यावसायिक कार्यकर्ता होने के कारण उसे सदस्यों में अपनी समस्याओ, आवश्यकताओं को जानने तथा उनसे मुकाबला करने की योग्यता का निर्माण करना भी है। इस प्रकार वह एक कुशल कार्यकर्ता की भूमिका में पूर्ण सहयोग लेकर सामथ्र्यदाता के रूप में वह निम्नलिखित कार्य करता है:-

परिवर्तन कर्ता के कार्य:-

- सामुदायिक असन्तोषों को केन्द्रित करना,
- संगठन को प्रोत्साहित करना,
- अन्तःवैयक्ति सम्बन्धों को बढ़ावा देना,
- सार्वजनिक उद्देश्यों पर बल देना।

7.15 विशेषज्ञ के रूप में परिवर्तन कर्ता

एक विशेषज्ञ के रूप में सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी को सूचना, तकनीकी ज्ञान/अनुभव प्रणालियों के विषय में परामर्श इत्यादि उपलब्ध कराता है परन्तु वह स्वयं अपना मत सेवार्थी से मनवाने का प्रयास नहीं करता है। ऐसी स्थिति में उसे अपनी आत्म चेतना पर नियंत्रण रखना पड़ता है। परिवर्तन कर्ता सेवार्थी को जागरूक करता है और शोध की प्रणालियों द्वारा लाभ पहुंचाने का प्रयास करता है। वह कार्यक्रमों का स्वयं मूल्यांकन करता है और उसे सेवार्थी के समक्ष प्रस्तुत करता है। व्यावसायिक कार्यकर्ता अपने शिक्षण, प्रशिक्षण एवं व्यावहारिक अनुभव के कारण कार्य का एक विशेषज्ञ होता है। उसका पूर्ण सैद्धांतिक ज्ञान, वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित होता है। इस प्रकार वह एक विशेषज्ञ के रूप में निम्नलिखित कार्य करता हैः-

परिवर्तन कर्ता के कार्य

- सामुदायिक कठिनाईयों के निदान में सहायता करना,
- अनुसंधान की निपुणता प्रदान करना,
- दूसरे समुदाय की सूचनाओं को उपलब्ध कराना,
- मूल्यांकन करना।

7.16 सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में परिवर्तन कर्ता

एक सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में उन क्षेत्रों में सफल सिद्ध हो सकता है जहां अधिकाधिक जनसंख्या अन्याय एवं पक्षपात का शिकार हो रही हो। वैसे कार्यकर्ता की भूमिका विवादास्पद है लेकिन ऐसे क्षेत्र में कार्यकर्ता सदस्यों की सहायता करता है जिससे वे समुदाय की पुरानी जर्जर व्यवस्था में परिवर्तन कर एक कल्याणकारी एवं न्यायिक सामाजिक ढांचे का निर्माण कर सकें। कार्यकर्ता के इस प्रकार के कार्य की आवश्यकता पर बल देते हुए मोरिस और रेइन ने कहा है कि यदि सामुदायिक विकास की प्रक्रिया में कोई भूमिका निभानी है तो पूर्णरूपेण उदासीन नहीं रहा जा सकता और सक्रिय कार्यकर्ता की भूमिका आवश्यक है। इसी प्रकार पानिक ने भी अपने विचार व्यक्त करते हुए बताया है कि सक्रिय कार्यकर्ता के रूप मे परिवर्तन कर्ता विशेषकर सामुदायिक संगठन कार्यकर्ता की भूमिका एक न्यायिक घटना के समान है।

परिवर्तन कर्ता के कार्य

- समुदाय में एक प्रेरक की भूमिका को निभाना।
- कार्यक्रमों में सहभागिता के द्वारा लक्ष्यों की प्राप्ति में सहयोग करना।
- प्रगतिशील कार्यक्रमों के द्वारा लोगों को लगातार प्रोत्साहित करना।
- कार्यक्रम नियोजन में लोगों की सहभागिता को सुनिश्चित करने में सहायता प्रदान करना।

7.18 सारांश

सारांश के रूप में समाज कार्य प्रक्रिया के द्वारा हम यह कह सकते हैं कि समाज कार्य हस्तक्षेप के माध्यम से सेवार्थी की आवश्यकताओं को पूरा करने में वैज्ञानिक तथा विशेष ज्ञान एवं निपुणता के द्वारा समाज कार्यकर्ता अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का प्रतिपादन करता है।

7.19 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) समाज कार्य प्रक्रिया से आप क्या समझते है?

(2) समाज कार्य प्रक्रिया के विभिन्न चरणों का उल्लेख कीजिए।

(3) समाज कार्य प्रक्रिया मे मूल्यांकन एवं प्रतिपुष्टि का क्या महत्व है?

(4) व्यावसायिक परिवर्तन कर्ता से आप क्या समझते है?

(5) व्यावसायिक परिवर्तन कर्ता के कार्यों का उल्लेख कीजिए।

(6) व्यावसायिक परिवर्तन कर्ता की भूमिका का उल्लेख कीजिए।

(7) सामश्र्यदाता के रूप में परिवर्तन कर्ता की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

7.20 सन्दर्भ ग्रन्थ

- Dinitto, D.M. and Mcneece, C.A. Social Work Issues and Opportunities : In a Challenging Profession, LYCEUM Books INC, Chicago, 2008.
- O.Hare, Thomas, Essential Skills of Social Work Practics: Assesment Intervetion Evaluation LYCEUM Books INC, Chicago, 2009.
- Adams, R.; Dominelli, L. and Payne, M.; Social Work : Themes, Issues and Critical Debates, Second edition (ed), Palgrave, New York, 1998.
- Clark, S. Social Work as Community Development: A Management Model for Social Change, Second Eddition (ed), Ashgate Publishing Ltd., England, 2000.
- Colby, Ira and Dziegielewski, S., Introdution to Social Work: The People's Profession , Second Eddition (ed) LYCEUM Books INC, Chicago, 2004. Srivastava S.P. "Addressing the future of Social Work in India" Social Work Education in India (ed) by S.Signh and S. Swaminathan New Royal Books Co. 2003.

- Singh, Surendra, : Future Chellanges before Social Work Proffesion in India and reuired response, contemporary Social Work Volume 12 October 1995.
- Friedlander, A.W.: Indtrodution of Social Welfare, Prentice Hall, INC. New York. 1995.
- Thomas P.T.: Profession Traning in Social Work, in Sugata Das Gupta (ed) "Towards in philosophy of Social work in India Popular Books Services, New Delhi, 1967.
- Ahamad, Mirza Raffiuddin, Samaj Kayra : Darshan evam Pranaliyan, Repid Books Services, Lucknow, 1969.
- Mishra, P.D. Social Work Profession in India, New Royal Book Co., Lucknow, 2004.
- Sudan K.S., Samaj Karya : Siddant evam Abhyas, N.S. Publications Lucknow, 2011.
- Mishra, P.D., Samaj Karya : Itihas, Darshan evam Pranaliyan, New Royal Book Co. Lucknow, 2004.

इकाई-8

पर्यावरण: अवधारणा एवं अवयव

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 भूमिका

8.3 पर्यावरण की अवधारणा

8.3.1 पर्यावरण का अर्थ एवं परिभाषाएं

8.3.2 पर्यावरण की विशेषतायें

8.3.3 पर्यावरण के विषय क्षेत्र

8.3.4 पर्यावरण के प्रकार

8.4 पर्यावरण के अवयव

8.4.1 सौरमण्डल

8.4.2 भू-मण्डल

8.4.3 वायुमण्डल

8.4.4 जलमण्डल

8.4.5 जैवमण्डल

8.5 सारांश

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.7 सन्दर्भ पुस्तकें

8.0 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्यनन के बाद आप –

1. पर्यावरण की अवधारणा, अर्थ तथा परिभाषा को जान सकेंगे |
2. पर्यावरण के प्रकारों एवं घटकों आदि का विश्लेषण कर सकेंगे।

3. पर्यावरण के विभिन्न प्रकारों एवं घटकों इत्यादि की भूमिका को समझ सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

पर्यावरण के अन्तर्गत सभी भौतिक तथा जैविक पदार्थों और उनके आपसी सम्बन्धों को सम्मिलित किया जाता है। अतः व्यक्ति को पर्यावरण का अध्ययन करने के लिये इससे सम्बन्धित विभिन्न विषयों की जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है। सामाजिक विज्ञान तथा विज्ञान की जानकारी पर्यावरण के जैविक संघटकों तथा उसके आपसी सम्बन्धों को समझने में सहायक होती हैं। पर्यावरण विश्व का समग्र दृष्टिकोण है क्योंकि यह किसी समय सन्दर्भ में बहु स्थानिक तत्वीय एवं सामाजिक-आर्थिक तंत्रों, जो जैविक एवं अजैविक रूपों के व्यवहार/ आचार पद्धति तथा स्थान की गुणवत्ता तथा गुणों के आधार पर एक दूसरे से अलग होते हैं, के साथ कार्य करता है। अर्थात पर्यावरण विश्व का समग्र दृष्टिकोण है तथा इसकी रचना स्थानिक तत्वों वाले एवं विभिन्न सामाजिक-आर्थिक तंत्रो से होती है। ये विभिन्न तंत्र अलग-अलग विशेषता वाले होते हैं। इन विभिन्न तंन्त्रों के साथ पर्यावरण कार्यशील रहता है।

8.2 पर्यावरण की अवधारणा

पर्यावरण की अवधारणा इतनी व्यापक और जटिल है कि पर्यावरणविद् इसकी किसी सर्वमान्य परिभाषा नहीं दे सके। पर्यावरण की अवधारणा के सन्दर्भ में क्रैम्ब्रिज इनसाइक्लोपीडिया ;(1990) में व्यक्त किया गया है कि, ''किसी स्थान की वे परिस्थितियाँ जिनमें एक जीवधारी रहता है, पर्यावरण है। बड़ी संख्या में पर्यावरण के विविध प्रकार (जैसे नगरीय पर्यावरण, ट्रापिकल रेन फोरेस्ट पर्यावरण) किसी एक परिभाषा का निर्माण असंभव बना देते हैं। सामान्य तौर पर भौतिक पर्यावरण किसी भू-भाग (जलवायु, भूमि) की विशेषताओं का वर्णन करता है जो कि मानव प्रभाव द्वारा उत्पन्न परिवर्तनों से अछूता रहता है जबकि भौगोलिक पर्यावरण में भौतिक पर्यावरण के साथ उसमें किसी भी रूपान्तरण (कृषि व्यवस्था, औद्योगीकरण, नगरीकरण) का समावेश है। जीवधारियों और उनके पर्यावरण के मध्य का सम्बन्ध परिस्थितिकीय के विषय के भाग का निर्माण करता है।''

8.2.1 पर्यावरण का अर्थ एवं परिभाषाएं

पर्यावरण (Environment) शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच भाषा के Environner शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है ''घेरना''। अर्थात किसी जीव के चारों ओर उपस्थित समस्त जैविक तथा अजैविक पदार्थो को पर्यावरण के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार जल, वायु, भूमि उनके पारस्परिक सम्बन्ध, तथा अन्य वस्तुओं जैसे जीवों, तथा मनुष्य के आपसी सम्बन्धों को मिलाकर ही पर्यावरण का निर्माण होता हैं। पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 में पर्यावरण को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि पर्यावरण के अंतर्गत वह सब कुछ समाविष्ट है जो पृथ्वी पर दृश्य एवं अदृश्य रूप से विद्यमान है।

पर्यावरण शिक्षा पर सम्पन्न एक राष्ट्रीय संगोष्ठी (नई दिल्ली, 30-31 जुलाई, 1979) में पर्यावरण के संबंध में व्यक्त किया गया कि पर्यावरण अविभाज्य है। इसकी कोई भौगोलिक सीमा नहीं है और इससे भी बढ़कर यह सभी जीवनधारियों-मनुष्य, जन्तुओं और पौधों के लिये सामान्य है। पर्यावरण समस्याओं एवं प्रदूषण का कोई शुद्ध वैज्ञानिक-प्रोद्योगिकीय हल नहीं है। कोई भी सार्थक हल आवश्यक रूप से वस्तुओं की प्रकृति विशेष में, विज्ञान और प्रौद्योगिकीय के क्षेत्र से परे है। इस तरह के हल का मानवीय (या नैतिक) आयाम एक आवश्यक घटक है। पर्यावरण के संरक्षण और प्रबंधन में मनुष्य की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं यही कारण है कि पर्यावरण के अंतर्गत जैविक एवं अजैविक घटको के साथ मानवीय क्रियाओं के समस्त स्वरूपों का भी

समावेश है। संक्षेप में, पर्यावरण का निर्माण उन सभी भौतिक व अजैविक घटकों से हुआ है जो इस पृथ्वी और इसके चारों ओर उपलब्ध हैं।

1992 में रियो-डि -जेनीरो में पर्यावरण तथा विकास पर हुए संयुक्त राष्ट्र के सम्मेलन जिसे 'अर्थ समिट' के नाम से जाता है तथा उसके 10 वर्ष बाद सन् 2002 में जोहन्सबर्ग में सतत् विकास पर हुए विश्व शिखर सम्मेलन ने प्रमुख भूमंडलीय पर्यावरणीय समस्याओं को उजागर किया है तथा जनसामान्य का ध्यान पर्यावरणीय क्षय की ओर आकर्षित किया है। जनता के सहयोग के बिना कोई भी सरकार निरन्तर विकास की गति को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकती और जनता का सहयोग तभी हो सकता है, जब लोगों को विभिन्न पारिस्थितिकीय तथा पर्यावरणीय समस्याओं के बारे में जानकारी होगी। यथा सरकार द्वारा पालिथीन के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाना तब तक सार्थक नहीं हो सकता जब तक कि लोग इसके पर्यावरणीय कुप्रभावों को नहीं समझ सकते। अतः हमें लोगों को जानकारी देनी होगी कि पर्यावरण को दूषित करके हम स्वयं को ही हानि पहुँचाते रहते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि हम स्वयं भी पर्यावरण के जटिल तंत्र के एक छोटे से अवयव है तथा इसके अन्य अवयवों से किसी माध्यम से जुड़े हैं। लोगों को इस बारे में शिक्षित करना और भी अधिक आवश्यक है कि कभी-कभी पर्यावरण के दुष्प्रभावों का तब तक पता नहीं चलता है जब तक कि हम किसी भयंकर समस्या से प्रभावित नहीं हो जाते और अज्ञानता के कारण हम विपत्तियों का शिकार बन जाते हैं।

के. आर. दीक्षित का कहना है कि 'पर्यावरण की परिभाषा तथा विषय-क्षेत्र हमारे हित एवं अभिरूचि एवं प्राथमिकताओं द्वारा निश्चित होते हैं। हमारा तात्कालिक हित स्थान-जिस पर हम रहते हैं, वायु-जिससे हम सांस लेते हैं, आहार-जिसे हम खाते हैं, जल-जिसे हम पीते हैं तथा संसाधनों-जिसे हम अपनी अर्थव्यवस्था को पुष्ट बनाने के लिये पर्यावरण से प्राप्त करते हैं, की गुणवत्ता है।' आपने पर्यावरण की संकल्पना के अन्तर्गत मात्र 'वायु-स्थल-जल-पादक' को सम्मिलित करने की राय व्यक्त की है तथा मनुष्य एवं मानव-समाज को पर्यावरण की सीमा से बाहर रखा है वास्तव में विभिन्न जन समूहों द्वारा पर्यावरण का अर्थ, विभिन्न दृष्टिकोणों से विभिन्न रूपों में लिया जाता है परन्तु सामान्य रूप से यह व्यक्त किया जा सकता है कि 'पर्यावरण एक अविभाज्य समष्टि है तथा भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तत्वों वाले पारस्परिक क्रियाशील (interacting) तंत्रों से इसकी रचना होती हैं ये तंत्र अलग-अलग तथा सामूहिक रूप से विभिन्न रूपों में परस्पर सम्बद्ध (interlinked) होते हैं तथा सांस्कृतिक पर्यावरण की रचना करते हैं।'

इन्टरनेशनल इनसाइक्लोपीडिया आफ सोशियल साइंसेज ;1968 के अनुसार, पर्यावरण को ''जीवन और एक सावयव (जीव) के विकास को प्रभावित करने वाली सभी बाह्य दशाओं और प्रभावों की समग्रता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''

डगलस व हालैण्ड के अनुसार- ''पर्यावरण शब्द का प्रयोग उन सब बाहा्र शक्तियों, प्रभावों तथा दशाओं के सामूहिक रूप से वर्णन करने हेतु किया जाता है जो जीवित प्राणियों (सावयवों) के जीवन, स्वभाव, व्यवहार, बुद्धि, विकास और परिपक्वता का प्रभाव डालते हैं।''

पार्क के अनुसार ''पर्यावरण का अर्थ उन दशाओं के योग से होता है जो मनुष्य को निश्चित समय में निश्चित स्थान पर आवृत्त करती हैं।''

डिक्शनरी आफ इनवायरानमेंटल टर्मस ;1976द्ध के अनुसार- पर्यावरण ''वह क्षेत्र, घेरा या परिस्थितियाँ जिनमें कोई चीज विद्यमान है। एक जीव या सावयव के पर्यावरण के अंतर्गत - ;1)शुद्ध भौतिक या अजैविक परिवेश जिसमें वह विद्यमान है, जैसे भौगोलिक स्थिति, जलवायुगत दशाओं और भू-स्थल का समावेश

है, ;2) कार्बनिक या जैविक परिवेश - जिसके अंतर्गत गैर जीवित कार्बनिक पदार्थ और सभी अन्य जीवधारियों, सीमित जनसंख्या वाले जीवधारी , सहित किसी क्षेत्र में पौधों एवं जानवरों का समावेश है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि पर्यावरण के अन्तर्गत उन सभी जैविक और अजैविक घटकों सहित उनके अन्तः क्रियात्मक प्रभावों का भी समावेश है जो किसी जीवधारी को प्रभावित करते हैं।

8.2.2 पर्यावरण की विशेषतायें

पर्यावरण की उक्त विवेचना के आधार पर पर्यावरण की विशेषतायें निम्नवत् हैं-

1. पृथ्वी पर पर्यावरण भौतिक एवं जैविक घटकों की पारस्परिक अन्तःक्रिया का परिणाम है।
2. पर्यावरण के अंतर्गत उन सभी बाहा्र दशाओं और प्रभावों का समावेश है, जो किसी जीवधारी के जीवन और विकास को प्रभावित करते हैं।
3. पर्यावरण के कुछ घटक दृश्य हैं तो कुछ अदृश्य और उन्हें इन्द्रियों से अनुभूत नहीं किया जा सकता।
4. पर्यावरण के निर्माण एवं विनाश में मनुष्य सहित जैवमण्डल की भूमिका सर्वोपरि है।
5. पर्यावरण की विविधता तथा जटिलता में जैविक एवं अजैविक घटकों के अतिरिक्त मानवीय कारकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है।
6. पृथ्वी पर पर्यावरण लाखों वर्षों के प्राकृतिक परिवर्तन का परिणाम है। पृथ्वी केवल मनुष्य के लिये ही नहीं बनी है किन्तु मनुष्य ने इसके संसाधनों का दोहन अपने पक्ष में किया है जिसके फलस्वरूप प्राकृतिक संतुलन बिगड़ा है।
7. जीवधारियों के अनुकूल आवास स्थल पृथ्वी ही है जिसमें संसाधन की सीमा है। अतः संसाधनों की निरन्तर उपलब्धता बनाये रखने में मानवीय समझ और विवेक की आवश्यकता है जिसे 'पर्यावरण निष्ठा' कह सकते हैं।

उपरोक्त विशेषताओं से पर्यावरण की अवधारणा काफी हद तक स्पष्ट हो जाती है। पारिभाषिक रूप से प्रकृति में चारों ओर जो कुछ दृष्टिगोचर और परिलक्षित होता है- वायु, भूमि, जल, पेड़-पौधे एवं जीव-जन्तु आदि सभी सम्मिलित रूप से पर्यावरण की रचना करते हैं। मनुष्य भी पर्यावरण का अभिन्न अंग है। पर्यावरणीय घटकों का प्रभाव आपस में तथा मानव जीवन पर पड़ता है। मानव की विकास प्रक्रिया ने भी पर्यावरण को प्रभावित किया है।

8.2.3 पर्यावरण के विषय क्षेत्र

पर्यावरण विषय अपने आप में अत्यन्त विशाल है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित क्षेत्रों को सम्मिलित किया जाता है:-

(क) प्राकृतिक संसाधन-संरक्षण तथा प्रबन्धन

(ख) पारिस्थितिकी तथा जैव विविधता

(ग) वातावरणीय प्रदूषण तथा इसकी रोकथाम

(घ) विकास तथा वातावरण सम्बन्धी सामाजिक विषय

ये पर्यावरण अध्ययन के मूल विषय हैं जिनका समाज के प्रत्येक वर्ग से सीधा सम्बन्ध हैं। पर्यावरण अति विशिष्ट भी हो सकता है। पर्यावरण विज्ञान, पर्यावरण अभियान्त्रिकी, पर्यावरण प्रबन्ध, पर्यावरण जैव-प्रौद्योगिकी जैसे अत्यन्त तकनीकी विषयों पर केन्द्रित हो सकता है। पर्यावरण सभी से सम्बद्ध है तथा सभी के लिये आवश्यक भी। कोई व्यक्ति चाहे किसी भी व्यवसाय से सम्बन्धित हो तथा किसी भी आयु का हो, पर्यावरण से समान रूप से प्रभावित होता है तथा अपने कार्यों के द्वारा वह पर्यावरण को भी प्रभावित करता हैं इस प्रकार पर्यावरण एक ऐसा विषय है जिसका स्वभाव में सार्वभौमिक हैं। उदाहरण हेतु वायुमण्डल की कोई सीमा रेखा नहीं है और किसी एक स्थान पर उत्पन्न होने वाले प्रदूषण तत्व आसानी से दूसरे स्थानों तक पहुँच सकते हैं। किसी स्थान पर शहरों अथवा कारखानों के गंदे पानी दूषित की गई नदी के जल का प्रभाव इसके निचले भागों में उपस्थित जल जीवन को अवश्य ही प्रभावित करता है। इसी प्रकार पहाड़ों पर स्थित वनों की क्षति, केवल पहाड़ों को ही नहीं वरन् दूर-दूर तक स्थित मैदानी भागों को भी समान रूप से प्रभावित करती हैं। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि पर्यावरण विभिन्न अवयवों तथा उनके कार्यकलापों से बना जटिल तंत्र है। वैसे तो पर्यावरण सम्बन्धी अनेकों क्षेत्रीय समस्यायें हैं परन्तु भूमंडलीय ताप का बढ़ना, ओजोन पर्त में क्षति, वनों तथा ऊर्जा संसाधानों में कमी, जैव-विविधता का लोप आदि कुछ अति महत्वपूर्ण समस्यायें भी है जो कि समस्त मानव जति को प्रभावित करने वाली समस्याएँ हैं और इनके निवारण के लिये हम सभी को विश्व स्तर पर एक साथ सोच-विचार करने की आवश्यकता है। खनन अथवा जल विद्युत परियोजनाओं का प्रभाव, ठोस कूड़े-करकट का प्रबन्ध इत्यादि स्थानीय समस्याओं से निपटने के लिऐ हमें स्थानीय रूप से सोचना पड़ता है और उसके निदान के लिये वही कार्य करना पड़ता है।

पर्यावरण के विभिन्न महत्वपूर्ण विषयों के बारे में लोगों को जागरूक बनाने के लिए सभी पर्यावरणीय ज्ञान प्रदान करना अति आवश्यक है। पर्यावरण अध्ययन अति आवश्यक विषय है क्योंकि यह स्वच्छ एवं सुरक्षित पेयजल, स्वास्थ्यपूर्ण जीवनोपयोगी अवस्थाएं, साफ एवं स्वच्छ वायु, उपजाऊ भूमि, स्वास्थ्यवर्धक भोजन तथा विकास आदि विषयों से सम्बन्धित है। पर्यावरणीय समस्याओं से निपटने के लिए प्रत्येक स्तर पर प्रशिक्षत मानव शक्ति की आवश्यकता है। पर्यावरणीय नियम, व्यवसाय प्रबन्धन तथा पर्यावरण प्रौद्योगिकी आदि पर्यावरण के बचाव तथा प्रबन्धन के क्षेत्र में नवीन रोजगार के अवसर के रूप में उभर कर सामने आ रहे हैं। प्रदूषण नियन्त्रण के नियम कठोर होने के कारण उद्योगों को अपने मलबे के निस्तारण में काफी परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है। अब अनेकों कम्पनियाँ अत्यधिक खर्च तथा विवादों से बचने के लिऐ हरित प्रौद्योगिकी को अपनाने की कोशिश कर रही हैं जिससे प्रदूषण को कम किया जा सकेगा। प्रदूषण नियन्त्रण प्रौद्योगिक पर खर्च करने से प्रदूषण तो कम होगा ही, साथ ही यह गंदे बहाव के उपचार पर हाने वाले खर्च को भी कम कर देगा। प्रदूषण नियंन्त्रण प्रौद्योगिकी की आज सम्पूर्ण संसार में अत्यधिक माँग है कम्पनियों तथा कारखानों में उत्पन्न व्यर्थ पदार्थों के निस्तारण का बाजार भी अच्छा है। अमेरिका में प्रतिवर्ष इस क्षेत्र का व्यापार 100 बिलियन डालर के लगभग रहता है। यदि हम एक साफ, स्वच्छ, सुन्दर तथा सुरक्षित वातावरण में जीना चाहते हैं और अपनी आने वाली पीढ़ियों को स्वच्छ तथा सुरक्षित पृथ्वी प्रदान करना चाहते हैं तो ऐसा करना अतिआवश्यक है।

सामान्य रूप में पर्यावरण की 'प्रकृति' (nature) से समता की जाती है जिसके अन्तर्गत ग्रहीय पृथ्वी के भौतिक घटकों (स्थल, वायु, जल, मृदा आदि) को सम्मिलित किया जाता है जो जीवमण्डल में विभिन्न जीवों को आधार प्रस्तुत करते हैं, उन्हें आश्रय देते हैं, उनके विकास तथा सम्बर्द्धन हेतु आवश्यक दशायें प्रस्तुत करते हैं तथा उन्हें प्रभावित भी करते हैं। ए. गाउडी ;1984द्ध ने अपनी पुस्तक The Nature of the Environment' में पृथ्वी के भौतिक घटकों को ही पर्यावरण का प्रतिनिधि माना है तथा आपके अनुसार पर्यावरण को प्रभावित करने में मनुष्य एक महत्वपूर्ण कारक है।

भौतिक मानव (physical man) अन्य जैविक संख्या (organisic populations) या जैविक समुदाय में से एक है तथा उसे जीवधारियों की भांति ही भौतिक पर्यावरण से मौलिक तत्वों की आवश्यकता होती है (यथा स्थान या वास्य क्षेत्र, आहार, वायु तथा जल) तथा वह पारिस्थितिक तंत्र में अपने अपशिष्ट पदार्थों ; आदि को निर्मुक्त करता है। सामाजिक मानव ; अपने अस्तित्व, हक या हितों तथा सामजिक कल्याण की सुरक्षा हेतु सामाजिक संस्थानों की स्थापना करता है, सामाजिक संगठनों की रचना करता है तथा कानूनों, नियमों तथा नीतियों की व्यवस्था करता है। आर्थिक मानव ; अपनी आर्थिक व्यवस्था को विकसित एवं सुदृढ़ बनाने के लिये अपनी बुद्धि तथा प्रौद्योगिकी द्वारा भौतिक तथा जैविक पर्यावरण से संसाधनों को प्राप्त करता है तथा उनका उपभोग करता है। मानव के इन तीनों प्रकार के कार्यों को भौतिक, सामाजिक तथा आर्थिक कार्य कहते हैं। मनुष्य का तीसरा कार्य (आर्थिक कार्य) उस पर्यावरणीय अथवा भूआकृतिक प्रक्रम के रूप में भी स्थापित करता है क्योंकि वह अन्य भूआकृतिक प्रक्रमों की तरह पदार्थों तथा ऊर्जा का पारिस्थितिक तंत्र के एक संघटक से दूसरे संघटक में परिवहन करता है। मनुष्य के इस आर्थिक/ भूआकृतिक कार्य द्वारा पारिस्थितिक तंत्र की कार्य-प्रणाली में तब तक परिवर्तन नहीं होता जब तक कि मनुष्य के विदोहनात्मक कार्य तथा प्राकृतिक पर्यावरण के मध्य सामंजस्य होता है, परन्तु जैसे ही मनुष्य के विदोहनात्मक कार्य ; पर्यावरण की नाजुक सीमा को पार कर जाते हैं, पर्यावरण/ पारिस्थितिक तंत्र के संतुलन की ; बिगड़ जाती है तथा कई पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकीय समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं जो किसी निश्चित पारिस्थितिक तंत्र में न केवल मनुष्य के लिए वरन समस्त जातियों की संख्या के लिये घातक बन जाती हैं।

8.2.4 पर्यावरण के प्रकार

पृथ्वी अपने चारों ओर जीवन देने वाले घटको जैसे जल, वायु एवं विभिन्न जीवधारियों सहित जैव मंडल से घिरी है। अतः मनुष्य के समग्र पर्यावरण तंत्र में न केवल जैव मंडल बल्कि प्राकृतिक तथा मानव निर्मित परिवेश भी सम्मिलित है। पर्यावरण की इस आधार भूत संरचना के आधार पर पर्यावरण को तीन प्रमुख प्रकारो में विभाजित किया जा सकता है:-

- अजैविक/ भौतिक पर्यावरण
- जैविक पर्यावरण
- सामाजिक पर्यावरण

8.2.4.1 भौतिक पर्यावरण

भौतिक पर्यावरण के अंतर्गत पृथ्वी पर विद्यमान सभी अजैविक घटकों या अवयवों (Components) का समावेश है। ये घटक निर्जीव होते हुए भी प्राकृतिक संतुलन और जैविक पर्यावरण की गतिविधियों को प्रभावित करते हैं। भौतिक पर्यावरण के विभिन्न घटकों में भूमि, जल, ताप, प्रकाश, अग्नि एवं अन्य भौतिक तत्वों का समावेश है। यद्यपि भौतिक पर्यावरण के विभिन्न घटकों के प्रति प्रारंभ में स्पष्ट अवधारणायें नहीं थी लेकिन अब इनके बारे में जैसे-जेसे ज्ञान में वृद्धि हो रही है, इनके प्राणी मात्र के जीवन में महत्व भी स्पष्ट होता जा रहा है। इस सृष्टि की विभिन्न जैविक और अजैविक क्रियाओं में भौतिक तत्वों का बड़ा महत्व है। ये तत्व जैविक पर्यावरण की कार्यकी को प्रभावित करते हैं। अतः अजैविक या भौतिक पर्यावरण को तीन प्रमुख श्रेणियों में विभक्त किया जाता है- 1.) ठोस दशा 2.) तरल दशा तथा 3.) वायु दशा। ये तीनों दशाएं क्रमशः स्थलमण्डल, जलमण्डल तथा वायुमण्डल का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस आधार पर भौतिक पर्यावरण तीन प्रकार के होते हैं- (i) स्थलमण्डलीय

पर्यावरण, (ii) वायुमण्डलीय पर्यावरण तथा (iii) जलमण्डलीय पर्यावरण। विभिन्न मापकों पर इन तीन प्रकार के पर्यावरणों को कई स्तरीय लघु इकाईयों में विभाजित किया जा सकता हैं यथा पर्वत पर्यावरण, पठार पर्यावरण, मैदान पर्यावरण, झील पर्यावरण, नदी पर्यावरण, हिमनद पर्यावरण, मरूस्थल पर्यावरण, सागर तटीय पर्यावरण, सागरीय पर्यावरण आदि।

8.2.4.2 जैविक पर्यावरण

जैविक पर्यावरण एक अत्याधिक जटिल संरचना है। पृथ्वी पर और इसके चारों ओर विभिन्न प्रकार के जीवधारियों का जो संसार है वह जैविक या प्राणीशास्त्रीय पर्यावरण का निर्माण करता है। इसके अंतर्गत सूक्ष्म जीवों से लेकर वनस्पतियों तथा सभी प्रकार के जीवधारियों का समावेश है। मिट्टी, पृथ्वी की सतह, जलाशयों और वायुमण्डल में विद्यमान जीवन से बनी इस रचना को जैव मंडल समझा जा सकता है। पौधों और जानवरों का ऐसा समुदाय जो एक बड़े प्राकृतिक क्षेत्र पर फैला हो तो इसे क्षेत्रीय परिस्थतिकीय समुदाय या जीवोम ;ठपवउमद्ध कहा जाता है। इसका उदाहरण ट्रापिकल वर्षा वन हैं जीवों को जलवायुगत वनस्पतियों से पहचाना जाता है लेकिन यह एक एकीकृत या समग्र सामुदायिक इकाई है और मात्र वानस्पतिक इकाई के रूप में इसे नहीं समझा जा सकता है। जीवों द्वारा घिरा जैविक क्षेत्र (Biome) कहलाता है। सूक्ष्म जीव, पौधे और जन्तु सम्मिलित रूप से जैव पर्यावरण का निर्माण करते हैं। जैविक पर्यावरण की संरचना पौधों (वनस्पति) तथा मानव सहित जन्तुओं द्वारा होती है। इनमें मनुष्य एक महत्वपूर्ण कारक होता हैं इस आधार पर जैविक पर्यावरण को दो प्रकार में विभक्त किया जाता है- (i) वानस्पतिक पर्यावरण (floral environment) तथा (ii) जन्तु पर्यावरण (faunal environment) । अतः जैव एवं भौतिक पर्यावरण दोनों ही किसी क्षेत्र की जनसंख्या को प्रभावित करते हैं।

भौतिक पर्यावरण को जलवायु-दशाओं, जो जैविक समुदायों के लिए विभिन्न प्रकार के निवास क्षेत्र (habitals) का सृजन करती हैं, की दृष्टि से भी विभाजित किया जा सकता है यथा-उष्ण कटिबन्धीय पर्यावरण, शीतोष्ण कटिबन्धीय पर्यावरण आदि। इन्हें पुनः लघु किन्तु विशिष्ट प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है। यदि भौतिक या अजैविक तथा जैविक पर्यावरणों को एक साथ मिलाकर देखा जाय तो बायोम पर्यावरण (biome environment) की रचना होती है तथा-टुण्ड्रा बायोम, शातोष्ण बायोम, उष्ण कटिबन्धीय बायोम आदि। इन प्रमुख बायोम पर्यावरणों को पुनः द्वितीय तथा तृतीय कोटि के बायोम पर्यावरण प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है। ज्ञातव्य है कि पर्यावरण भूगोल में भौतिक पर्यावरण सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है अतः इसे सामाजिक तथा आर्थिक पर्यावरणों की तुलना में अधिक महत्व दिया जाना चाहिए क्योंकि सामाजिक तथा आर्थिक पर्यावरण मूलरूप से भौतिक पर्यावरण पर ही आश्रित होते हैं। इसी तरह अन्य कार्यों की तुलना में मनुष्य के आर्थिक कार्य अधिक महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि ये पारिस्थितिक तंत्र की क्रियाशीलता से अधिक सम्बन्धित होते हैं। अतः स्पष्ट है कि मनुष्य की अपने आर्थिक कार्यों द्वारा (भू-आकृतिक प्रक्रम के रूप में) प्राकृतिक पर्यावरण के साथ पारस्परिक क्रियाओं तथा उनसे उत्पन्न परिणामों का अध्ययन पर्यावरण का मूलभूत उद्देश्य है।

8.2.4.3 सामाजिक पर्यावरण

मानव निर्मित या सामाजिक सांस्कृतिक पर्यावरण का निर्माण मनुष्य अपने विविध क्रियाकलापों द्वारा करता है। मानव सभ्यताओं का विकास इसका प्रतिफल है। प्रारंभ में मानव व्यवहार का विवेचन करते समय ज्यादातर बल जैविक कारकों पर था लेकिन धीर-धीरे मनुष्य के सामाजिक व्यवहारों का विस्तार से अध्ययन किया गया जिसके परिणाम स्वरूप यह स्पष्ट हुआ कि मानव व्यवहार के निर्धारण में सामाजिक कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यही कारण है कि मानव जीवन की गुणवत्ता को परिभाषित करते समय उसके भौतिक और सामाजिक पर्यावरण पर ध्यान दिया जाता है। सामाजिक पर्यावरण के अंतर्गत मनुष्य के सामाजिक जीवन के

सभी पक्षों का समावेश हैं। सामाजिक जीवन में प्रथायें, परम्परायें, शिक्षा, संस्कृति, अर्थव्यवस्था, राजनीतिक तंत्र और समग्र समाज व्यवस्था महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सामाजिक जीवन के ये घटक एक ऐसे परिवेश का निर्माण करते हैं जिसका संबंध पर्यावरण के भौतिक और जैविक पक्षों से भी है। मानव जाति मुख्यरूप से पर दो प्रकार के सामाजिक पर्यावरण का निर्माण करती है-ग्रामीण एवं नगरीय।

अतः मनुष्य के समग्र सामाजिक पर्यावरण को मोटे तौर पर दो भागों में बाँटा जा सकता हैं:

- ग्रामीण सामाजिक पर्यावरण
- नगरीय सामाजिक पर्यावरण

8.2.4.3.1 ग्रामीण सामाजिक पर्यावरण

मनुष्य अपने अस्तित्वकाल से ही प्रकृति के सानिध्य में रहा है। सभ्यता के उदय और विकास के साथ मनुष्य ने आदिम जीवन को छोड़कर ग्रामीण जीवन को अपनाया है। ग्रामीण जीवन के विकास में कृषि एक महत्वपूर्ण कार्य था। आज से लगभग साढ़े तीन लाख वर्ष पूर्व मनुष्य ने आग का प्रयोग सीखा जिसके प्रमाण वर्तमान पीकिंग की एक गुफा में मिले हैं। इसी तरह लगभग 10-12 हजार वर्ष पूर्व मनुष्य ने जंगलों को काटकर एवं जलाकर जमीन साफ की और ईसा 8000 वर्ष पूर्व कृषि प्रारंभ की। विश्व के विभिन्न भागों में मानव जाति के फैलने के प्रमाण भी ईसा 3-4 हजार वर्ष पूर्व के मिलते हैं जब कृषि का विस्तार हुआ। ग्रामीण सामाजिक पर्यावरण मनुष्यकृत कम और प्राकृतिक ज्यादा है।

8.2.4.3.2 नगरीय सामाजिक पर्यावरण

नगरीय एवं ग्रामीण पर्यावरण में भिन्नता का प्रमुख कारण मनुष्यकृत कार्य है। नगरीय पर्यावरण मानवीय प्रभुत्व और उद्यम का प्रतीक है। इसलिये नगरीय सामाजिक पर्यावरण कृत्रिम होता है। कल कारखानों, उद्योग धंधां, यातायात एवं संचार के साधनों से निर्मित नगरीय पर्यावरण में अनेक सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को भी प्रश्रय मिलता है। नगरीय सामाजिक पर्यावरण में प्राथमिक संबंधों की अपेक्षा द्वितीयक संबंधों का विस्तार ज्यादा होता है। नगरीय पर्यावरण में प्रदूषण एवं पर्यावरणीय क्षय अपेक्षाकृत ज्यादा होता है।

8.3 पर्यावरण के अवयव

पर्यावरण अति सूक्ष्म और व्यापक है इसके अनेक घटक हैं जो एक दूसरे से अन्तर्संबंधित होते हैं। पर्यावरण घटकों की जानकारी मनुष्य को आदिकाल से हैं। शतपथ ब्राह्मण में इस बात का उल्लेख किया गया है कि जहाँ तक हम अपने नेत्रों से देख सकते हैं वह सब अंतरिक्ष है। अन्तरिक्ष से आगे जो कुछ है वह द्युलोक हैं हमारे पृथ्वी अंतरिक्ष का जीवनधारी ग्रह है जिसके विभिन्न घटक पृथ्वी पर जीवन का संरक्षण करते हैं। इन विभिन्न घटकों के बीच संतुलन की कामना की गई। द्युलोक के ग्रहों में होने वाले परिवर्तनों से अन्तरिक्ष के अन्य ग्रह भी प्रभावित होते हैं। ऐसा ज्ञान भारतीय मनीषियों को बहुत पहले से था।

भारतीय खगोलविदो द्वारा आज भी पंचाग के आधार पर सूर्य तथा चन्द्रग्रहण आदि के बारे में सही जानकारी प्रदान की जाती है। इनके घटने के समय को 'घड़ी' तथा 'पल' में सही -सही ढंग से आंकलित किया जाता है। यह आश्चर्य की बात है कि पृथ्वी से सैकड़ों मील दूर सूर्य एवं चन्द्र गतियों की इतनी सही गणना करने का आधार उस युग में क्या रहा होगा,? इन ग्रहों की अनियमित गति का गणित कैसे बनाया गया और किस तरह के उपकरणों की सहायता ली गई होगी ? यह भी एक मान्य तथ्य है कि प्रत्येक ग्यारह वर्ष के अन्तराल के

बाद सूर्य की सतह पर होने वाली उथल-पुथल के फलस्वरुप पृथ्वी पर भूकम्प, तूफान, आगजनी तथा सड़क दुर्घटनाओं में अचानक वृद्धि होती है जिसका कारण शायद बदली हुई ऊर्जा स्थिति तथा विद्युत चुम्बकीय परिवर्तन है। प्राणिमात्र का शरीर विद्युत चुम्बकीय तंरगों या ऊर्जा से प्रभावित होता है। यही कारण है कि पूर्णिमा या अमावस्या के दिन चन्द्रमा की बदलती स्थिति का प्रभाव मनुष्य के शरीर पर पड़ता है। इसी तरह सूर्य और चन्द्रमा दोनों ही पृथ्वी के समुद्री जल को अपनी ओर आकर्षित करते हैं चूकि चन्द्रमा सूर्य की अपेक्षा पृथ्वी के ज्यादा निकट है, इसलिए चन्द्रमा के गुरूत्व का पृथ्वी पर ज्यादा प्रभाव पड़ता है। दूसरें चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाता है और इसका गुरूत्व धरती के पानी और भूमि को प्रभावित करता है।

इस प्रकार पर्यावरण के विभिन्न घटकों को निम्नवत् रूपों में समझा जा सकता है-

- सौरमण्डल
- भू-मण्डल
- वायुमण्डल
- जलमण्डल
- जैवमण्डल

8.3.1 सौरमण्डल ;

सूर्य के चारों ओर गतिमान ग्रह और उपग्रह मिलकर सौर मण्डल का निर्माण करतें है। पृथ्वी इसी सौर मण्डल का एक प्रमुख ग्रह हैं। इसके अलावा सूर्य के चारों ओर जो अन्य ग्रह चक्कर लगाते हैं उनमें वीनस, मरक्यूरी, मंगल, शुक्र, शनि, अरुण,वरुण एवं प्लूटो हैं। इसी तरह ग्रह के चारों ओर घूमने वाले पिंडों को उपग्रह कहते है, जैसे चन्द्रमा पृथ्वी का एक उपग्रह है जो पृथ्वी के निकट होने के कारण स्पष्ट दिखाई देता है। सूर्य एक अर्थ में सबसे निकट का तारा है जो पृथ्वी से लगभग 15 करोड़ किलोमीटर दूर है। इसका व्यास 14 लाख किलोमीटर है। सूर्य का केन्द्र का तापमान डेढ़ करोड़ डिग्री केल्विन और इसकी सतह का ताप 5600 डिग्री सेल्सियस है जबकि इसके केन्द्र एवं सतह के मध्य वाले भाग अर्थात परिमण्डल (करोना) का ताप ग्यारह लाख डिग्री केल्विन के करीब है। तापमान में यह अन्तर अब तक वैज्ञानिक से परे है। सूर्य के बाद पृथ्वी के सबसे नजदीक तारों में प्रोक सीमा सेन्तोरी है जो पृथ्वी से 42 लाख करोड़ किलोमीटर दूर है।

ब्रह्माण्ड में विभिन्न ग्रहों, उपग्रहों और तारों के मध्य दूरी इतनी अधिक है कि उसे साधारण ढंग से नहीं माप सकते। अतः आकाशीय ग्रहों एवं पिंडों के बीच की दूरी का माप प्रकाश वर्ष ;स्पहीज ल्मंतद्ध में किया जाता है। इस सृष्टि में प्रकाश सर्वाधिक तीव्र गति से चलने वाली ऊर्जा है। यह एक सेकेण्ड में तीन लाख किलोमीटर की दूरी तय करता है जिसे प्रकाश सेकेण्ड कहते हैं। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि प्रकाश किरण एक सेकेण्ड में पृथ्वी के सात चक्कर लगा लेती है। इस गति से प्रकाश को सूर्य से पृथ्वी तक पहुँचने में 8 मिनट लगते हैं। पृथ्वी के सबसे निकट तारे की दूरी 4.2 प्रकाश वर्ष है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस तारे से 4.2 वर्ष पूर्व प्रकाश चलकर इस पृथ्वी पर पहुँचता है।

मानवीय सभ्यता के उदय के साथ-साथ मनुष्य को पृथ्वी से परे आकाश में सूर्य, चाँद, तारे, तारक पुंज अर्थात् आकाश गंगा और निहारिकाओं के बारे में जानने की जिज्ञासा हुई। इन आकाशीय पिंडों को देखकर आदि मानव को निश्चित ही भय, आश्चर्य, जिज्ञासा और कुछ विचित्र-सी अनुभूति हुई होगी। प्राचीन

सभ्यताओं में इनके बारे में अनेक प्रकार के विश्वास जन्में और भ्रोत कहानियाँ भी गढ़ी गई किन्तु मनुष्य की प्रकृति और ब्रह्माण्ड के बारे में जैसे-जैसे ज्ञान बढ़ा, उसकी अंध मान्यतायें और विश्वास समाप्त होने लगे।

सौर माण्डल की उत्पत्ति के बारे में अब तक सर्वमान्य व्याख्या या सिद्धांत नहीं खोजे जा सके हैं। जिस तरह की उत्पत्ति के बारे में अनेक मत-मतान्तर प्रचलित हैं उसी तरह सौर मण्डल के बारे में भी विद्वानों के बीच अलग-अलग मत हैं। सौरमण्डल के ग्रहों, उपग्रहों, निहारिकाओं, पुच्छल तारों और उल्काओं आदि के बारे में खगोलविदो का मत है कि 15 अरब (विलियन) वर्ष पूर्व एक महापिंड के विस्फोट से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है। महापिंड के विस्फोट से उसका संघनित द्रव्य लाखों-करोडों किलोमीटर दूर तक फैल गया। कालांतर में यह पदार्थ आकाश गंगाओं के बड़े सितारों के बनने एवं मिटने में फैलता रहा। इस विस्फोट से उत्पन्न ऊर्जा का अनुमान लगाना आसान नहीं है। इस ब्रह्माण्ड में हजारों आकाश गंगाये हैं जिनमें से भी बड़े अरबों तारे हैं। पूरे ब्रह्माण्ड में कहीं न कहीं बड़े तारों के बनने एवं नष्ट होने की प्रक्रिया चलती रहती है। इस ब्रह्माण्ड के बहुत छोटे से हिस्से में सौर मण्डल है।

अब अंतरिक्ष खोज और अनुसंधान ने सूर्य, सौर मण्डल एवं पुच्छल तारों के बारे में अनेक रहस्यों को उजागर किया है। आकाश में पुलसार न्यूट्रान तारे और काले छिद्रों में इतना गुरूत्वाकर्षण है कि उनका प्रकाश तक बाहर नहीं आता है। वैज्ञानिक अनुसंधानों के अतिरिक्त अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी ने मनुष्य के दैनिक जीवन को भी प्रभावित किया हैं। संचार, दूरदर्शन, रेडियों के लिये उपग्रह, मौसम विज्ञान, भूकम्प एवं विनाश की चेतावनी, पृथ्वी के संसाधनों का सर्वेक्षण एवं प्रबंधन में प्रयुक्त अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका है। सुदेर संवेदी तकनीक ; से भू-उपयोग, मृद्रा, वन, भूतल, एवं भूमिगत जल, परिवहन और संचार के बारे में प्रमाणिक जानकारी प्राप्त होती है, जो पर्यावरणीय प्रबंधन और संरक्षण की दृष्टि से अत्याधिक उपयोगी है।

समय के परिवर्तन और वैज्ञानिक प्रगति के आधार पर बहुत से देश अब पृथ्वी से ऊठकर सौर मण्डल और ब्रह्माण्ड की खोज में अग्रसर है। धरती के इंसान नील आर्मस्ट्रांग ने 20 जुलाई, 1969 को चन्द्रमा के तल पर पैर रखते हुए व्यक्त किया था कि ''यह मानवता की एक छलांग है''। अब तो मनुष्य चन्द्रमा पर बसने की सोच रहा है। चन्द्रमा के बाद मनुष्य का यह अभियान और आगे बढ़ता जा रहा है और वह मंगल ग्रह पर उतरने की तैयारी में जुटा हुआ है। अंतरिक्ष स्टेशनों से मनुष्य शटल द्वारा पृथ्वी, चन्द्रमा, बुद्ध, शुक्र आदि ग्रहों तक आसानी से आ-जा सकेगा। मनुष्य के सन् 2019 तक मंगल ग्रह पर उतर जाने की संभावना है। ऐसे भी वैज्ञानिक प्रयोग चल रहे हैं कि जो वस्तुयें गुरूत्वाकर्षणीय शक्ति और वायुमंडल के कारण पृथ्वी पर पैदा नहीं की जा सकती उन्हें अन्य ग्रहों एवं उपग्रहों पर तैयार किया जाय।

8.3.2 भू-मण्डल ;

स्थलमंडल पृथ्वी का वह ठोस भाग है जिसकी ऊपरी परत मृदा एवं उप मृदा, चट्टानों और धात्विक परतों की बनी है। पृथ्वी के धरातल का लगभग 70.8 प्रतिशत भाग समुद्री जल से घिरा है तथा शेष भाग में महाद्वीप और द्वीप बिखरे हुए हैं। स्थलीय प्राणियों के लिये पृथ्वी की ऊपरी परत अत्याधिक महत्वपूर्ण है। कुछ जीव मृदा में भी पाये जाते हैं लेकिन पृथ्वी की भीतरी परतों में जीवधारी नहीं पाए जाते।

पृथ्वी और पृथ्वी के आसपास चारों ओर जो कुछ है वह भू-मण्डल है। प्राणी मात्र के जीवन का आधार यह पृथ्वी है जो जड़-चेतन सभी को आश्रय प्रदान करती है इसीलिये इसे धरती की संज्ञा दी गई है। भौगोलिक दृष्टि से पृथ्वी सौर परिवार का सबसे महत्वपूर्ण ग्रह है क्योंकि अब तक इसी ग्रह पर जीवन विद्यमान है।

पृथ्वी की उत्पत्ति के बारे में कहा गया है कि यह 10 खरब वर्ष पूर्व सूर्य से अलग हुआ गैसीय पिंड था जो धीरे-धीरे ठंडा होकर पृथ्वी के रूप में आ सका।

पृथ्वी की परिधि 22ए800 कि.मी. और व्यास लगभग 12,800 कि.मी. के लगभग है। पृथ्वी के भौतिक गुणों में गुरूत्वाकर्षण और चुम्बकत्व के गुण मुख्य हैं। पृथ्वी की ऊपरी पर्त अपेक्षाकृत पतली और काफी मूल्यवान है इसी पर्त में बहुत-सी खनिज सम्पदा भरी पड़ी है। पृथ्वी के ठंडे होने पर वनस्पति के रूप में जीवन की उत्पत्ति संभव हुई। तत्पश्चात् समुद्री जल में एक कोशकीय सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति हुई।

पृथ्वी के स्थल भाग को लिथोस्पियर कहते है। इसके अन्दर 30 से 50 कि.मी. नीचे ठोस भाग होता है। लिथोस्पियर के नीचे का भाग मेंटल कहलाता है जो भारी दबाव के कारण गोंद जैसा चिपचिपा होता है। पृथ्वी का ऊपरी भाग चट्टनों का बना है जिसमें सिलिका, फेल्सपार तथा अभ्रक आदि खनिज तत्व अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। पृथ्वी की संरचना को तीन भागों में समझ सकते हैं:-

सियाल

परतदार चट्टानों से युक्त यह पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत है जिसमें सिलिका और अल्युमीनियम आदि तत्वों की अधिकता होती है। इस परत की गहराई 50 से 300 कि.मी. तक आँकी गई है।

सीमा ;

पृथ्वी की इस मध्यवर्ती परत में सिलिका तथा मैग्नीशियम तत्वों की प्रधानता होती है जिसे सीमा कहा गया है। इस परत में लोहा, कैलसियम तथा मैगनेशियम के सिलिकेट आदि भी अधिकता में पाये जाते है। इस परत की मोटाई या गइराई लगभग 1000 से 2000 कि.मी. तक आँकी गई है।

नीफे

पृथ्वी की यह अंतिम और तीसरी परत है जिसमें निकेल तथा फेरियम तत्वों की प्रधानता होती है। इसके अलावा इस परत में लोहे की प्रधानता होने के कारण इसमें चुम्बकीय गुण पाया जाता है।

पृथ्वी के नीचे चैथाई भाग पर जल तथा शेष भाग पर स्थल है। जिन्हें क्रमशः महासागर और महाद्वीप कह सकते हैं। महाद्वीप और महासागर कैसे बने, इस संदर्भ में अनेक मत हैं। कैल्विन, सोलास, चेम्बरलेन और मोल्टन तथा लोथियन ग्रीन आदि विद्वानों ने पृथ्वी की उत्पत्ति के बारे में अपने-अपने मत प्रस्तुत किये हैं।

पर्यावरण पर भूमंडलीय कारकों में भूस्थल की आकृति, मृद्रा एवं जैविक कारक मुख्य हैं। इस पृथ्वी के स्थलाकृतिक कारकों में समुद्र तल से ऊँचाई, पर्वतों और घाटियों की दिशा, पर्वतीय ढाल की तीव्रता और ढाल का आवरण आदि मुख्य है। इसी तरह भूमंडलीय कारकों में मृद्रा कारक भी महत्वपूर्ण है क्योंकि धरती पर वनस्पति के अवलम्बन का यही मुख्य आधार है। मृद्रा एक जटिल माध्यम है जिसकी संरचना और संगठन कई प्रकार का होता हैं अतः मृद्रा के कई रूप हैं- रेतीली मिट्टी,, दुमट गाद, चिकनी मिट्टी आदि। मृद्रा में नमी, रासायनिक तत्व, वायु एवं सूक्ष्म जीव जैसे जीवाणु, कवक, शैवाल एवं विभिन्न प्रकार के कीट आदि पाये जाते हैं। अतः भू-मण्डलीय कारकों का जैविक कारकों से घनिष्ट संबंध है।

8.3.3 वायुमण्डल

पृथ्वी के चारों ओर विभिन्न प्रकार की गैसों का आवरण वायु मण्डल है। प्राणी मात्र के लिये वायु जीवन का आधार है। एक मनुष्य दिनभर में लगभग 22000 बार सांस लेता है और 35 पौंड वायु का उपभोग

करता है। इससे वायु का महत्व समझा जा सकता है। वायु के बिना पृथ्वी पर जीवन संभव नहीं है। ट्रिवार्था ने वायुमण्डल को परिभाषित करते हुये व्यक्त किया-''ठोस एवं द्रव पृथ्वी सैकडों मील मोटी गैसीय आवरण से घिरी हुई या परिर्वेष्ठत है जिसे वायुमण्डल कहा जाता है। वायुमण्डल को पृथ्वी से ठीक ऊपर या परे नहीं समझा जाना चाहिये बल्कि इस ग्रह की भूमि और जल की तरह ही एक अभिन्न भाग है।''

वायुमण्डल के बारे में मनुष्य का ज्ञान धीरे-धीरे विकसित हो रहा है लेकिन इसकी प्रमाणिक और वैज्ञानिक जानकारी अंतरिक्ष अनुसंधान और खोजों से प्राप्त हो रही है। इससे अब मनुष्य को वायुमंडल के अनेक रहस्यों का ज्ञान हो रहा है। वायुमंडल में अनेक गैसों का यांत्रिक मिश्रण है जिसमें प्रमुख रूप से नाइट्रोजन, आक्सीजन, कार्बन-डाई आक्साइड, आर्गन, हाइट्रोजन, हीलियम, नियोजन, क्रिप्टोन, जिनोन आदि गैसें पाई जाती हैं। इसमें नाईट्रोजन तथा आक्सीजन गैसें मुख्य हैं जिनका वायुमण्डल में प्रतिशत क्रमशः 78 और 21 के लगभग है जबकि शेष एक प्रतिशत में अन्य गैसें तथा जल वाष्प आदि सम्मिलित हैं। वायुमंडल की गैसों में नाइट्रोजन प्रमुख है जो एक निष्क्रिय गैस है। वायुमण्डल में दूसरी प्रमुख गैस आक्सीजन है जो एक सक्रिय तथा प्राणी मात्र के श्वसन हेतु आवश्यक है। वायुमंडल में कार्बन-डाईआक्साइड की मात्रा लगभग 0.03 प्रतिशत है जो पेड़-पौधों के लिये प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया हेतु यह महत्वपूर्ण है। हरे पेड़-पौधे सूर्य के प्रकाश में पानी और कार्बन-डाईआक्सीजन की सहायता से खाद्य पदार्थ बनाते हैं और वायुमंडल में आक्सीजन छोड़ते हैं।

वायुमंडल में जल वाष्प एक अन्य घटक है जो मौसमी घटनाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं वातावरण में ओस ,कोहरा, धुन्ध तथा बादल वर्षा, हिमपात और ओलावृष्टि आदि का कारण जल वाष्प है। वायुमंडल में जल वाष्प, धूल कण तथा अन्य गैसों की परते सूर्य की पराबैगनी किरणों को पृथ्वी तक पहुँचने से रोकती है। वायुमंडलीय गैसों में ओजोन परत का विशेष महत्व है, जो सूर्य से आने वाली पराबैगनी किरणों को सोख लेती हैं। आज ओजोन विनाश के कारण उत्पन्न खतरों के प्रति विश्वव्यापी चिंता प्रगट की जा रही है एवं इसके संरक्षण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास किये जा रहे हैं।

8.3.3.1 वायुमंडल की संरचना ;

वायुमंडल की संरचना के बारे में परम्परागत ज्ञान प्रमाणिक नहीं था। प्रारंभ में इसके बारे में पर्वत शिखरों, गुब्बारों, पतंगों एवं वायुयानों आदि के माध्यम से जो जानकारी प्राप्त की गई वह वैज्ञानिक नहीं थी किन्तु अब इस दिशा में वैज्ञानिक अध्ययन चल रहे हैं। प्रारंभ में एडमण्ड हैले द्वारा सन् 1714 में वायुमण्डल की ऊँचाई लगभग 75 कि.मी. आंकी गई थी लेकिन अब वैज्ञानिकों का अनुमान है कि वायुमण्डल 16 से 32 हजार कि.मी. ऊँचाई तक फैला हुआ है।

स्थल और जैवमण्डल के चारों ओर वायुमंडल विद्यमान है जो पृथ्वी के ऊपर कई किलो मीटर तक फैला हुआ है। वायुमंडल में 78.08 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा 20.9 प्रतिशत आक्सीजन तथा शेष कार्बन-डाई-आक्साइड, आर्गन, हाइड्रोजन, हीलियम, नियोन, एवं अन्य गैसें है। सभी जीवधारियों को जीवित रहने के लिय आक्सीजन अत्याधिक आवश्यक है जो उन्हे वायुमंडल तथा जलमंडल से प्राप्त होती है। जल में घुली हुई आक्सीजन जलीय प्राणियों द्वारा अवशोषित कर ली जाती है। प्रायः सभी जीवधारी आक्सीजन को अवशोषित करते है तथा कार्बन-डाई आक्साइड वायुमंडल में छोड़ते हैं। वायुमंडल में कार्बन-डाईआक्साइड और आक्सीजन के संतुलन को बनाये रखने में पेड़-पौधे महत्वपूर्ण निभाते हैं। इसकी संरचना का अध्ययन दो प्रकार से कर सकते हैं:- भौतिक संरचना और रासायनिक संरचना।

भौतिक संरचना

भौतिक संरचना की दृष्टि से वायुमंडल विभिन्न गैसों का मिश्रण है लेकिन वायु के ताप और दबाव पर आधारित इसकी परतों को कई भागों में बाँटा जा सकता है। परिवर्तनमंडल, समतापमण्डल, मध्यमतापमण्डल, ओजोनमण्डल, आयन तथा आयतनमण्डल आदि। वायुमंडल की इन परतों के विभाजन और वायुमंडलीय संतुलन में इनकी भूमिका के बारे में सीमित जानकारी है। पृथ्वी के धरातल से वायुमंडल की विभिन्न स्तरों के ऊँचाई का एक आंकलन निम्नवत है:-

- परिवर्तनमंडल ; 10-15 कि.मी.
- समतापमण्डल ; 15-80 कि.मी.
- मध्यमतापमण्डल: 16-85 कि.मी.
- ओजोनमंण्डल ; 32-80 कि.मी.
- आयनमंडल: 80-640 कि.मी.
- आयतनमंडल : 640 कि.मी. से अधिक ऊँचे

वायुमंडल की विभिन्न परतें पर्यावरण गतिविधियों के निर्धारण और पर्यावरण को संतुलित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उदाहरण के तौर पर ओजोनमण्डल तथा आयनमंडल सूर्य से आने वाली पराबैगनी किरणों को पूरी तरह पृथ्वी तक नहीं पहुँने देती हैं। इसका पृथ्वी की जलवायु पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

रासायनिक संरचना ;

वायुमंडल को रासायनिक संरचना की दृष्टि से सममण्डल और विषममण्डल ; में बांटा गया है। सममण्डल में आक्सीजन (20.9 प्रतिशत), नाइट्रोजन (78.08 प्रतिशत) तथा शेष अन्य गैसें हैं। शेष गैसों में प्रमुखता कार्बन डाई-आक्साइड, आर्गन, नियोन, हीलियम, क्रिप्टोन, जैनोन एवं हाइड्रोजन आदि सम्मिलित हैं। सममण्डल के ऊपर विषममण्डल है जिसमें आणविक नाइट्रोजन, आक्सीजन, हाइट्रोजन तथा हीलियम गैसों की परतें हैं। सममण्डल में परतर्वन मंडल, समतामंडल एवं मध्यमंडल का समावेश है। इन तीनों उप मण्डलों में विभिन्न गैसों के अनुपात में कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता है। इसीलियें इन सभी परतों को संयुक्त रूप से सममण्डल कहा जाता है।

8.3.4 जलमण्डल

यह जैवमण्डल का वह भाग है जिसका संबंध जल से है। इसके अंतर्गत सभी प्रकार के जल स्रोतों का समावेश है। पृथ्वी की सतह का लगभग 72 प्रतिशत क्षेत्र जल से ढका है। सभी प्राणियों के लिये जल आवश्यक है लेकिन कुछ जीव जल में ही जिंदा रह सकते हैं। पृथ्वी का जल वाष्पीकरण के द्वारा वाष्प में बदल जाता है और वर्षा के रूप में पृथ्वी पर आ जाता है। इस प्रक्रिया को जल चक्रण कहते हैं।

पर्यावरण का एक प्रमुख घटक जलमंडल है जो पृथ्वी के अधिकांश भाग को जल से ढंके हुए है। पृथ्वी पर समस्त स्रोतों से उपलब्ध जल का 97.3 प्रतिशत समुद्री जल है तथा शेष 2.7 प्रतिशत जल झीलों, हिम-नदों, नदियों एवं भूमिगत जल के रूप में विद्यमान है। इसमें से भी पेय जल अर्थात् द्रव रूप में जल की मात्रा 0.7 प्रतिशत ही है जबकि शेष जल पृथ्वी ध्रुवीय क्षेत्रों और ऊँचे पर्वतों पर बर्फ के रूप में जमा है।

समस्त जल संसाधनों को दो वर्गों में बाँट सकते हैं- (क) सतही जल या भूतल जल ;तथा (ख) भूमिगत या भूजल अर्थात् पृथ्वी की सतह के ऊपर जल स्रोतों में नदियाँ झीलें, तालाब, बांध, जल संग्राहक एवं नाले आदि मुख्य है जिमें जल 0.1 प्रतिशल संग्रहित है जबकि भूमिगत जल 0.6 प्रतिशत है। भूमिगत जल वर्षा से प्राप्त जल है जो निरर्थक भूमि के अन्दर जला जाता है। भूमिगत जल के प्रमुख स्रोतों में कुएँ, झरने, नलकूप एवं जलप्रपात आदि है।

8.3.5 जैवमण्डल

इस पृथ्वी पर जैव मण्डल सर्वाधिक वड़ा पारिस्थितिक तंत्र हैं पृथ्वी पर जीवन अपने विविध स्वरूपों में भूमि, जल तथा धरती की ऊपरी सतह पर ही पाया जाता है। अतः पृथ्वी और इसके आसपास समग्र पर्यावरण में पाये जाने वाले जीवों से जैवमण्डल का निर्माण होता है। विभिन्न प्रकार के जीव वायु, जल और थल के नीचे पाये जाते हैं जो अपने-अपने पर्यावरण के अनुसार अपना जीवनयापन करते हैं। जैवमण्डल के अंतर्गत मुख्य रूप से तीन मण्डल आते है- (अ) वायुमंडल, (ब) जलमंडल, (स) स्थलमण्डल। इन तीनों मण्डलों (वायु-जल-स्थल) के साथ-साथ समस्त जीव-जुन्तुओं को एक इकाई के रूप में लेते हैं तो इसे जैवमण्डल कहते हैं। जीवों और उनके पर्यावरण के बीच पाये जाने वाले संबंधों का अध्ययन पारिस्थितिकी ;म्बवसवहलद्ध के अन्तर्गत आता है। अतः भौतिक पर्यावरण और जैवमण्डल के बीच घनिष्ठ संबंधों का अध्ययन कई प्रकार से कर सकते हैं।

इस तरह पर्यावरण के इन विभिन्न घटकों में पारस्परिक अंतःक्रिया होती रहती है। ये घटक एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं जिससे समग्र पर्यावरण प्रभावित होता है। वर्तमान में विश्वव्यापी पर्यावरण क्षय और प्रदूषण की समस्यायें अकारण उत्पन्न नहीं हुयीं हैं। इसके पीछे मनुष्य की वे क्रियायें उत्तरदायी हैं जो मात्र भौतिक विकास को केन्द्र में रखकर सम्पन्न की जा रही हैं। ओजोन क्षय, प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, वैश्विक भूतापन, हरितभवन प्रभाव, मरूभूमिकरण, जैवविविधता एवं प्राकृतिक पर्यासंत्रों के विनाश के पीछे कहीं न कहीं मानव क्रियाओं का हाथ है। अतः पर्यावरण को उसकी समग्रता में ही समझा जाना चाहिये और उसके संरक्षण एवं प्रबंधन के उपाय किये जाना चाहिये।

8.4 सारांश

सारांश के रूप में इस अध्याय में हम देखते हैं कि पर्यावरण का अध्ययन एक बहुशिक्षात्मक विषय है जिसके अन्तर्गत इसके विभिन्न पहलुओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

8.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) पर्यावरण की अवधारणा से आप क्या समझते हैं?

(2) पर्यावरण का अर्थ एवं परिभाषाओं पर प्रकाश डालिए।

(3) पर्यावरण के प्रकारों को स्पष्ट कीजिए।

(4) पर्यावरण की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

(5) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(अ) सौरमण्डल

(ब) जैवमण्डल

(स) जलमण्डल

(द) वायुमण्डल

8.6 सन्दर्भ पुस्तकें

- Bhartiya, A. K., Paryavaran, New Royal Book Company, Lucknow, Published under ASIHSS Programme (11th FYP), UGC, New Delhi.

- Kaushik, A., and Kaushik, C. P. Paryavaran Adhyan, NAIP, New Delhi,

इकाई-9

पर्यावरण :प्रदूषण, संरक्षण और जन आन्दोलन

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 पर्यावरण प्रदूषण का अर्थ एवं परिभाषाएं

9.2.1 पर्यावरण प्रदूषण की परिभाषाएं

9.2.2 पर्यावरण प्रदूषण के कारक

9.3 पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार

9.3.1 मृदा या भूमि प्रदूषण

9.3.2 जल प्रदूषण

9.3.3 वायु प्रदूषण

9.3.4 ध्वनि प्रदूषण

9.3.5 सामाजिक प्रदूषण

9.3.6 विद्युत-चुम्बकीय हस्तक्षेप/प्रदूषण

9.4 पर्यावरण संरक्षण और जन आन्दोलन

9.4.1 चिपको आन्दोलन

9.4.2 एपिको आन्दोलन

9.4.3 नर्मदा बचाओं आन्दोलन

9.4.4 टिहरी आन्दोलन

9.4.5 चिल्का झील आन्दोलन

9.4.6 सुर्वण रेखा आन्दोलन

9.4.7 कोंकण रेलवे आन्दोलन

9.4.8 गंगा बचाओं आन्दोलन

9.5 सारांश

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.7 सन्दर्भ पुस्तकें

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप -

1. पर्यावरण प्रदूषण का अर्थ एवं इसके विभिन्न कारकों को जान सकेंगे|
2. पर्यावरण प्रदूषण के विभिन्न प्रकारों के बारे में जान जाएँगे|
3. पर्यावरण संरक्षण एवं पर्यावरण संरक्षण में जन आन्दोलनों की भूमिका को समझ सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

पर्यावरण विश्व का समग्र दृष्टिकोण है क्योंकि यह किसी समय सन्दर्भ में बहु स्थानिक तत्वीय एवं सामाजिक-आर्थिक तंत्रों, जो जैविक एवं अजैविक रूपों के व्यवहार/आचार पद्धति तथा स्थान की गुणवत्ता तथा गुणों के आधार पर एक दूसरे से अलग होते हैं, के साथ कार्य करता है। अर्थात पर्यावरण विश्व का समग्र दृष्टिकोण है तथा इसकी रचना स्थानिक तत्वों वाले एवं विभिन्न सामाजिक-आर्थिक तंत्रो से होती है। पर्यावरण का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष संबंध मनुष्य की विभिन्न क्रियायें है। मनुष्य की विकास जन्य क्रियाओं ने विविध प्रकार से पर्यावरणीय घटकों में ऐसे परिवर्तन उत्पन्न किये जाते हैं जो मंडल पर हानिकारक प्रभाव डालते है। पर्यावरण में होने वाले घातक तथा अवांछनीय परिवर्तन से पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्यायें जटिल होती जा रही है। इन पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना अनिवार्य है।

9.2 पर्यावरण प्रदूषण का अर्थ एवं परिभाषाएं

पर्यावरण प्रदूषण का प्रत्यक्ष संबंध विभिन्न मानवीय क्रियाओं और औद्योगिक विकास से जुड़ा है। मनुष्य अपनी बुनियादी एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति और संतुष्टि हेतु जिन गतिविधियों को सम्पन्न करता है वे पर्यावरणीय प्रदूषण का मुख्य स्रोत है। एक सीमा तक प्राकृतिक पर्यावरण मनुष्य द्वारा उत्पन्न विभिन्न प्रदूषकों को अवशोषित कर उन्हें उपयोगी तत्वों में रूपान्तरित कर देता है। इससे प्रदूषकों की मात्रा कितनी विरल या कम हो जाती है कि वे मानव स्वास्थ्य के लिये प्रत्यक्ष रूप से घातक नही रहते, लेकिन जब मनुष्य द्वारा प्रदूषण की मात्रा एक सीमा से अधिक हो जाती है तो उसके घातक प्रभाव मनुष्य सहित समग्र पर्यावरण पर पडत्रते है। विश्वव्यापी स्तर पर बढ़ते औद्योगिकरण, नगरीकरण, सघन कृषि, पशुपालन, उत्खनन, परमाणु ऊर्जा के उत्पाद तथा अन्य विकासजन्य क्रियाओं ने विविध प्रकार से पर्यावरण को प्रदूषित करने में योगदान दिया है।

9.2.1 पर्यावरण प्रदूषण की परिभाषाएं

आक्सफोर्ड एडवांस्ड लर्नर्स डिक्शनरी आफ करेन्ट इंगलिश (Oxford Advanced Learners Dictionary of Current English) के अनुसार ''प्रदूषण'' शब्द से आशय ''प्रदूषण यानि कि शुद्धता को नष्ट करना'' अर्थात पर्यावरण के किसी भी घटक की प्राकृतिक अवस्था में जब अवांछनीय और अशुद्ध तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है, तो प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों में भूमि, वायु एवं जल आदि के भैतिक, रासायनिक, जैविक गुणों में ऐसा परिवर्तन होता है। जो पृथ्वी पर जीवन के लिये घातक हों तो उसे प्रदूषण की संज्ञा दे सकते है।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम **(Environment Protection Act),** 1986 के अनुसार, पर्यावरण प्रदूषण का अर्थ किसी भी प्रकार के ठोस, द्रव अथवा गैसीय वस्तु की इतनी मात्रा में उपस्थिति हो, जो पर्यावरण के लिए किसी भी प्रकार से हानिकारक या होने की सभावना रखती हो।

गिलपिन (1976) के अनुसार, ''बेकार (Waste) या पदार्थो के ऐसे निस्तारण, निक्षेपण या संग्रह से पर्यावरण के किसी भाग में भौतिक, ऊष्मीय, प्राणिशास्त्रीय, रेडियोधर्मी गुणों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष बदलाव प्रदूषण है। तो पर्यावरण के किसी लाभकारी उपयोग को विपरीत ढंग से प्रभावित करता है। ऐसी स्थिति पैदा करता हे जो कि सार्वजनिक स्वास्थ्य, सुरक्षा या कल्याण अथवा जानवरों, चिड़ियों, वन्य जीवन, मछली या जलीय जीवन अथवा पौधों को हानिकर या संभावित रूप से घातक है।

भारत में सन् 1976 में 42 वें सशोंघन द्वारा संविधान में निम्नलिखित पर्यावरण सम्बन्धी प्रावधान सम्मिलित किए गए:-

- धारा 48A - यह देश पर्यावरण के सुधार व संरक्षण के लिए तथा देश के वनों व वन्य जरवन की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध रहेगा।

- धारा 51.A (जी) - देश के हर नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह इसके प्राकृतिक पर्यावरण, जिसमें इसके वन, झील, नदियाँ व अन्य जीवन शामिल है, की रक्षा व सुधार करेगा तथा हर प्रकार के जीव के प्रति संवेदनशील होगा।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि पर्यावरण का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष संबंध मनुष्य की विभिन्न क्रियाओं से है। मनुष्य की विकासजन्य क्रियाओं ने विविध प्रकार से पर्यावरणीय घटकों में ऐसे परिवर्तन उत्पन्न किये जाते हैं जो मंडल पर हानिकारक प्रभाव डालते है। अतः पर्यावरण में होनेवाले घातक तथा अवांछनीय परिवर्तन से पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्यायें जटिल होती जा रही है।

9.3.2 पर्यावरण प्रदूषण के कारक (Factors fo Environment Pollution)

मुख्यतः भागों में पर्यावरण प्रदूषण के विभिन्न कारकों को विभाजित किया जा सकता है-

- प्राकृतिक प्रदूषक
- मनुष्यकृत प्रदूषक

प्राकृतिक प्रदूषक (Natural Pollutants)

प्रकृति द्वारा ऐसे पदार्थ जो अति मात्रा में पर्यावरण को प्रदूषित कर देते है, प्राकृतिक प्रदूषक है। ये पदार्थ ठोस, द्रव या गैसीय अवस्थाओं में हो सकते है। वायु को प्रदूषित करने वाले पदार्थो में ओजोन, सोडियम क्लोराइड, नाईट्रोजन डाईआक्साइड, ज्वालमुखी के विस्फोट से उत्पन्न धूल गैसें, जंगली आग से उत्पन्न गैसें, जीवाणु बीजाणु तथ परागकण आदि मुख्य है। जल को अशुद्ध एवं खारा बनाने में अनेक प्रकार के खनिज लवण, कोयले की खानों से बहने वाला अम्लीय जल, गाद, वनस्पतियाँ तथा कीचड़ आदि मुख्य है। खनिज एवं धर्मी पदार्थ भूमि को प्रदूषित कर देते हैं|

मनुष्यकृत प्रदूषक (Man Made Pollutants)

मनुष्य की विभिन्न जैविक क्रियाओं, औद्योगिक उत्पादन तथा विकास के कारण उत्पन्न होने वाले प्रदूषक इस श्रेणी में आते है। कृषि, उत्खनन, विद्युत उत्पादन, पशुपालन, परिवहन तथा यातायात आदि के कारण अनेक प्रकार के प्रदूषक उत्पन्न होते है जो पर्यावरणीय प्रदूषण का एक मुख्य स्रोत है। मनुष्यकृत कारकों में मनुष्य स्वयं एक बड़ा प्रदूषक हैं। मनुष्य की अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि पर्यावरणीय क्षय और प्रदूषण का एक मुख्य कारण हैं। विकसित देशों में परमाणु ऊर्जा हेतु लगाये गये परमाणु संयत्रों से उत्पन्न रेडियोधर्मी पदार्थ भी प्रदूषण का एक अन्य स्रोत है।

प्रदूषण चाहे प्राकृतिक हो या मनुष्यकृत उसका समग्र पर्यावरण के क्षरण में बड़ा हाथ है। मनुष्य प्राकृतिक प्रदूषण को रोकने में समर्थ भले न हों लेकिन मनुष्यकृत प्रदूषण को अवश्य कम किया जा सकता है।

9.4 पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार (Types of Environmental Pollution)

पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्या अत्याधिक कारक एवं जटिल है। पर्यावरण और उसके विभिन्न घटों को प्रदूषित करने वाले प्रदूषकों की प्रकृति के अनुसार प्रदूषण के प्रकार निम्नवत् है:-

- मृदा या भूमि प्रदूषण (Soil/Land Pollution)
- जल प्रदूषण (Water Pollution)
- वायु प्रदूषण (Air Pollution)
- ध्वनि प्रदूषण (Sound Pollution)
- सामाजिक प्रदूषण (social pollution)
- विद्युत चुम्बकीय हस्तक्षेप प्रदूषण (Elctro-Magnetic Pollution)

9.4.1 मृदा या भूमि प्रदूषण (Soil/Land Pollution)

मृदा पर्यावरण का एक महत्त्वपूर्ण घटक है जो एक प्रकार से पृथ्वी की ऊपरी परत हैं मृदा में अनेक प्रकार के कार्वनिक एवं अकार्बनिक पदार्थ पाये जाते है। कृषि एवं वनस्पति के उगने हेतु मृदा में विद्यमान खनिज तत्व, मृदा जैव, जल तथा मृदा घोल बहुत आवश्यक हैं भू-क्षरण मृदा को नष्ट कर देता है जिससे भमि कटाव की समस्या उत्पन्न होती हैं जब भूमि का कटाव बढ़ जाता है तो भूमि कृषि योग्य नही रह जाती है। जनसंख्या वृद्धि, कृषि और औद्योगिक विकास से वायु एवं जल के साथ मिट्टी भी प्रदूषित हो रही है।

मृदा प्रदूषण के लिये उत्तरदायी कारकों में कृषि एक मुख्य कारक हैं बढ़ती जनसंख्या के लिये खाद्यान्न उत्पादन हेतु प्रयुक्त रासयनिक खादों तथा कीटनाशकों से न केवल मिट्टी एवं जल प्रदूषित हो रहा हैं बल्कि उत्पन्न अनाज भी प्रदूषित हो रहा है। डा0 एम0 एस0 स्वामीनाथन के मतानुसार कृषि क्षेत्र में एक दुविधा उत्पन्न हो गई है- पारिस्थितिक तंत्र संरक्षणवादी सम्प्रदाय इस क्षेत्र में शून्य वृद्धि के पक्ष में है दूसरा सम्प्रदाय बाजार अर्थव्यवस्था और प्रौद्योगिकी उन्मुख है जो किसी भी कीमत पर संसाधनों के दोहन का पक्षधर है, किंतु भारत जैसे विकासशील देशों में एक तीसरा सम्प्रदाय उभर रहा है जो प्राकृतिक पुनर्चक्रकीकरण वाले संसाधनों का प्रबंधन इस तरह करना चाहता है जिससे सतत कृषि विकास का आधार प्राप्त हो सकें।

भूमि प्रदूषण के प्रमुख कारणों में गंदगी , कचरा , राख , व्यर्थ पदार्थ जल-मल उपचारित ठोस, मृत पशु ; औद्योगिक ठोस व्यर्थ, उत्खनन व्यर्थ तथा कृषि व्यर्थ (Agricutual Waste) आदि मुख्य है।

9.4.2 जल प्रदूषण

प्राकृतिक जल में अवंछित बाह्य पदार्थो के घुल जाने से उसकी गुणवत्ता में कमी आ जाना जल प्रदूषण है। इससे जल स्वास्थ्य के लिये हानिकारक या कम उपयोगी हो जाता है। जल प्रदूषण की समस्या विश्वव्यापी है जिसके मुख्य कारण जनसंख्या वृद्धि, गहन कृषि और बढ़ता औद्योगिकरण है। प्रायः सभी देशों में औद्योगिक अपशिष्ट और नगरी कचरे एवं पदार्थो को जलीय स्रोतों में बहा दिया जाता है, इससे जल संसाधनों के प्रदूषित होने का खतरा उत्पन्न हो गया है।

प्रदूषक पदार्थो की प्रकृति के आधार पर जल प्रदूषण की चार श्रेणियाँ है:-

- भौतिक प्रदूषण **(Physical Pollution)**
- रासायनिक प्रदूषण **(Chemical Pollution)**
- शरीर क्रियात्मक प्रदूषण **(Physiological Pollution)**
- जैव प्रदूषण **(Biotic Pollution)**

जल के भौतिक गुणों जैसे स्वाद, रंग, एवं गंध आदि में परिवर्तन भौतिक प्रदूषण है। जल के रासायनिक पदार्थो के घुलमिल जाने से प्रदूषित जल स्वास्थ्य के लिये हानिकर हो जाता है। औद्योगिक अपशिष्टों, उर्वरकों एवं कीटनाशकों के उपयोग से जल में रासायनिक प्रदूषण बढ़ रहा है। विषक्त रसायनों के कारण प्रदूषण के साथ-साथ जलीय जीवन भी प्रभावित हो रहा है। इसी तरह शरीर क्रियात्मक प्रदूषण में जल के गुण मानव क्रियाओं के लिये हानिकारक हो जाते है। जब जल में रोग जनक कीटाणु और विषाणु आदि घुल-मिल जाते है तो जैव प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होती है। जैव प्रदूषित जल मानव स्वास्थ्य के लिये सर्वाधिक घातक होता है। इससे अतिसार, टाइफाइड, हैजा पेचिस एवं पीलिया आदि के फैलने की संभावनायें बढ़ जाती है।

जल प्रदूषण के सभी स्रोतों को मुख्यतः दो श्रेणियों मे रख सकते है:- प्राकृतिक स्रोत तथा मानवीय स्रोत। प्राकृतिक स्रोतों के अंतर्गत मिट्टी, खनिज पदार्थ, वनस्पति, मृत प्राणियों के अवशेष एवं मलमूत्र आदि मुख्य है। इसके अलावा विषाक्त धातुएँ जैसे सीसा, पारा, आर्सेनिक तथा कैडमियम आदि के कारण जल प्रदूषित हो जाता है। इसी तरह निकिल, बेरियम, कोबाल्ट, टिन माल्बिडेनम, वैनेडियम तथा वेरिलयम आदि पदार्थो की ज्यादा मात्रा अत्यनत घातक होती है। खनिज लवण पानी में घुल मिलकर जलीय प्रदूषण उत्पन्न करते हैं प्राकृतिक रूप से प्रदूषित जल मानवीय क्रियाओं के लिये उपयुक्त नही होता।

जल के प्राकृतिक स्रोतों में मनुष्य के हस्तक्षेप से जल प्रदूषण हो जाता है। जनसंख्या वृद्धि नगरीकरण तथा औद्योगिकरण के कारण जलाशयों में प्रदूषण की समस्या बढ़ रही है। जिन मानवीय गतिविधियों के कारण जल प्रदूषित होता है। उनमें घरेलू मल-मूत्र एवं कचरे का विसर्जन, वाहित मल, औद्योगिक बहिःस्राव, कृषि बहिःस्राव, तापीय प्रदूषण (Thermal Pollution),, तैलीय प्रदूषण (Oil Pollution) एवं रेडियोधर्मी अपशिष्ट (Radio Active Waste) आदि मुख्य है।

9.4.3 वायु प्रदूषण (Air Pollution)

यह समस्या मनुष्य की सभ्यता के उत्कर्षकाल से ही प्रारंभ हो गई थी जब मनुष्य ने आग का प्रयोग प्रारंभ किया था। तत्पश्चात् ईसा से लगभग 10.11 हजार वर्ष पूर्व मनुष्य ने जंगलों में आग लगाकर भूमि साफ की और कृषि का प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त किया। वायुमंडल में प्राकृतिक अवस्था में वायु के विभिन्न घटकों में एक संतुलन रहता है। जो प्रदूषित होने पर बदल जाता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार वायु प्रदूषण ''मनुष्य द्वारा सम्पन्न क्रियाओं के द्वार वायु में उन पदार्थो का पर्याप्त संकेन्द्रण हे जो स्वास्थ्य, वनस्पति तथा सम्पत्ति पर घातक प्रभाव का कारण है या उसकी सम्पत्ति के उपयोग में हस्तक्षेप है।''

प्रदूषित वायु में विभिन्न प्रकार की गैसें और विभिन्न पदार्थो के सूक्ष्म कण घुल-मिल जाते है जो मानव स्वास्थय पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है। वायु प्रदूषण की व्यापकता के आधार पर तीन प्रकार का है:-

(क) व्यक्तिगत वायु प्रदूषण **(Individual Air Pollution)**: धूल, धुंआ तथा गैसों का जमाव व्यक्तिगत वायु प्रदूषण है जिसका मनुष्य द्वारा भोजन पकाना, धुम्रपान तथा अन्य क्रियायें है।

(ख) व्यावसायिक वायु प्रदूषण **(Vocational Air Pollution)**: व्यावसायिक एवं तकनीकि क्रियाओं से उत्पन्न प्रदूषण व्यवसायिक प्रदूषण है। इसमें कई प्रकार की विषाक्त गैसें वायुमंडल में घुल मिल जाती है।

(ग) सामुदायिक वायु प्रदूषण **(Community Air Pollution)**: जब सामुदायिक रूप से मनुष्यों, पेड़-पौघों जानवरों तथा समग्र पर्यावरण पर वायुमंडलीय संतुलन बिगड़ जाने से प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। तो इसे सामुदयिक वायु प्रदूषण कहते है। इस प्रकार के प्रकार के प्रदूषण को नियंत्रित करना कठिन है।

9.4.4 ध्वनि प्रदूषण

ध्वनि प्रदूषण का कारण मनुष्य द्वारा यांत्रिक विकास हैं उद्योग-धंधों एवं वाहनों से उत्पन्न अवांछित शोर और ध्वनि आज की एक प्रमुख समस्या है। रेडियो, दूरदर्शन, लाउडस्पीकर, सिनेमा, पटाखों, बैण्ड- बाजों, मोटर वाहनों तथा हवाई जहाजों से उत्पन्न तीव्र शोर से ध्वनि प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हुई है। ध्वनि प्रदूषण का मानवीय स्वास्थ्य पर बड़ा घातक प्रभाव देखा जा रहा है। अलेक्जेंडर ग्राहमबेल ने बेल्स नामक ध्वनि मापक यंत्र का अविष्कार किया था। इसके अनुसार सामान्य रूप से 10 से 12 डेसिबेल के मध्य ध्वनि कान द्वारा सुनी जा सकती है। लेकिन इससे तीव्र ध्वनि का मानव की कार्य क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। तीव्र ध्वनि से मनुष्य की क्रियाओं में बाधा उत्पन्न होती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा सामान्य रूप से ध्वनि की सीमा 45 डेसीबेल अनुशंसित की गई है जबकि मुम्बई जैसे बड़े शहरों में रोज मर्रा के जीवन मे ही तीव्रता 85 से 110 डेसीबेल के बीच पाई गई।

9.4.5 सामाजिक प्रदूषण (Social Pollution)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जिससे पर्यावरण का निर्माण होता हैं अन्य प्राणियों की तरह मनुष्य जटिल पर्यावरण का एक अंग है जो सृष्टि के अन्य प्राणियों से बृद्धि-बल में श्रेष्ठ होने के कारण पर्यावरणीय संसाधनों को अपने अनुकूल बनाने में संलग्न है। मनुष्य की समग्र सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत उसके प्रयत्नों का फल है। इस

संदर्भ में मानवशास्त्री हर्षकाविट्ज का कथन है, ''संस्कृति पर्यावरण का मनुष्यकृत भाग है'' इस कथन का आशय यह है कि मनुष्य पर्यावरणीय घटाकें को अपने सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप बनाने का प्रयास करता है।

वस्तुतः सामजिक प्रदूषण वह स्थिति है जब सामजिक पर्यावरण का व्यक्ति और समाज पर अस्वस्थ्य प्रभाव बढ़ जाता है। सामजिक प्रदूषण के पीछे अनेक कारकों का हाथ होता है। सामाजिक प्रदूषण के कारणों में समाज में वयाप्त नियम-विहीनता (Anomic) विचलन (Deviance) तथा सामजिक विघटन (social disorganizatio) आदि मुख्य है। समाज में उत्पन्न इस स्थिति के पीछे जनसंख्या वृद्धि, निर्धनता, जाति एवं वर्ग भेद, सामाजिक-आर्थिक विषमता, अशिक्षा, सामाजिक कुरीतियाँ, दुराचार और उपभोगतावादी जीवन मूल्य आदि ऐसे कारण हैं जो किसी भी समाज में सामाजिक प्रदूषण के लिये उत्तरदायी माने जा सकते है सामाजिक प्रदूषण समाज की अस्वास्थ्यता का कारण और परिणाम दोनो है। सामाजिक प्रदूषण के कारण समाज में जीवन की गुणवत्ता में ह्रास, अपराध एवं बाल अपराध, मद्यपान, जुंआ, वैश्यवृत्ति, निरक्षरता, बीमारियाँ, निर्धनता, सामाजिक तनाव एवं संघर्ष, हिंसा, युद्ध और साम्प्रदायिक दंगों में वृद्धि होती हैं एक प्रकार से सामाजिक प्रदूषण की स्थिति में सामाजिक मूल्यों का पतन हो जाता है।

9.4.6 विद्युत-चुम्बकीय हस्तक्षेप/प्रदूषण (Electro-Magnetic)

वर्तमान सभ्यता मशीनी सभ्यता है जिसमें उपकरणों और मशीनों का उपयोग दैनिक जीवन की एक आवश्यकता बन गई है। लेकिन इन मशीनों और उपकरणों से एक प्रकार की विद्युत-चुम्बकीय तरंगें उत्पन्न होती है। जो एक विशेष प्रकार के निस्तब्ध प्रदूषण (Silent Pollution) की जनक है। विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र में आने वाले जीवधारियों और वस्तुओं पर इनका घातक प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के तौर पर मिक्सर, टी0 बी0, रेडियो, सेलुलर फोन एवं अन्य विद्युत उपकरणों से उत्पन्न विद्युत चुम्बकीय तरंगो के कारण आसपास काम कर रहे अन्य विद्युत उपकरणों की क्रियाओं में हस्ताक्षेप महसूस किया जा सकता है। अतः ये उपकरण एक प्रकार से जैविक खतरा उत्पन्न करते है। उच्च शक्ति वाली ट्रान्समीशन लाइनें तथा सेलुलर फोन द्वारा लोगों में कैंसर बढ़ने की संभवनायें पैदा होती है। माइक्रोवेव्ज ओवन्स (Microwaves Ovens) से गर्भ में भ्रूण तक के मरने की सभावना बताई गई। ह्रदय रोगियों के पेस मेकर भी विद्युत चुम्बकीय तंरगों से प्रभावित होते है।

9.5 पर्यावरण संरक्षण और जन आन्दोलन (Environment Conservation and Public Movement)

ग्रीन हाउस प्रभाव के प्रति विश्व चेतना, वनों की निरन्तर होती कमी, विकास योजनाओं में पर्यावरणीय पहलुओं की उपेक्षा के प्रति बढ़ती सजगता तथा जागरूकता ने अनेक आन्दोलनों को जन्म दिया है। इन आन्दोलनो की प्रेरणा स्रोत तथा पहल मलिाओं द्वारा हुयी है। 1972 स्टाफ होम में जब पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन चल रहा था उसी दौरान हिमालय की गोद में चिपको आन्दोलन पर रहा था। चिपको, एपिको, टिहरी बांध परियोजा ग्रीन प्रार्टी का जन्म कोंकण रेलवे, पूर्वी समुद्र तटीय सड़क, चिलका झील, गंगा कार्य योजना आदि अनेक विकास परियोजनाओं/काग्रक्रमों ने जल आन्दोलनों को जन्म दिया। संगटित रूप से प्रथम पर्यावरणीय जन आन्दोलन चिपको को ही कहा जा सकता है। चिपको से एपिको, बेडथी से वारगी (नर्मदा घाटी), प्राकृतिक परिवर्तन जंगलों की कमी जो मृदाक्षरण तथा चट्टानों के स्खलन, जल स्रोतों का सूचना जैसे स्थानीय झरने, घेरलू उपयोग हेतु ईधन एवं चारा की कमी के रूप में देखा जा सकता है। ये मुद्दे सामान्यतः पहाड़ी औरतों द्वारा जंगलों का नियन्त्रण आदि मुद्दे भी इससे उभरे। इस सन्दर्भ में यह कहना समीचीन होगा कि पश्चिमी देशों में जहां पर्यावरणीय आन्दोलनों की परिधि में मध्यम वर्ग था वहीं भारत में आदिवासी औरतें और गरीबों ने

आन्दोलन में भाग लिया और प्रमुख पारिस्थितिकी आन्दोलन के रूप में इसे विकसित किया तथा विकास प्रक्रिया में एक प्रमुख कारक के रूप में जन्म दिया।

9.5.1 चिपको आन्दोलन (Chipko Movement)

हिमालय क्षेत्र. के गढ़वाल मंडल के चमोली जनपद में चिपको आन्दोलन जन्मा। प्रारम्भ में इसे आन्दोलन के रूप में देखा गया जिसका उद्देश्य स्थानीय जंगलों का वन अधिकारियो द्वारा ठेकेदारों को व्यापारिक उद्देश्यों हेतु दिये गये अधिकारों के विरूद्ध था तथापि इस आन्दोलन ने स्थानीय संसाधनों तथा जंगलों पर सामुदायिक प्रबंध की मांग को विकसित किया। सुन्दरलाल बहुगुणा ने प्रकृति के संरक्षण पर बल दिया जबकि चन्दी प्रसाद भट्ट ने गिरिजनों द्वारा स्थानीय संसाधनों का प्रबंध, स्थानीय संसाधनों पर स्थानीय लोगों के स्वामित्व की मांग तथा उन संसाधनों के उपयोग का अधिकार भी स्थानीय लोगों को मिले आदि मुद्दों को उठाया। अप्रैल 1973 में जब वनों में पेड़ों को बचाने के लिए पहली बार शान्ति पूर्ण और पूरी तरह अहिंसक आन्दोलन के रूप में चिपको शब्द का आविर्भाव हुआ था तो इसकी परिधि भी सीमित थी और मंशा भी। जबकि आज इसकी परिधि न केवल विश्व व्यापी हो गयी है। बल्कि विचार भी व्यक्ति व क्षेत्र के सूक्ष्म दायरे से निकल कर सम्पूर्ण सृष्टि को अपने भीतर एमेटने की शक्ति से सम्पन्न हो गया है। चिपको की जन्म स्थली चमोली जिले की मंडल घाटी में जहां वन विभाग और उसके एक मात्र शक्ति सम्पन्न सरकारी ठेकेदार वन निगम द्वारा मिलकर किए जा रहे वनों के विनाश के विरूद्ध महिलाओं के नेतृत्व में चिपको आन्दोलन शुरू हुआ। दूसरी ओर प्रसिद्ध सांस्कृतिक क्षेत्र नौटींनंदा सैठा में चैड़ी पत्ती के बीच व्यापारिक प्रजाति के चीड़ व्यापारिक प्रजाति के चीड़ के पौधों के रोपण के खिलाफ आक्रोश आन्दोलन का रूप ले रहा है और वन विभाग के वन विज्ञान पर प्रश्न दर प्रश्न बढ़ते जा रहे है। तीसरी ओर वन संरक्षण अधिनियम से विकास के कार्यक्रम प्रभावित होने की शिकायतें जोरों पर उभर रही है तो चैथी ओर भूस्खलन और भूरक्षण को वन विभाग की कथित वन विज्ञान पर आधारित कार्य योजना द्वारा बढ़ावा दिये जाने के खिलाफ आवाजे उठ रही है।

चिपकों आन्दोलन 24 अप्रैल, 1973 को मंडल, चमोली जिले में आरम्भ हुआ। इस आन्दोलन के पूर्व आन्दोलन के सूत्रधार पहले से इस क्षेत्र में समाज के पुर्ननिर्माण में पिछले 13 वर्षों से सक्रिय थे। चन्दी प्रसाद भट्ट, एवं उनके सहयोगी चमोली जिले के हैं जो स्थानीय लोगों के रोजगार की वृद्धि कृतसंकल्प थे। वे लोग बिनोवा भावे, तथा महात्मा गांधी की विचार धारा, अहिंसा, तथा सत्याग्रह, से प्रभावित थे। इस कारण उन्हें सर्वोदय कार्यकर्ता कहना अधिक उपयुक्त होगा। उन्होंने 1960 में श्रमिकों की एक कोआपररेटिव गठित की जो अकुशल तथा अर्धकुशलः निर्माण श्रमिकों को संगठित करने के उद्देश्य हेतु थी। 1964 में इन लोगों ने दशौली ग्राम स्वराज मंडल की स्थापना की जिसके माध्यम से नीलामी के द्वारा जंगलों पर अधिकार प्राप्त कर बाजारों तक पहुँच स्थापित की। इसी दौरान संगठन ने एक नया व्यवसाय, जंगलों से जड़मूल तथा जड़ी बूटियां एकत्र करनी शुरू किया। 1969 से 1972 तक संगठन ने लगभग 1700 लोगों को रोजगार प्रदान किया। 1971 में संगठन ने गोपश्वर में खादी ग्रामोद्योग की मदद से एक लघु प्रक्रिया प्लांट स्थापित किया। इसमें टरपेन्टाइन तथा रेसिन का निर्माण आरम्भ किया। इसी दौरान संगठन को पाइनसेप की पर्याप्त उपलब्धता को लेकर वन विभाग से अनेक प्रकार की दिक्कते उठानी पड़ीं। 1971-72 में कच्चे माल की अनुपलब्धता की वजह से आठ महीनो तक प्लाट बंद करना पड़ा। 22 अक्टूबर 1971 को गोपेश्वर के निकटवर्ती ग्रामीणों सरकारी वन नीति के खिलाफ प्रदर्शन किया। 14 नवम्बर 1972 को दशौली ग्राम में सभी प्रधानों की सभा हुयी तथा प्रदर्शन भी हुए। जनवरी 1973 में संगठन द्वारा गोपेश्वर में अनेक सभाएं हुयी तथा चन्दी प्रसाद भट्ट देहरादून भी गये तथा वन विभाग के अधिकारियों से मिले। मार्च में पुनः वन नीति के खिलाफ अनेक सभाएं हुई तथा भट्ट ने उत्तर प्रदेश काटेज उद्योग बोर्ड से वन नीति के

खिलाफ अपना इस्तीफा दे दिया। इसी दौरान मार्च में सिमन कम्पनी गोपेश्वर में पेड़ कटान की निगरानी करने हेतु आयी। वनों की अंधी लूट और व्यवस्था की विसंगतियों के खिलाफ 1973 में चिपको आन्दोलन शुरू हुआ। कारण था कि जिन वृक्ष प्रजातियों का लोग अपने कृषि उपकरणों के लिए परम्परा से उपयोग करते थे, वन विभागीय अधिकारियों ने लोगों को उनके उपयोग से वंचित कर दिया और जंगलों की वही मूल्यवान लकड़ी व्यापारियों को बड़े पैमाने पर बेचनी शुरू कर दी। यद्यपि यह प्रक्रिया पूरे देश में चल रही थी लेकिन इसे प्रति कार की योजना गोपेश्वर में अप्रैल 1973 को बनी। यहां दशौली ग्रामस्वराज मण्डल में चिपको आन्दोलन की कार्य पद्धति तय की गयी। चूंकि कार्यकर्ता गांधी जी व बिनोबा भावे से प्रभावित थे अतः यह तय हुआ कि मजदूरों को कोई हानि न होने पाये तथा हिंसा भी न हो। तब अन्ततः पेड़ काटने वालों से पेड़ बेचाने के लिए पेड़ पर चिपक कर कुल्हाड़ी वार अपने शरीर पर झेलने का साहसिक उपक्रम सोचा गया। 24 अप्रैल 1973 को मंडल घाटी में आलमसिंह विष्ट की अध्यक्षता में एक एक्शन कमेटी गठित की गयी। पहली बार बारोंटा-रामपुर के जंगल में स्थानीय ग्रामीणों के साथ दशौली ग्राम स्वराज संघ के मंत्री शिशुपाल सिंह कुंवर, क्षेत्रीय कार्यकर्ता केदार सिंह रावत, अनुसुया प्रसाद भट्ट, गोपेश्वर से श्रीमती श्यामादेवी, जेटुली देवी, इन्द्रा देवी, पार्वती देवी, जयन्ती देवी आदि ने पेड़ों से चिपकने का उपक्रम किया और उन्हें कटने से बचाया।

जब मार्च 1974 में रेणी का जंगल बड़े पैमाने पर पेड़ों को काटने के लिए छापा मारा गया तो श्रीमती गौरा देवी, चन्दी प्रसाद भटट, गोविन्द सिंह रावत, जिला परिषद सदस्य वासवानन्द नोटियाल, हयात सिंह रावत, श्रीमती गौरा देवी के नेतृत्व में क्षेत्र के विभिन्न गांवों के महिला संगठनों, छात्रों, राजनेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं ने एकजुट होकर पेड़ों के कटान को रोकने का निश्चय किया। तो गौरा देवी के नेतृत्व में महिलाओं ने पेड़ काटने वालो को चुनौती दी और महिलाओं की आत्म बलिदान की भावनाओं को देखकर मजदूरों को जंगल छोड़ना पड़ा। महिलाओं ने (स्त्रियो का समूह) वन कर्मचारियों तथा मजदूरों से कहा ''ये पेड़ हमारे ऋषि हैं। यह जगल हमारा मायका है। इसे हम कटने नहीं देगे। यदि यह जंगल कटेगा तो हमारी रही सही खेती, मकान तो नष्ट होगो ही तुम्हारा हरिद्वार का बगड (मैदान) भी सफाचट हो जायेगा।'' ठेकेदारों से स्त्रियों ने फिर कहा कि ''तुम्हारे भी बाल बच्चे होंगे। उनके लिए इन पेड़ों को बचा दो। पहले तो यहां भूस्खलन होता रहता है। यदि ऊपर से ये पेड़ कट जायेगें तो हमारे लिए यहां रहना असंभव हो जायेगा। इन जंगलों से हम हर वर्ष मशरूम, चन्द्रा, लेगड़ा (सब्जी), भोटिया बादाम और अखरोट इकट्ठा करते हैं। यह हमारा मायका है। यह देवताओं का वास है। यदि पेड़ों को काटेंगे तो हम विवश होकर उन पर चिपक जायेंगे। तथापि मजदूरों ने पेड़ कटान रोक दी किन्तु शराब के नशे में धुत्त एजेन्ट और कर्मचारियों ने उन्हें धमकी दी। परिणामस्वरूप महिलाओं ने सीमेन्ट का वह लिंटर तोड़ दिया जो जंगल का एक मात्र रास्ता था। इस चट्टान के नीच ऋषि गंगा वह रही थी। सामने भी भूस्खलन था जिसने तीन दिन तक ऋषि गंगा ने ताल बना दिया और मोटर मार्ग और पुल बह गया था। स्त्रियों ने रातभर जंगल काटने आये समूह पर नजर रखीं। महिलाओं की सक्रियता, आत्म बलिदान की भावना तथा हिम्मत से रेणी के जंगल कटने से बच गये। साथ ही आन्दोलन का स्वरूप अधिक व्यापक हो गया। इसके बाद गोपेश्वर (1975), भ्यंडार (1978), जोशीमठ (1979), चांचरीधार, वाडियार गढ़ आदि में भी चिपको आन्दोलन चले। 1980 में डुग्री-पेतोली में बाज के जगल को काट कर सरकारी उद्यान बनाने के विरूद्ध जो आन्दोलन चला उसने वनों के चिन्तन में महिलाओं की भागीदारी को और भी मजबूत किया। चिपको आन्दोलन ने पेड़ो की रक्षा के साथ ही वनों के संवर्धन, वन शिक्षण और वनीकरण की ओर की पहल की।

चमोली के ऊंचाई वाले क्षेत्र में केदार नाथ वन प्रभाग तथा केदारनाथ कस्तूरी मृग विहार के अन्तर्गत मल्ला नानापुर रेंज में लकड़ी के लुढ़कान से वन में होने वाली हानि की भनक ग्रामीणों को मिल गयी थी। मार्च 1988 में जंगल की वास्तविक स्थिति का जायजा लेने आये दल ने जिसमें सिरोली की श्रीमती पुष्पा देवी, सोषती देवी,

फूलवती देवी, वोती देवी, श्री हरेन्द्र सिंह, विष्ट, वीरेन्द्र सिंह विप्ट, श्रीमती संतोष देवी, श्रीमती सुशीला देवी, श्रीमती ज्ञानेश्वरी देवी, मूसी देवी तथा श्री चन्द्र सिंह राणा शामिल थे, बताया कि लकड़ी के लुढ़कान से कई स्थानों पर भूमि इतनी खराब हो गयी है कि भूस्खनल का एक स्थायी सिलसिला बन गया है। सरकार के निर्देश थे कि संवेदन शील जंगलों में किसी प्रकार का व्यवसायिक दोहन नहीं किया जायेगा। 2750 मीटर से अधिक ऊँचाई तथा 45 अंश से अधिक ढाल के वन में भी व्यवसायिक दोहन तथा लुढ़कान पूरी तरह निपिद्ध है। चिपको आन्दोलन कर्ताओं ने इस तरह क्षेत्र को बचाया। फरवरी 1988 में भी वन विभाग की नीति जिसमें बांज के जंगलों में चीड़ टूसने से आन्दोलन कर्ताओं ने विरोध किया और बांज के विकास मान जंगलों में बेवजह घुसाये गये पेड़ वहां से हटाकर उपयुक्त स्थानों पर लगाने की वकालत की।

चिपको आन्दोलन ने जिन छह मुद्दों को संहिजाबद्ध करते हुए वन नीति में मूलभूत परिवर्तन की मांग की वे अभी पूरे हो सके हैं। ये मुद्दे इस प्रकार थे:-

- वन नीति का मुख्य उद्देश्य मिट्टी और जल स्रोतों का सम्यक संरक्षण होना चाहिए। इसे ध्यान में रखते हुए हिमालय में जल ग्रहण क्षेत्रों भूस्खलन और भूक्षरण से प्रभावित क्षेत्रों का पता लगाकर पेड़ों की व्यवसायिक कटान को पूरी तरह बन्द किया जाना चाहिए।

- वनों का सर्वेक्षण किया जाना चाहिए और लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं के आधार पर हकहलूकों का पुर्ननिधारण किया जाना चाहिए।

- बंजर जंगलों को हरा भरा बनाने के लिए युद्ध स्तर पर वनीकरण कार्यक्रम संचालित किए जाने चाहिए और इसमें स्थानीय लोगों की भागीदारी को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

- वन में हर प्रकार की भू-ठेकेदारी प्रथा को समाप्त किया जाना चाहिए और ग्रामीण कार्यकारी शक्ति को वन कर्म की प्रत्येक विधा से जोड़ने के लिए ग्रामीण समितियाँ गठित की जानी चाहिए साथ ही इन कार्यक्रमों से ग्राम व वन पंचायतों को जोड़ा जाना चाहिए।

- वनाधारित कुटी उद्योग वन क्षेत्रों में ही स्थापित कर उन्हे कच्चा माल, वित्तीय व तकनीकी आवश्यकता पर आधारित प्रजातियों को प्रमुखता से रोपा जाना चाहिए और वर्तमान वानिकी में जल्दी उगने वाली वाणिज्यिक प्रजातियों की अंधा धुध रोपण को बदला जाना चाहिए। वनीकरण में स्थानीय प्रजातियों को विशेष प्रमुखता दी जानी चाहिए।

9.5.2 एपिको आन्दोलन (Appico Movement)

हिमालय के उत्तराखण्ड के चिपकों आन्दोलन से कर्नाटक के उत्तर कन्नाड़ जिले के ग्राम वासियों को प्रेरणा मिली। उन्होंने चिपको की भांति ही जंगलों को बचाने के लिए आन्दोलन छेड़ा। सितम्बर 1983 में सल्कानी के आदमी, औरते तथा बच्चों ने पेड़ों से चिपक कर कालसा जंगल को बचाया। ''पेड़ों से आलिंगन'' का कन्नड़ का अर्थ एपिको होता है। इस आन्दोलन ने दक्षिण भारत में नव चेतना को जन्म दिया। उत्तर कन्नाड क्षेत्र की स्थिति भिन्न है। 1950 में उत्तर कन्नाड जिले में 81 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र में वन थे। सरकार ने इस क्षेत्र को पिछड़ा क्षेत्र घोषित किया और ''विकास'' प्रक्रिया की पहल शुरू की। तीन प्रमुख, एम पल्प एवं पेपर मिल, एक प्लाईवुड फैक्टरी तथा क्षेत्र की नदियो पर एक हाइड्रोइलेक्ट्रिक बांध की श्रंखला बनाना शुरू हुई। इन उद्योगों ने वन संसाधनों का असीमित दोहन किया तथा बाँधों ने जंगलों के बड़े भाग को निगल लिया। जो हिस्सा बाँधों में डूब गया उसमें

कृषि क्षेत्र भी शामिल था। 1980 तक क्षेत्र में जंगल सिमट कर 25 प्रतिशत रह गये। स्थानीय लोग विशेषकर गरीब तबके के लोग बाँधों से विस्थापित हुए। साथ ही जंगलों में टीक तथा यूकोलिपट्स वनीकरण ने जल स्रोतों को सुखा दिया। संक्षिप्त में तीन ''पी''- पेपर, प्लाइवुड, तथा पावर, जिनका उद्देश्य लोगों के लिए विकास का था ने चैथे ''पी.'' को जन्म दिया- ''पावंरटी'' (गरीबी)।

एपिकों आन्दोलन पश्चिम के घाटों को बचाने के लिए दक्षिण भारत में अपनी जड़ेक फैला रहा है। सेट्टी ने इस आन्दोलन के उद्देश्य को मुख्यतः तीन श्रेणियों में विभाजित किया है:-

- पश्चिमी घाट में अवशेष मानसूनी ट्रापिकल वनों के लिए संघर्षरत है।
- निरावृत क्षेत्रों में हरियाली बनाये रखने के लिए प्रयास कर रहा है।
- वन संसाधनों पर दबाव कम करने हेतु तार्किक उपयोग के विचार को प्रसारित करने में कृतसंकल्प।

एपिको आन्दोलन ने विभिन्न तरीकों से जैस-दूरस्थ जंगलों में पैदल यात्रा, स्लाइड शो, लोक नृत्य, स्ट्रीट प्ले आदि द्वारा चेतना बढ़ायी है। आन्दोलन कर्नाटक के चार पहाडी जिलों में फैल गया तथा तमिलनाडु तथा गोवा के पूर्वी घाटों में फैलाने को सबल क्षमता है।

आन्दोलन कार्य कर्ताओं ने बंजर भूमि पर वनीकरण को प्रोत्रत करने के उद्देश्य को पूरा करने का संकल्प लिया। इसे वन विभाग के अधिकारियों का सहयोग भी मिला। 1984-85 में 1.2 मिलयन पौध केवल सिरसी में ग्रामीणों द्वारा तैयार की गयी। एपिको ने लगभग 5000 ''ईधन पर्याप्त'' चूल्हों का निर्माण किया तथा जंगल पर दबाव कर करने के लिए ऊर्जा स्रोतों के विकास को मजबूत किया। इन चूल्हों से लगभग 40 प्रतिशत तक ईधन की कम खपत होती थी तथा लोगों ने इसके लिए सरकारी अनुदान की प्रतीक्षा भी नहीं की।

1986 तक भूक्षरण की गति स्थिर हो गयी तथा औसत फसल उत्पादन बढ़ने लगा तथापि इसने दो तरह सामाजिक आर्थिक प्रश्न उठाये। प्रथम, सामुदायिक तथा निजी सम्पत्ति संसाधन के मध्य किस तरह के सम्पर्क किए जायें जिससे सहभागी पहल को जारी किया जा सके। दूसरे, किसी सीमा तक उत्पादन तथा वितरण यन्त्र संरचना हो जिससे एक वैकल्पिक संस्था को विकसित किया जा सके। कर्नाटक में बढ़ी हुयी पशु संख्या, तथा विकसित भू-प्रबन्ध दो मुख्य जोर के क्षेत्र है जो निजी सम्पत्ति संसाधनों की वृद्धि हेतु उत्तरदायी है। वनीकरण, भूरक्षरण, सिंचाई का पानी, समान रूप से चारे तथा घास तक पहुँच आदि सामुदायिक सम्पत्ति संसाधनों के बढ़ते हुए उदाहरण है।

9.5.3 नर्मदा बचाओं आन्दोलन

पश्चिमी में वेडथी, इचमपल्ली, और नर्मदा परियोजना उत्तर में टेहरी तथा विष्णु प्रयाग बांध, दक्षिण में तुंग भद्रा, और घाट प्रथा तथा पूर्व में गंडक तथा कोयलकारो योजनाएं आदि मुख्य पर्यावरणीय संघर्ष के केन्द्र बिन्दु है। दक्षिण में, शक्ति घाटी से उत्तर में फूलों की घाटी तक बड़े बांधो के खिलाफ आन्दोलनों ने विस्थापितों के सामाजिक न्याय के मुद्दे उभारे है। इन मुद्दों से पर्यावरणीय समस्याएं जैसे वनों का विनाश, वन्यजीवों को क्षति, भूक्षरण, जलभराव, लवणता तथा अनेक पर्यावरणीय पहलू समाहित है। नयी प्रोद्योगिक के जरिये विकास की कोई भी दिशा देश को उत्रति के रास्ते पर ले जायेगी, इससे किसी का भी विरोध भला क्यो कर होगा और वह भी बड़े बाँधों की प्रौद्योगिकी के सम्बन्ध में। इन बाँधों का निर्माण निश्चित रूप से विलुप्त ऊर्जा, भूमि की पर्याप्त सिंचाई, बाढ़ नियंत्रण और पेयजल की समस्या के लिए तो वरदान होगा ही, देश की समृद्धि और खुशहाली में भी सहायक होगा। लेकिन यह निर्माण और विकास एक अति सामान्य आदमी के जीवन की उपेक्षा, मानवीय गरिमा के विरूद्ध और समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़े आदमी को आदमी न समझने की शर्त पर खड़ा किया जा रहा हो तो

बहुत से विपरीत प्रश्न उभरने लगते हैं। पुर्नवास और पर्यावरणीय क्षति जैसी आसन्न स्थितियों के प्रति विकासवादियों के नजरिये में ऐसी ही जन विरोधी प्रवृत्ति झलकती है। यही चिन्ता का विषय है। घाटी में लोगों की बड़े पैमाने पर जमीन से बेदखली, गांवों का डूब जाना, विस्थापितों का भटकाव और भारी पैमाने पर पर्यावरण नर्मदा घाटी या देश के लिए शुभ संकेत नहीं हो सकते।

नर्मदा परियोजना के मूल सरोकार घाटी के आदिवासियों की जिन्दगी, जमीन और जंगलात से जुड़े है। मुद्रा न तो सिर्फ पर्यावरण की है और नही नयी प्रोद्योगिकी के विरोध का। पर्यावरण पुर्नवास या विस्थापन बांधों की घातक परणतियां है। घाटी के इसी पर्यावरण तले लाखों आदिवासियों की जीवन धारा, आदिम संस्कृति के स्मृति के चिह्न, पुरखों की कथाएं और मिट्टी की कुदरती सम्पदाएं है। यहां से विस्थापित होने की पीड़ा, बंजर व विवादित जमीन पर पुर्नवास के संकट और परायेपन के बोध के बाद डूबेगे; पर नहीं हटेंगे का प्रश्न क्यों नही समझ आता। सियासतदां और ठेकेदार, इंजीनियर इस जुनून को पिछड़ापन, निरक्षरता और सकीर्ण बौनी सोच मानकर घाटी को उर्वरा कोख में ऊर्जा और प्रौद्योगिकी के नये तीर्थस्थापित करने पर आमादा है। मध्य प्रदेश में नर्मदा सागर (इंदिरा सागर) और गुजरात में सरदार सरोवर बांध समेत 30 विशाल बांधों के निर्माण का लक्ष्य रखा गया है। इन दो विशाल बांधों के अलावा ओंकारेश्वर तथा महेश्वर भी प्रमुख हैं। परियोजना के तहत 135 मझौले और 3000 छोटे बांधों के निर्माण का प्रारूप बना। तीस विशाल बांधों में 5 हाइडेल, 6 बहुउद्देशीय तथा 19 सिंचाई परियोजनाए शामिल है। जबकि 10 बांध नर्मदा पर तथा 19 अन्य नर्मदा की सहायक नदियों पर बनेंगे। इन बांधों की अनुमानित लागत तब क्रमशः 3450 करोड़ (नर्मदा सागर) और 12000 करोड़ रूपये आंकी गयी और फायदे का लक्ष्य रहा 2450 मेगावाट बिजली का उत्पादन तथा 31000 हेक्टेयर जमीन और सरदार सरोवर से 19000 हेक्टेयर भूमि की सिंचाई की नयी संभावनाएं शामिल है। एक रिर्पोट के मुताबिक इस परियोजना से कुल 18 लाख हेक्टेयर जमीन में सिंचाई व्यवस्था सुधरेगी, तीन करोड़ से अधिक आबादी को पेयजल मिलेगा और बांधों की विभीषिका पर काबू पाने में मदद मिलेगी। सरदार सरोवर बांध 1998-1999 में बनकर तैयार होने की संभावना है जिससे लगभग 9000 करोड़ रूपये तथा लगभग एक लाख लोगों के विस्थापित होने का अनुमान है।

सरदार सरोवर परियोजना (गुजरात) की अनुमानित लागत 13000 करोड़ या उससे अधिक भी हो सकती है। इस परियोजना से 187 लाख हेक्टेयर सिंचाई तथा 1450 मेगावाट बिजली मिलेगी। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु परियोजना क्षेत्र में 39134, हेक्टेयर जिसमें 13744 हेक्टेयर वन, 11318 हेक्टेयर कृषि भूमि भी शामिल है। इंस्टीट्यूट आफ अरबन अफेयर्स, नयी दिल्ली के एक सर्वेक्षण के मुताबिक सम्पूर्ण नर्मदा घाटी परियोजना में तकनीबन 10 लाख लोग उजड़ेगे। मार्ग (मल्टी एक्शन ग्रुप) दिल्ली के एक अध्ययन के मुताबिक सरदार सरोवर से प्रभावित लोगों में 60 फीसदी और नर्मदा सागर के मामले में 34 फीसदी अनुसूचित जाति और जनजाति के है। इसी तरह सेन्ट्रल इनलैण्ड फिशरीज केयर रिसर्च इंस्टीट्यूट, बड़ौदा के एक अध्ययन के मुताबिक नर्मदा नहीं के निकटवर्ती गांव अपने घरेलू उपयोग 28.7 फीसदी जल हे नर्मदा पर है 15.9 फीसदी कुंओं, 42.2 फीसदी नलकूप तथा 23.7 फीसदी जल आपूर्ति कार्यक्रमों पर निर्भर करते है। जब सरदार सरोवर प्रोजेक्ट का जल स्तर घटेगा तो सभी गांव प्रभावित होंगे।

1979 में केवल गुजरात में बांधों के निर्माण तथा नहरों के विस्तार से विस्थापितों की संख्या 6605 परिवार का अनुमान था। आज यह अनुमान बढ़कर 40,000 परिवार तक पहुंच गया है। सरदार सरोवर परियोजना अपनी उत्पत्ति के समय से ही विवाद ग्रस्त रही है। विवाद का प्रमुख विषय बांधों के कारण जतल मग्न हो जाने वाली जमीनें है। अभी भी इन आंकाड़ों को लेकर मतभेद बने हुए है। सरकारी आंकलनों के अनुसार 10719 हेक्टेयर वन भूमि सहित कुल 34867 हेक्टेयर भूमि इसमें जलमग्न हो जायेगी। 48250 आदिवासियों और निर्धनों

सहित कुल 66675 लोग विस्थापित होंगे। जबकि विश्व बैंक द्वारा ब्रिडफोर्ड मार्स की अध्यक्षता में नियुक्त समिति के अनुसार इसमें 48500 हेक्टेयर भूमि जलमग्न होगी तथा लगभग 1,40,000 खातेअर भूस्वामी विस्थापित होंगे। जबकि गैर सरकारी आकलनों के अनुसार मूल जलाशयों के अतिरिक्त सिंचाई परियोजनाओं आदि को मिलाकर लगभग 10 लाख लोग विस्थापित होंगे। बांधों के निर्माण से नर्मदा घाटी के निर्माण से नर्मदा घाटी के क्षतविक्षत हुए पर्यावरण को लेकर एक गंभीर बहस छिड़ी है। जबकि संस्कृति कर्मियों ने चिन्ता जतायी है कि पर्यावरण के इस विनाश से घाटी की शक्ल ही बदल जायेगी और अपार मात्रा में कुदरती संपदाएं विनिष्ट होंगी। एक अध्ययन के कुलाबिक पूरी परियोजना के फलस्वरूप 3 लाख 50 हजार हेक्टेयर जंगलात डूब जायेगे। जिसमें से 2769 हेक्टेयर जंगल पुर्नवास के नाम पर कटेंगे। करीब 19719 हेक्टेयर वन्य भूमि सिर्फ नर्मदा सागर और सरदार सरोवर क्षेत्र में पानी में विलीन हो जायेगी। नर्मदा बचाओं आन्दोलन ने स्पष्ट किया कि करीब 55000 हेक्टेयर जंगलात उक्त दो विशाल बांधों से नष्ट हो जायेंगे।

सामाजिक कार्यकर्ताओं में जिनमें बाबा आम्टे, अभिनेत्री शबाना, सुदरलाल बहुगुणा, लेखक शिवराम कांरत, वंदना शिवा, और बी.सी.शुक्ला पर्यावरणीय विद मेनाग गांधी और सबसे बढ़कर नर्मदा दीदी अर्थात् मेधा पाटकर विभिन्न संगठनों के माध्यम से पर्यावरणीय पहेलुओं के प्रति विश्व जनमत तैयार किया है। नर्मदा बचाओं आन्दोलन ने जनगणना करके अनुमान लगाया कि मध्यप्रदेश तथा महाराष्ट्र के लगभग 22523 परिवार, जो विस्थापित होंगे अन्यत्र जाने को तैयार नहीं।

नर्मदा बचाओं आन्दोलन की नेता मेधा पाटकर का आरोप है कि अभी तक विस्थापितों की गिनती तथा वर्गीकरण तक तय नहीं हो पाये है। विस्थापितों की कई श्रेणियां तो ऐसी है जिनके बारे में सरकार ने अभी तक सोचा भी नहीं है। ऐसी 10-15 श्रेणियाँ है। सरदार सरोवर क्षेत्र में पुर्नवास का अभी तक जो अनुभव है उसे देखकर नहीं लगता कि सरकार कुल प्रभावित होने वाले 10 लाख लोगों में से आधे विस्थापितों को भी बसा पायेगी। विस्थापितों में एक बड़ी गिनती अनुसूचित जाति-जनजाति या आदिवासियों की है। पूरी परियोजना के विस्थापितों में नर्मदार सागर क्षेत्र. में 30948 (24 फीसदी) तथा सरदार सरोवर क्षेत्र में 48250 (72 फीसदी) लोग ऐसी जातियों के हैं। यह संख्या बढ़ भी सकती है।

आश्चर्यजनक तथ्य है कि नहर विस्थापितों को सरकार विस्थापित मान ही नहीं रही जबकि वे भी मूलतः बांध की वजह से ही बेघर हुए है। पुर्नवास के नाम गुजरात की चिमन भाई पटेल सरकार ने गड़वी आदिवासियों को ऐसी जमीने दी है, जिनकी छोती पर पांच साल तक हड्डी तोड़ मशक्कत करने के बावजूद पांच मुट्ठीभर अन्न भी अंकुरित नहीं हो सकता। गर्मियों में टीन की कठोर गर्मी के भीतर वे सुलगते रहते है और बरसात में कीचड तथा सं ाप, बिच्छु, मच्छरों के भय के बीच उमींदे रहते हैं।

जितनी भी कम बांध को ऊंचाई होगी उसी मुताबिक भूमि तथा गांव जलमग्न होगे तथा विस्थापितों की संख्या बढ़ेगे। मध्य प्रदेश सरकार ने अनुमान लगाया कि 133 मीटर ऊंचे बांध से 6242 हेक्टेयर या 30 प्रतिशत भूमि जल मग्न होने से बच जायेगी। कुल भूमि जलमग्न होने का अनुमान 20722 हेक्टेयर था। इसी तरह जितनी ही कम ऊँचाई होगी कृषि भूमि 39 प्रतिशत कम डूबेगी और 21 प्रतिशत वन भूमि भी इसमें डूबने से बच जायेगी। कुल 150,000 लोगों में 38000 लोग विस्थापित होने से बच जायेंगे। ''एकलव्य'' के विनोद रैना ने आग्रह किया कि बांधों की ऊँचाई 121,92 मीटर रखनरी चाहिए इसमें 80 फीसदी विस्थापितों की संख्या में कमी आयेगी।

मध्य प्रदेश में नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण ने स्वीकारा है कि 3301 परिवारों में से सरदार सरोवर परियोजना से विस्थापित होगे,'' 8210 परिवार हटने के लिए तैयार नहीं है। महाराष्ट्र में 7 गांव स्थायी रूप से परियोजना में डूब जायेंगे तथा चार गांवों की जमीनों में पानी भर जायेगा। इससे 926 परिवार प्रभावित होंगे। इसके

अलावा 10 गांव जिनमें 765 परिवार शामिल है अस्थाई रूप से प्रभावित होंगे। नर्मदा घाटी परियोजा के तहत वगरी बांध 1990 में तैयार हुआ इसमें 1992 में इसकी अनुमानित कीमत 566.34 करोड़ रूपये आंकी गयी थी। इस योजना में जबलपुर, नरसिंहपुर, सिवनी और मंडला जिलों की कुल 444000 हेक्टेयर जमीन सिंचित होने के दावे किए गये। कुल विद्युत उत्पादन 409 मेगावाट के अनुमान तय किए गये। बांध निर्माण के दौर में करीब 5000 लोगों को रोजगार और 325 टन मछली उत्पादन के दावे भी किए गये। परन्तु बांध के निर्माण से उसकी झील में 26797 हेक्टेयर जमीन डूबी है जिसमें 14750 हेक्टेयर निजी काश्त की भूमि, 3569 हेक्टेयर छोटी घास की सरकारी तथा 8478 हेक्टेयर जंललात की भूमि भी शामिल है। बांध से जबलपुर, मुंडला और शिवनी के 1162 गांवों के 5475 परिवार प्रभावित है। जबकि बरगी बांध विस्थापित संघ ने ऐसे परिवारों की संख्या 20,000 बतायी है।

इतनी विपुल राशि जो नदी घाटी परियोजना पर खत्र हो रही है से सारगभित तथा अधिक लाभप्रद योजना तैयार की जा सकती है। यह राय कुछ अन्य बातों पर आधारित है। (1) नदी संग्रहण क्षेत्र में सुधार तथा कैचमेन्ट एरिया का आर्थिक विकास ताकि भूस्खलन तथा मिट्टी के कटाव की दर घटे और बाढ़ की संभावनाएं थमे। (2) छोटे बांधों पर स्थित छोटी पनचक्कियों के जरिये ऊर्जा-उत्पादन विकेन्द्रीकरण (3) भंडारण प्रणाली के रूप में जल संसाधनों का विकास, जिसमें चकडम, जलाशय तथा फार्म जोहड़ हो। (4) किसी तरह के घाटे की सूरत में छोटे बांधों को नियन्त्रण जो घाटी अभी भी पैदा हो सकता है।

13.5.4 टिहरी आन्दोलन

2400 मेगावाट टिहरी हाइड्रों प्रोजेक्ट जो लगभग 20 वर्ष पहले बनना शुरू हुआ, पर्यावरण क्षति के कारण विवाद का विषय बना हुआ है। यह परियोजना उत्तराखण्ड के गढ़वाल क्षेत्र में भागीरथी, अलकन्दा तथा भील नगना नदियों (गंगा नदी की सहायक नदिया) पर वन रहा है। यहां विश्व का सबसे ऊँचा बांध (राकफिल डैम) जो 260.5 मीटर है। जो समृद्धि भाखड़ा नांगल बांध ने पंजाब तथा हरियाणा में लायी है वैसे ही बांध से उत्तराखण्ड में समृद्धि आने की आशा थी। दिसम्बर 1979 में गठित की गयी पर्यावरणीय सुरक्षा कमेटी ने 1986 तक अपनी रिर्पोट प्रस्तुत नहीं की तथा परियोजना औचित्य को लेकर कोर्ट में चुनौती दी गयी। यह परियोजना अनुमानतः 6000 करोड़ रूपये की लागत वाला विश्व के प्रमुख ऊंचे बांधों में एक है। रोगन डैम (335) मीटर न्यरैक डैम (330) मीटर दोनों सोवितयत रूस में तथा शिकोसेन डैम (264) मीटर मैक्सिको में प्रमुख ऊँचे बांध है। टिहरी बांध बहुउद्देशीय है। बिजली उत्पादन के साथ बांध प्रोजेक्ट से 2.7 लाख भूमि की सिंचाई होगी तथा वर्तमान 6.67 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई को सुनिश्चित करेगा। इस परियोजना से 300 से 200 क्यूविक पीने का पानी दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश को मिलेगा। के. एल. जुत्सी जो टेहरी हाइड्रों डेवलेपमेन्ट कारपोरेशन के अध्यक्ष हैं, कहते हैं कि विभिन्न अध्ययनों से स्पष्ट है कि इस बांध से पर्यावरणीय क्षति की संभावना नहीं है। कैचमेन्ट के क्षेत्र में 36000 हेक्टेयर क्षेत्र का प्रबंध होगा जिसमें से 25000 हेक्टेयर क्षेत्र का ट्रीटमेन्ट किया जा चुका है। निगम क्षति पूर्ति के रूप में 4540 हेक्टेयर भूमि पर वनीकरण किया जा रहा है जो कुल जलमग्न क्षेत्र से भी अधिक है। केवल महासीर मछली के अस्तित्व पर संदेह है उसके लिए भी प्रजनन की व्यवस्था की जा रही है।

जुत्सी ने बताया कि बांध की कुल कीमत का 18 फीसदी पुर्नवास पर खर्च का प्राविधान रखा गया है। इसमें प्रभावित लोगों के पुर्नवास तथा पारिस्थितिकी पर्यावरण के संरक्षण का लागत भी शामिल है।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश ए.पी. सिंह ने बताया कि बांध के निर्माण मंे, गरीब ग्रामीण जो सबसे बुरी तरह से प्रभावित है, दिक्कत नहीं ला रहे है। पुर्नवास स्थल जोहरी -3 हरिद्वार के निकट गांव वालों को पुनः विस्थापित होने का सन्देह है क्योंकि राजा जजी पार्क में उनके खेत तथा भूमि जाने का खतरा है। इस खतरे

को टेहरी हाइड्रों डेवलपेमेन्ट कारपोरेशन ने भी कम नहीं किया। देहरादून के निकट भनियावाला के ग्रामीणों ने निगम को बताया कि इन्हें वहां से पुनः हटाना है क्योंकि जो भूमि निगम ने उन्हें एलाट की है; जिले के रिकार्ड में उसकी नहीं है। अर्थशास्त्री विजय परांजपे का मानना है कि किसी व्यक्ति को पुर्नवास हेतु आर्थिक रूप से खराब होने का हक नहीं है। इस लिए पुर्नवास की वास्तविक समस्याए मात्र बेहतर प्रशासन से ही नहीं सुलझ सकती। नालागांड ग्राम के रतनमणि भट्ट पुर्नवास के लिए मना कर दिया, कहते है हमारे खेते छोटे है अच्छी चावल की उपज देते है, इनके ऊपरी भागों से हम मोती, इलायची, लहसुन, तथा मिर्चा बेचकर पैसा कमाते है, यहां तक बुरे दिनों में भी हम जंगली फलों को इक्ट्ठा करते है। हमारे पास ईधन तथा निमर्णण हेतु लकड़ी तथा पशुओं के लिए चारा भी है। इसलिए हमारी आय सामान्य रूप से मुख्य फसलों से आती है लेकिन यदि हमें मैदानों में बसाया गया तो बहुत से संसाधन हमारे पास नहीं होगें।

9.5.5 चिल्का झील आन्दोलन

उड़ीसा में चिल्का झील, एशिया की सबसे बड़ी खारे पानी की झील है। यह उड़ीसा के पुरी तथा गंजम जिलों से 900 से 1100 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैली है। उड़ीसा के पर्यटन नक्शे में एक सौंदर्य स्थल होने के साथ-साथ यहां लगभग 100 मछलियों की प्रजातियां रहती है, तथा लगभग 153 पक्षी जिसमें अप्रवासी पक्षी भी शामिल हैं, जो झील के मुख्य आकर्षक हैं। 1974 के रायसर सम्मेलन में इस झील को एक महत्वपूर्ण गीली भूमि घोषित की गयी। पूर्व की भांति झील का विस्तार अब आधा ही रह गया है। इस समय लगभग 1000 वर्ग कि.मी. क्षेत्र तथा गर्मियों में मात्र. 750 वर्ग कि.मी. तक ही इकसा फैलाव रह जाता है। समुद्र से मुख्य चैनल मार्गमुख (35 कि.मी. लम्बा), कुछ क्षेत्रों में मात्र 100 मीटर तक चैड़ा रह गया है, रेत भर गया है जो यदि समुद्री जल से झील वंचित हो गयी तो मछली उत्पादन बुरी तरह घटेगा। 1985-86 से 1991-92 में मछली उत्पादन 8590 टन से घटकर 4273 टन रह गया। झील में खरपतवारों की बेतहाशा वृद्धि हुयी है। लगभग एक तिहाई झील इससे रूक गयी है और इससे झील की औसत गहरायी कम हो रही है।

यद्यपि आठवीं योजना में मछली उत्पादन को बढ़ाने के उपायों पर चर्चा है तथापि समुद्री मछली पालन की संभावनाओं को विनाशक मछली पालन की आदतों ने बहुत घटा दिया है। सातवी योजना के अन्त में 2.27 मिलियन टन समुद्री मछली तथा 1.40 मिलियन टन सतह मछली का उत्पादन हुआ। आंठवी योजना के अंत तक समुद्री मछली का उत्पादन 2.27 मिलियन टन मामूली वृद्धि तथा इनलैण्ड मछली उत्पादन में लगभग दुगनी वृद्धि की संभावना है। मछली उत्पादन में गिरावट के प्रमुख कारणों में प्रदूषण तथा बांध निर्माण रहे है। बहुत सी झोलों में रेत की वृद्धि तथा प्रदूषण ने मछली के स्टाक को सीमित किया है। आठवी योजना में लग्भग 4 लाख हेक्टेयर जल क्षेत्र मछली पालन में लाया जायेगा। सातवीं योजना में 65000 हेक्टेयर जल क्षेत्र खारे पानी मछली पालन के अधीन लाया गया तथा 20000 हेक्टेयर जल क्षेत्र वर्तमान योजना में मछली पालन के अधीन लाया जायेगा। मछली उत्पादन बढ़ाने के लिए अनेक कदम उठाये गये है जिसमें निजी सेक्टर में हेचरीज, मछली किसानों को प्रशिक्षण तथा पर्याप्त बाह्य संरचना उपलब्ध कराना शामिल है। लगभग 100 मिलियन डालर की विश्व बैंक की परियोजना लागू की गयी जो सतह तथा खारे पानी में फिश प्रा ॅन फार्मिग के विकास हेतु है।

सबसे बड़ा खतरा शिम्प फार्मिग प्रोजेक्ट से है जिसकी निम्न इकाइयां है (1) शिम्प फार्म - 400 हे. भूक्षेत्र. (300 हेक्टेयर तालाब क्षेत्र) से 1500 मीटरी टन प्रतिवर्ष शिम्प उत्पादन, (2) शिम्प हैचरी - 14000 मी. टन प्रतिवर्ष और प्रोसेसिंग प्लांट जो 1500 मी. टन शिम्प निर्यात हेतु प्रोसेस करोगा। 20 करोड़ रूपये की पब्लिक लिमिटेड कम्पनी जिसे चिल्का एक्वेटिक फामस लिमिटेड कहा जाता है, राज्य सरकार (49 प्रतिशत) टाटा

आयरन एण्ड स्टील कं. लि. (30 प्रतिशत), टाटा आयल मिल कं. लि. (18 प्रतिशत) और ओटो इंडिया प्रायवेट लि. (3 प्रतिशत) के शेयर से कठित की गयी है।

चिल्का बचाओं आन्दोलन ने प्रोजेक्ट का विरोध किया है। गांव वासियों को भय है कि प्रदूषण से उनकी जीविका समाप्त हो जायेगी तथा उनके संसाधन बरबाद हो जायेंगे। समुद्रजल की झील में होती निरंतर कमी तथा चरागाहों के जलमग्न होने की संभावना ने अनेक लोगों की जीविका बुरी तरह से प्रभावित होने की पुष्टि करती है। लोगों को भय है कि उच्च प्रोटीन चारा तथा संसाधनों के उपयोग से झील प्रदूषित होगी। साथ ही निवेशक पर्याप्त मुनाफा लेकर दूसरे मैदानों की ओर चले जायेंगे और प्रदूषित झील से मछुआरों को कम मझली उपज मिलेगी। अन्तिम मुद्दा मदुवारों को भय है कि बाढ़ तथा जल भराव की महती संभावना है। प्रोजेक्त में 13 कि.मी. लम्बा एक बांध बनाना शामिल है जो वर्तमान जल निकासी को अवरूद्ध करेगा और बाढ़ के पानी को गांवों की ओर जाने का रास्ता बनायेगा।

9.5.6 सुर्वण रेखा आन्दोलन

सुवर्ण रेखा बहुउद्देशीय परियोजना (एस.एम.पी.) से लगभग एक लाख लोग जिनमें आदिवासियों की बहुलता है, विस्थापित होंगे। यह प्रोजेक्ट बिहार, उड़ीसा तथा पश्चिम बंगाल के लिए है। नर्मदा परियोजना की भांति शुरू से ही यह परियोजना विवादित रही है। सुवर्ण रेखा नदी बिहार के रांची से निकलकर उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में बहते हुए बंगाल की खाड़ी में गिरती है। इसका कैचमेन्ट क्षेत्र 19950 वर्ग कि.मी. है तथा इसकी प्रमुख सहायक नदियां खारकेयी, करकरी तथा कांची हैं। चैवासा के निकट चंदिला तथा इचा में दो बाँध तथा आदितयपुर के निकट गलुडिह और गांधिया में दो बाँध बनना है। चंदिला तथा गुलडिह सुर्वण रेखा पर तथा इचा तथा गंजिया खारफेयी पर बनेगे। 1973 में 129 करोड़ रूपये की लागत से परियोजना की पहल हुयी थी तथापि इसे 1978 में मंजूरी मिली और विश्व बैंक ने 1981 में 481 करोड़ रूपये मंजूर किए तथा 1990 तक 1482 करोड़ रूपये दिये। अभी तक 700 करोड़ रूपयें खर्च हो चुके है और परियोजना की समाप्ति तक इसकी कीमत 2500 करोड़ रूपये होगी। मुख्य विवाद का विषय पुनर्वास को लेकर है। चदिंल जलाशय में 32 गांव पूर्णतः तथा 84 आंशिक यप से जलमग्न होंगे। इससे चंदिल, निमिध, तथा इच्छागढ़ ब्लाक के 6773 परिवार विस्थापित होगे। चैवासा, पन्त नगर तथा राजनगर ब्लाक के 20 गांव जलमग्न होंगे तथा 5600 परिवार इचा बांध से विस्थापित होंगे। ''विस्थापित मुक्ति वाहिनी'' ने 1987 में सर्व प्रथम उचित पुर्नवास को लेकर आन्दोलन छेड़ा और शीघ्र ही इतना अधिक सक्रिय हो गया कि बिहार सरकार को नयी पुर्नवास नीति घोषित करनी पड़ी। इस नीति में पुर्नवास की कीमत दुगनी कर दी गयी।

परियोजना रिपोर्ट के मुताबिक (अप्रैल, 1985) 46000 एकड़ भूमि चंदिल बांध के लिए जब्त की गयी। इचा जलाशय के लिए 21000 एकड़ भूमि तथा सिंह भूमि की तथा 10,500 एकड़ भूमि उड़िसा को शामिल होगी। परियोजना अधिकारियों ने पांच नहरों, दो बांधो, सड़कों तथा बस्तियों के निर्माण में लगने वाली भूमि का ब्यौरा नहीं दिया है। प्रभावित भूमि में बड़ी भूमि, सामान्य उद्देश्यों की जिनसे आदिवासी लोग अपने पशु चराते हैं तथा 10,000 एकड़ जंगलात जिनसे लोग अपनी जीविका बनाते हैं, शामिल नहीं है।

सूर्वण रेखा प्रोजेक्ट का विरोध 1975 में शुरू हुआ जब इसका सर्वे कार्य प्रारम्भ हुआ था। मार्च 25, 1975 को ही बांध को न बनाने के लिए चंदिल ब्लाक का घेराव किया गया। तथापि 1975-77 के दौरान जब देश में आपातकालीन स्थिति चल रही थी। परियोजना निर्माण प्रारम्भ हुआ। ग्रामीणों को भूमि छोड़ने के लिए नोटिसे दी गयी। अनेक पेटिसंस भी दी गयी। प्रधान मंत्री से भी आग्रह किया गया और लगभग एक लाख लोगों ने परियोजना के खिलाफ रैली निकाली। 29 अप्रैल 1978 को लगभग 8000 लोगों, जिनमें औरतें बच्चे भी शामिल

थे, एक विरोध किया। यद्यपि विरोध शान्तिपूर्ण था तथापि पुलिस ने विरोध को दबाने के लिए गोली चलाई और चार व्यक्तियों की मौत हो गयी।

चंदिल बांध, जो अब 177 मीटर ऊँचा है वनकर तैयार हो चुका है। 1990 तक विहार कम्पोनेट बनने की आशा है। यद्यपि 1989 तक लगभग 60 फीसदी काम ही पूरा हो सका है। उड़ीसा कम्पोनेट हेतु विश्व बैंक ने धन देने से मना कर दिया जिससे एक ठहराव आ गया।

9.5.7 कोंकण रेलवे आन्दोलन

यह प्रोजेक्ट पिछले कुछ वर्षों से विवाद के दायरे में है। परियोजना पश्चिमी समुद्र तटीय 760 कि.मी. लम्बी, महाराष्ट्र में रोहा से कर्नाटक में मंगलोर तक एक रेल लाइन है। इसकी अनुमानित कीमत 1400 करोड़ रूपये है। विवाद का मुख्य मुद्दा मयेस से बाली तक 54 कि.मी. (कुल लाइन का मात्र 7 प्रतिशत) रास्ता है। कोंकण रेलवे प्रोजेक्ट का सबसे अधिक विरोध कोंकण रेलवे रिएलाइमेन्ट कमेटी जिसमें पर्यावरण विद शामिल है, किया है। कमेटी ने सुझाव दिया कि प्रोजेक्ट का रेलवे नक्शा गोवा के समुद्र तटीय क्षेत्र से थोड़ा कम किया जा सके। अभी रेल लाइन मांडवी जुवारी इस्टुएरीज इकोसिस्टम (एम.जेड.ई.ई.) खाजन लैण्ड तथा कमरबोलिन झील जो चिन्हित गीली भूमि तथा प्राचीन गोवा के आर्कोलाजिकल तथा हैरिटेज स्थलो से गुजरती है।

गोवा के खाजन भूमि जो रेलवे लाइन के पूर्वी ओर है एक परिधाय मुद्दे के रूप में खत्म नहीं किया जा सकता। 1979 की गोवा सरकार की एक रिपोर्ट के अनुसार 18000 हेक्टेयर खाजन भूमि की 2000 हेक्टेयर भूमि का उपयोग चावल की दो फसलों, लगभग 12000 हेक्टेयर में चावल की एक फलस तथा पिस्सीकल्चर (मछली पालन) और लगभग 4000 हेक्टेयर का स्पष्ट विवरण नहीं है तथा उस पर केवल मछली पालन होता है। इस क्षेत्र के विकास हेतु ब्रिकिश वाटर फिश फार्मस डेवलेपमेन्ट एजेंसी की 1992 में स्थापना हुयी तथा सरकार ने 50 फीसदी अनुदान देकर जल मार्गों के विकास को बढ़ाने का प्रयास किया जिससे मछली उत्पादन बढ़ाया जा सके क्योंकि चावल न उगने से क्षेत्र में खरपतवार बढ़ेगा। मार्च 1992 में कृषि भूमि विकास पेनल ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि सागर मुहाना के प्रत्येक क्षेत्र, बाढ़ मैदानों तथा नदी तलहटी आदि का एकीकृत व्यवस्था के रूप में अध्ययन होना चाहिए क्योंकि ये पारिस्थितिकी को प्रभावित करते हैं विभाजन के लिए उत्तरदायी होगा तथा जल निकासी के तरीकों को क्षति पहुंचायेगी।

कोंकण रेलवे रिएलायनमेन्ट कमेटी ने जो विकल्प झुलाया है उससे 55 करोड़ रूपये की लागत बढ़ेगा 15 कि.मी. रेल लाइन बढ़ेगी, तथा 19 नयी सुरंगे बनानी होगी। कोंकण रेलवे निगम दावा करता है कि इससे परियोजना पूर्ण होने से एक वर्ष का विलम्ब होगा, तथा 350 हेक्टेयर पूर्वी गोवा के जंगलात नष्ट होंगे। किन्तु के.आर.ए.सी. ने मात्र 54 हेक्टेयर जंगलात नष्ट होने की बात स्वीकार की है।

गोवा के लौह खदानों को पहुंचने वाली क्षति को भी नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता। पुर्तगालियों ने 70 प्रतिशत खदान रियायतें जगंल क्षेत्र में प्रदान की थी। खदानों के लिए तथा पुर्नवास हेतु चट्टानें, पहाड़ियां काटी गयी परिणामतः भूस्खलन, भूक्षरण आदि सामने है। लगभग 26 मिलियन टन मृदा खादानों के द्वारा प्रति वर्ष छोड़ी जाती है। यह मृदा जंगलों को नुकसान पहुंचाती है तथा मानसून के दौरान कृषि खेतों, खाजन भूमि, नदियों, झरनों में जाती है। लौह खदान सल्फ्यूरिक एसिड संयुक्त मृदा से खाजन भूमि तथा कृषि व मछली पालन दोनों को नुकसान पहंुचाता है। 1981 की भारतीय ब्यूरों की एक रिपोर्ट में बताया गया कि 37 खदानें गोवा में कुल खनिज का 80 प्रतिशत योगदान करती है। यह भी पाया गया है कि 252 हेक्टेयर कृषि भूमि, जो अस्वीकृत ढ़ेर है, वरबाद होती है, जंगलों को नुकसान पहुंचाता है, नदियों, जल स्थलों, प्राकृतिक झरनों में प्रदूषण फैलाता है, भूजन के स्तर में

गिरावट आती है, कुएं के पानी से गांव के लोगों को वंचित होना पड़ता है, जल के रास्ते में रेत आने से जल निकासी के द्वार बंद हो जाते है और बाढ़ की संभावना बढ़ जाती है। इस कारण कमेटी ने खादान रियायतों को कम करने तथा माइनिंग बोर्ड की स्थापना की वकालत की है।

9.5.8 गंगा बचाओं आन्दोलन

हिमालय के गंगोत्री से निकल कर बंगाल की खाड़ी में गिरने तक गंगा नदी लगभग 2525 कि.मी. लम्बा रास्ता तय करती है। यह 29 प्रथम श्रेणी के शहरो (10 लाख से अधिक आबादी वाले) 23 द्वितीय श्रेणी के शहर (50 हजार से एक लाख आबादी वाले) तथा लगभग 48 शहर (जिनकी आबादी 50000 से कम है) इसके किनारे बसे है। केवल प्रदूषण ही मुद्दा नहीं है बल्कि रेत की वृद्धि तथा मानसून में धीरे जल बहाव से बाढ़ व अनेक समस्याऐं इसमें शामिल हैं। केन्द्रीय प्रदूषण बोर्ड की रिपोर्ट में बताया गया कि गंगा के किनारे स्थित उद्योगों, नगर के मुनिसपिल सीवेज, तथा अन्य औद्योगिक विषैले पदार्थों के उत्सर्जन व गंगा नदी में उनके छोड़ने से नदी प्रदूषित हुयी है। अनुमान है कि 1400 मिलियन लीटर सीवेज, 200 मिलियन लीटर औद्योगिक अपशिष्ट प्रतिदिन गंगा में छोड़े जाते हैं। कानपुर में जाजमऊ के टेनरी कारखानों, कलकत्ता की टेनरीज तथा मात्र कानपुर में ही 274.50 मिलियन लीटर सीवेज प्रतिदिन गंगा में मिलता है। पटना में 141 लीटर, कलकत्ता में 800 मिलियन लीटर सीवेज प्रतिदिन उत्सर्जित होता है जिसमें 59.0 प्रतिशत तथा 84.4 फीसदी क्रमशः सीवेज ही उपचारित या एकत्र किया जाता है।

1985 में गंगा कार्य योजना शुरू की गयी। इसमें 261 योजनाएं जिनकी वर्तमान लागत 385 करोड़ रूपयें है, शामिल हैं। प्रथम चरण में 25 प्रमुख श्रेणी के शहरों में, ऋषिकेष उत्तर प्रदेश से उलबरिया (पश्चिमी बंगाल) में अनेक कार्य योजनाएं लागू की गयी योजनाओं की स्वीकृत कीमत 342.49 करोड़ रूपये हैं। गंगा नदी के प्रदूषण युक्त हरिद्वार में मंसादेवी पहाड़ी पर वनीकरण (जिससे मृदा क्षरण रूक सके) ठोस कचरे के प्रबंध तथा भूसंरक्षण कार्य तथा नदी को साफ करने का संकल्प लिया गया। डच सरकार की मदद से 1230 एम.एल.डी. सीवेज ट्रीटमेन्ट कानपुर में स्थापित करने, नैनी, इलाहाबाद में सीवेज ट्रीटमेन्ट तथा शौचालय निर्माण कार्यक्रम तथा सीवेज की सफाई हेतु पेंपिंग स्टेशनों को पुर्नजीवन देना इसमें शामिल है। इसी तरह पटना में सीवेज ट्रीटमेन्ट की स्थापना, तथा पश्चिम बंगाल में प्रथम श्रेणी के शहरों में जो गंगा के किनारे पर बसे है 327 एम.एल.डी. अपशिष्ट को रोकने के लिए कार्यक्रम चल रहे हैं। इनमें 69 पंपिंग स्टेशनों के पुर्नजीवन, 175 कि.मी. लम्बे जल निकासी रास्तों का निर्माण शामिल है।

चूंकि अनेक नगरों में पर्याप्त शौचालय सुविधा नहीं है अतः 2450 सामुदायिक शौचालयों तथा 20,000 व्यक्तिगत फ्लश लैट्रिन बनायी गयी है। काग्र योजना के तहत फरवरी 1993 के दौरान बिहार में 12 उद्योगों तथा पश्चिम बंगाल 139 औद्योगिक इकाइयों में प्रदुषण नियन्त्रण उपकरण लगाने तथा पश्चिमी बंगाल में 230 टेनरीज तथा कानपुर में 29 टेनरीज को पर्यावरणीय हितों के लिए अन्यत्र ले जाने तथा प्रदूषण नियन्त्रण उपकरण लगाने की बात को दोहराया गया।

गंगा एक्शन के प्रमुख पहलू

1. गंगा जल को प्रदूषित करने वाले तत्वों को तुरन्त रोका जाय।
2. ऐसी संयत्रों की स्थापना की जाय जो प्रदूषित जल को स्वच्छ करे। इसके लिए निम्न प्रबंध अपेक्षित है:-

- वर्तमान समय में उपलब्ध सीवर को शुद्ध करने तथा उसकी मरम्मत आदि का काम इस स्तर से किया जाय जिससे दी में सीवेज गिरना बंद हो।
- ऐसे नालों आदि का निर्माण किया जाय जो सीवेज एवं तरल अवशेषों को गंगा में जाने से रोके और उसे उपचार करने वाले सयंत्रों तक ले जाया जाये।
- वर्तमान समय में स्थापित पपिंग स्टेशन और सीवेज ट्रीटमेन्ट प्लान्ट का पुर्नउद्धार किया जाये तथा नये सयंत्र भी लगाये जाये।
- मनुष्य तथा जानवरों के मलमूत्र आदि को खाद आदि के रूप में परिवर्तित किया जाय।
- कम लागत वाले ऐसे स्वास्थ्य की योजनाएं बनाई जायें जिनसे मल मूत्र का निष्कासन नदी में न हो।
- व्यर्थ जल को शुद्ध करने के अन्य तरीके भी इस्तेमाल किये जायें।
- गंगा नदी के जल प्रदूषण को निवारण के लिए स्थानीय निकाय, उद्योग विभाग, कृषि सिंचाई विभाग आदि भी तत्पर होना चाहिये और उसके संरक्षण एवं प्रबंधन के उपाय किये जाना चाहिये।

9.6 सारांश

सारांश के रूप में इस अध्याय में पर्यावरण से सम्बन्धित प्रदूषण, पर्यावरण संरक्षण एवं पर्यावरण संरक्षण में जन आन्दोलनों की भूमिका को स्पष्ट किया गया है।

9.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) पर्यावरण प्रदूषण का अर्थ एवं परिभाषाएं से आप क्या समझते हैं?

(2) पर्यावरण प्रदूषण के कारकों पर प्रकाश डालिए।

(3) पर्यावरण प्रदूषण के प्रकारों को स्पष्ट कीजिए।

(4) पर्यावरण संरक्षण और जन आन्दोलन को स्पष्ट कीजिए।

(5) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(अ) जल प्रदूषण

(ब) सामाजिक प्रदूषण

(स) चिपको आन्दोलन

(द) चिल्का झील आन्दोलन

9.8 सन्दर्भ पुस्तकें

- Bhartiya, A. K., Paryavaran, New Royal Book Company, Lucknow, Published under ASIHSS Programme (11th FYP), UGC, New Delhi.

- Kaushik, A., and Kaushik, C. P. Paryavaran Adhyan, NAIP, New Delhi, 2005.
- Singh, S. and Singh, J. Disaster Management, Pravalika Publications, Allahabad, 2013.
- Bharucha, I. Paryavaran Addhyan, Orient Laongman Pvt. Ltd., Delhi, 2006.

पर्यावरण प्रबंधन: अवधारणा, अभिगम एवं कानून

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 पर्यावरण प्रबन्धन की अवधारणा

10.2.1 पर्यावरण प्रबन्धन की आवश्यकता

10.2.2 पर्यावरण प्रबन्धन के विभिन्न पक्ष

10.3 पर्यावरण प्रबन्धन अभिगम

10.3.1 सुरक्षित अभिगम

10.3.2 संरक्षित अभिगम

10.4 पर्यावरण रणनीतियां

10.5 पर्यावरणीय कानून

10.5.1 संवैधानिक प्रयास

10.5.2 पर्यावरण सम्बन्धी अधिनियम

10.6 सारांश

10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.8 सन्दर्भ पुस्तकें

14.0 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्यनन के पश्चात आप -

1. पर्यावरण प्रबन्धन की अवधारणा एवं आवश्यकता को जान सकेंगे |
2. पर्यावरण प्रबन्धन के विभिन्न पक्षों तथा अभिगमों से परिचित हो जायेंगे |
3. पर्यावरणीय रणनीतियो ,नियोजन एवं पर्यावरणीय कानूनों को समझ सकेंगे |

10.1 प्रस्तावना

पर्यावरण सम्पूर्ण जीव-जगत् का आधार है जो आदि काल से इसके उद्भव एवं विकासमें सहायक रहा है तथा भविष्य का विकास भी इसी पर निर्भर है। इसी कारण मानव पर्यावरण का निरन्तर उपयोग कर अपने विकास के मार्ग को प्रशस्त करता रहता है, कहीं वह पर्यावरण का समायोजन करता है तो कहीं उसका शोषण। यह क्रम अनवतर चलता रहा है, किन्तु इसमें व्यतिक्रम उस समय आता है जब हम पर्यावरण के मूल तत्वों को नष्ट करने लगते हैं अथवा उन्हें प्रदूषित करने लगते है। परिणामस्वरूप पर्यावरण के घटक अपनी स्वाभाविक प्राकृतिक क्रिया करने में समर्थ नहीं रहते और पारिस्थितिक संतुलन में बाधा उत्पन्न होती है, फलस्वरूप मानव को अनेक आपदाओं का सामना करना पड़ता है। न केवल मानव अपितु जीव-जुन्तु, पशु-पक्षी एवं वनस्पति का अस्तित्व भी संकटपूर्ण हो जाता है|

पर्यावरण प्रबन्धन एक जटिल प्रक्रिया है जो व्यक्ति से व्यक्ति, समुदाय से समुदाय तथा प्रदेश से प्रदेश में भिन्नता रखती है, क्योंकि पर्यावरण का स्वरूप भिन्नता से युक्त है तथा इसके विभिन्न घटकों का अनुपात स्थान-स्थान पर भिन्नता लिये होता है। मानव ने पर्यावरण के निरन्तर उपयोग से वह प्रगति की है वहीं अपने पर्यावरणीय ज्ञान में भी समुचित वृद्धि की है और आज वह प्राकृतिक एवं जैविक अन्तर्सम्बन्धों को को सूक्ष्मता से समझने में समर्थ हुआ है। इसके साथ ही उसने पर्यावरण का अधिकतम उपयोग करना प्रारम्भ किया है, परिणामस्वरूप उसके प्रभाव न केवल सम्पूर्ण जीव-जगत् पर, पर्यावरण के घटकों पर भी हो रहा है और उनकी स्वाभाविक प्रक्रिया में व्यवधान आने से एक ओर प्राकृतिक आपदाओं का बोलबाला हो रहा है तो दूसरी ओर मानव अनेक मानसकि एवं शारीरिक व्याधियों से ग्रसित होता जा रहा है, जीवों एवं पादपों की अनेक प्रजातियाँ विलुप्त होती जा रही है, संसाधनों के समाप्त होने का संकट दिनो-दिन गहराता जा रहा है।

10.2 पर्यावरण प्रबन्धन की अवधारणा(Concept of Environment Management)

प्रंबधन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें संसाधनों का उपयोग इस प्रकार से किया जाता है कि वर्तमान मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ भावी पीढ़ियों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में किसी प्रकार की कठिनाई का सामना न करना पड़े। पर्यावरण प्रंबधन की अवधारण को सतत् विकास के एक उपकरण के रूप में स्वीकार किया जा सकता हैं वास्तव में प्रोद्यौगिकी का सही उपयोग, मानवीय तथा प्राकृतिक संसाधानों का समुचित प्रबंधन आदि द्वारा सही तरीके से किया जा सकता है। विकसित राष्ट्रों द्वारा पर्यावरण प्रंबधन को प्रत्येक स्तर क्रमशः राष्ट्रीय प्रान्तीय स्थानीय स्तर पर विकसित किया गया है। विकास शील राष्ट्रों के लिए आवश्यक है कि वह विधानों तथा जन-सहभागिता द्वारा पर्यावरण प्रबंधन को प्रोत्साहित करे।

आज विश्व में पर्यावरण संकट, पर्यावरण अवकर्षण, जल, वायु, भूमि, शोर, रेडियोधर्मी प्रदूषण, प्राकृतिक आपदाओं का संकट, जीव-जगत् के नष्ट होने का संकट, ओजोन परत में छिद्र, तापमान में वृद्धि, आदि तथ्यों पर निरन्तर विचार-विमर्श हो रहा है। वैज्ञानिक, राजनैतिज्ञ, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री आदि सभी पर्यावरण संकट के प्रति चेतावनी दे रहे हैं। इसमें अनेक निराशावादी दृष्टिकोण रखते है। उनके अनुसार यह संकट और अधिक होता जायेगा, यहाँ तक कि मानव सभ्यता को भी समाप्त कर देगा। इस खतरे से इन्कार नहीं किया जा सकता, किन्तु इससे भयभीत होने की अपेक्षा इसको समाप्त या कम करने की आवश्यकता है और इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए वर्तमान में जिस विचारधारा को न केवल बल मिला है अपितू इस दिशा में सर्वत्र पर्याप्त कार्य भी हो रहा है, वह है- पर्यावरण प्रबन्धन अथा्रत् पर्यावरण का उचित उपयोग, उचित प्रबन्ध जिससे वह अधिक से अधिक

मानत्रोपयोगी हो तथा कम से कम प्रदूषित हो और पारिस्थितिक चक्र सदैव चलता रहे। पर्यावरण प्रबन्धन की सामान्य की परिभाषा है

"A process of planning, review assessment decision maling and the lile which is essential in the real life situation limited resoures and changnt priorities." अर्थात् पर्यावरण प्रबन्धन के अन्तर्गत नियोजन विश्लेषण, मूल्यांकन एवं उचित निर्णय द्वारा सीमित संसाधनों का उपयोग तथा प्राथमिकताओं में परिवर्तन आवश्यक है जिससे वास्तविक जीवन में से उपयोग हो सके। वर्तमान परिस्थितियों में पर्यावरण प्रबन्धन ही एक मात्र मार्ग है जिसके द्वारा पर्यावरण संकट को नियन्त्रित किया जा सकता है। पर्यावरण प्रबन्धन एवं विशद् विषय है। यहाँ इसके कतिपय तथ्यों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है जो इस दिशा में मार्ग-दर्शक का कार्य करेगा।

10.2.1 पर्यावरण प्रबन्धन की आवश्यकता

पर्यावरण में वे सभी सजीव एवं निर्जीव सम्मिलित है जो हमारे चारों ओर विघमान हैं यथा हवा, भूमि, जल, पौधे, पशु, खनिज, वाहन कारखाने इत्यादि। अतः एक ऐसे प्रबन्धकीय व्यवस्था की आवश्यकता है, जो हमारे प्रयासों को सार्थक दिशा की ओर ले जा सके और एकीकृत करते हुए लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता प्रदान कर सके।

प्रत्येक को यह अधिकार प्राप्त है कि वह गुणवत्ता से मुक्त पर्यावरण में जीवन व्यतीत करें। इसके लिए आवश्यक है कि जैविकीय तथा भौतिकीय तत्वों की अन्तःक्रिया एवं कार्यो को समझा जाये ताकि सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक संसाधानों को संरक्षित रखने के ज्ञान का उपयोग किया जा सके। इसके लिए ऐसी रणनीतियों की आवश्यकता है जो हमारे पर्यावरण का प्रभावशाली रूप से प्रबंन्ध कर सके। अतः हम कह सकते है कि पर्यावरण प्रबन्ध एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें नियोजन, पुर्नमूल्यांकन, मूल्यांकन, निर्णयन तथा इच्छा जिसमें सीमित संसाधन तथा परिवर्तित प्राथमिकताएं एक वारूताविक जीवन के लिए आवश्यक है जो कि न केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए बल्कि भविष्य की पीढ़ी के लिए भी आवश्यक है। दूसरे शब्दों में पर्यावरण की गुणवत्ता को बनाए रखने एवं संसाधनों का सरंक्षण केवल उचित प्रबन्धन द्वारा ही किया जा सकता है।

अतः पर्यावरण प्रबन्धन की आवश्यकता आज भी प्राथमिक आवश्यकता है जिसके द्वारा न केवल संसाधनों का युक्ति संगत उपयोग हो सके अपितु क्षेत्रीय आवश्यकताओं को पूर्ण करने तथा पर्यावरण की क्रियाओं में सामन्जस्य स्थापित किया जा सके और आवश्यकता होने पर उपभोग सीमित किया जा सके। पर्यावरण प्रबन्धन का मूल उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों का युक्ति संगत उपयोग, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थि की रक्षा, आर्थिक मूल्यों को नई दिशा प्रदान करना तथा शुद्ध पर्यावरण प्रदान करना है। यह कार्य एकाकी अथवा एक का न होकर सामूहिक रूप से ही सम्भव है। इससे प्रशासन, सामाजिक और प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका महत्वपूर्ण है। यदि हम पर्यावरण की शुद्ध करते हैं तथा भविष्य मे उसे स्वच्छ एवं स्वास्थ्यवर्धक रखना चाहते हैं तो इसके प्रबन्धन पर समुचित ध्यान देना होगा।

10.2.2 पर्यावरण प्रबन्धन के विभिन्न पक्ष (Various Aspets of Environment Management)

पर्यावरण प्रबन्धन के पक्ष निम्नवत् है-

- प्रदूषण रहित पर्यावरण का निर्माण एवं पर्यावरण के विभिन्न घटकों को प्रदूषित होने से बचाना|

- प्रदूषण से मानव एवं पशु को सरंक्षण देना|
- जैव विविधता को बनायें रखना एवं संरक्षित करना।
- पर्यावरण सरंक्षण के लिए सरकारी एवं गैरसरकारी सगठनों के मध्य समन्बय स्थापित करना।
- पर्यावरण पर पड़ने वाले विकासात्मक योजनाओं के प्रभावों का विश्लेषण करना।
- राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय पर्यावरण नीतियों के निर्माण में सहायता करना।
- पर्यावरण की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए चल रही योजनाओं का अनुश्रवण करना
- पर्यावरण जागरूकता कार्यक्रम को प्रायोजित एवं प्रोत्साहित करना।
- पर्यावरण शिक्षा को प्रत्येक स्तर पर सम्मिलित करना एवं लागू करना।
- पर्यावरण संरक्षण के लिए दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन योजनाओं को विकसित करना।
- पर्यावरण से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान कार्य को प्रोत्साहित करना।
- पर्यावरण गुणवत्ता में वृद्धि करने के लिए सरकार को समय-समय पर दिशा-निर्देश प्रदान करना एवं सुझाव देना।।

वास्तव में पर्यावरण प्रबन्धन वर्तमान युग की राष्ट्रीय आवश्यकता है, जब हमारे देश की अपितु सम्पूर्ण विश्व की। अतः इस पर समुचित समय देना आवश्यक है। भू-पारिस्थितिकीय व्यवस्थाओं के आधार पर पर्यावरण विभिन्न घटकों का समाकलित प्रबन्धन किया चाहिए।

10.3 पर्यावरण प्रबन्धन अभिगम(Approaches to Environment Management)

पर्यावरण प्रबन्धन से सम्बन्धित मुख्य दो अभिगम प्रमुख है-

10.3.1 सुरक्षित अभिगम **(Preservative Approach)**

10.3.2 संरक्षित अभिगम**(Conservative Approach)**

प्रथम अभिगम के दृष्टिकोण के अनुसार मानव, प्राकृतिक व्यवस्था को नुकसान नही पहुँचाता है बल्कि उसके अनुसार अपने को ढालता है। परन्तु यह सम्भव नही है कि सभी विकासात्मक क्रियाएं प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करते हुए पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रख सके।

दूसरे अभिगम के दृष्टिकोण के अनुसार धारणीय या सतत् विकास के लिए आवश्यक है कि प्राकृतिक संसाधनो का सरंक्षण किया जाए तथा प्रकृति का अत्यधिक दोहन न करते हुए उसका अनुकूलतम उपयोग किया जाए।

वास्तव में पर्यावरण प्रबंधन का प्राथमिक उद्देश्य संसाधनों का संरक्षण एवं सही उपयोग करना है। विश्व संरक्षण रणनीति (1980) में तीन मुख्य उद्देश्यों को निरूपित किया गया है:-

- आवश्यक परिस्थितिकीय प्रक्रियाओं कों बनाए रखना
- जैव विविधता को सुरक्षित रखना, तथा
- प्राकृतिक संसाधनों का स्थायित्व उपयोग

इधर के वर्षो में पर्यावरण के प्रबन्धन से सम्बन्धित अनेक अभिगमों को विकसित किया गया है। इन अभिगमों को निम्नवत् समझा जा सकता है:-

तदर्थ अभिगम(Adhoc Approch):- इस अभिगम को विशेष अथवा विशिष्ट परिस्थितियों में उपयोग में लाया जाता है।

समस्या-समाधान अभिगम(Problm Solving Approach):- इस अभिगम में समस्या के कारणों एवं आवश्यकताओं की पहचान करके समाधानों को लागू किया जाता है।

परिस्थितिकीतंत्र अभिगम (Ecosystem Approach):- यह अभिगमन एक सम्पूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। जिसके आधार पर सम्पूर्ण तंत्र को समझने में मदद मिलती है परन्तु इस अभिगम के द्वारा सामाजिक-सांस्कृतिक मुद्दों को नही समझा जा सकता है।

क्षेत्रीय अभिगम (regional approch):- क्षेत्रीय अभिगम को मुख्यतः पारिस्थितिकीय क्षेत्रों में उपयोग में लाया जाता है, यथा जलीय क्षेत्र।

विशिष्ट शाखा अभिगम (Specalist Discipline Approach):- विशिष्ट शाखा अभिगम का प्रयोग प्रायः व्यावसायिओ द्वारा जल, वायु, अथवा भूमि प्रबंधन के साथ-साथ नगरीय प्रबंधन, पर्यटन प्रबंधन तथा पर्यावरणीय स्वास्थ्य प्रबंधन में किया जाता है।

स्वैच्छिक क्षेत्रीय अभिगम (Voluntary sector approch) :- स्वैच्छिक क्षेत्रीय अभिगम का प्रयोग पर्यावरणीय प्रबंधन में गैर सरकारी सगंठनों को प्रोत्साहित करना तथा उनके सहयोग को बढ़ाना है।

वाणिज्यिक अभिगम (Commercial approch) :- वाणिज्यिक अभिगम को व्यवसाय के लिए पर्यावरण प्रबन्धन में उपयोग मे लाया जाता है।

मानव पारिस्थितिकी अभिगम (Human Ecology Approch):- इस अभिगम को मुख्य रूप से मानव, प्रकृति तथा समाज के बीच के सम्बन्धों को जानने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसके अन्तर्गत यह माना जाता हैं कि नियोजन एवं विकास के प्रबंधन के लिए सामजिक सम्बन्धों को जानना अत्यधिक आवश्यक है क्योंकि यह प्राथमिक पक्ष है। इस अभिगम को स्थानीय स्तर से वैश्विक स्तर तक उपयोग में लाया जा सकता है।

राजनीतिक पारिस्थतिकी अभिगम (Political Ecology Approch):- इस अभिगम द्वारा भी समाज तथा प्रकृति के सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। पर्यावरण प्रबंधन के लिए आवश्यक है कि आवश्यकता एवं समस्या के बीच नियोजन कर्ता, नीति निर्माता, सरकारी विभाग इत्यादि प्रभावशाली रूप से नीतियों एवं कानूनों को विकसित करे तथा स्वीकार करते हुए लागू करे।

एकीकृत अभिगम: पर्यावरण प्रबंधन के लिए एकीकृत अभिगम को सबसे अच्छा अभिगम माना जाता है। इस अभिगम में पर्यावरण से सम्बन्धित सभी अंगभूतो को सम्मिलित करते हुए उसका सही तरीके से प्रबन्ध किया जाता है। इसके अन्तर्गत पर्यावरण के प्रति जागरूकता पर्यावरण शिक्षा एवं प्रशिक्षण, ससांधनो का प्रबंधन,

पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन तथा पर्यावरण क्षरण एवं प्रदूषण को पूरी तरह से नियंत्रित करने का प्रयास किया जाता है।

10.4 पर्यावरण रणनीतियां

पर्यावरण प्रबन्धन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक उपयुक्त एवं आवश्यक रणनीति जरूरी है जिसके द्वारा उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है एक उपयुक्त रणनीति के निम्नलिखित उद्देश्य हैं जो कि निम्नवत् है:-

- पर्यावरणीय नियोजन
- पर्यावरणीय स्थिति का मूल्यांकन, तथा
- पर्यावरणीय विधान एवं प्रशासन

पर्यावरणीय प्रबंधन का प्राथमिक उद्देश्य अर्थिक विकास बिना पर्यावरण को क्षति पहुचाये, करना है। दूसरे शब्दों में सतत् विकास की अवधारण को विकसित करना है। पर्यावरणीय नियोजन सभी प्रकार के क्षरण नियंत्रित करने के लिए निर्देश्न प्रदान करता है। अलग-अलग नियोजन राष्ट्रीय, प्रान्तीय, क्षेत्रीय तथा स्थानीय स्तर पर्यावरण को संराक्षित एवं बनाए रखते है।

पर्यावरण प्रबन्धन में निम्नलिखित क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है:-

- पारिस्थितिकी तत्र से सम्बन्धित अर्थिक विकास,
- प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण,
- प्रदूषण पर नियंत्रण,
- पर्यावरणीय शिक्षा एवं जागरूकता,
- पर्यावरण आंकड़ से सम्बन्धित बैंक निर्माण,
- प्राकृतिक संसाधनो तथा प्रदूषण नियंत्रण से सम्बन्धित पर्यावरणीय अनुसंधान को प्रोत्साहित करना,
- सरकारी तथा अन्य संस्थाओं के बीच समन्वय स्थापित करना, एवं
- मास्टर प्लान का निर्माण।

10.5 पर्यावरणीय कानून

वर्तमान समय में कानून, सामाजिक नियंत्रण का प्रमुख साधन है तो वर्तमान आवश्यकताओं पर आधारित होता है। कानून का प्रमुख उद्देश्य समाजोपयोगी व्यवहारों को प्रोत्सहित करना और पालन न करने वाले को एक निश्चित दण्ड की व्यवस्था करना है। मनुष्य स्वभवतः अराजक एवं व्यक्तिवादी है। और जिस पर्यावरण में वह रहता है उसका वह अपने हित में अधिकतम दोहन करना चाहता है। डेविस के0 ने नियंत्रण की विभिन्न विधियों को महत्वपूर्ण स्पष्ट करते हुए कहा है कि समाज का निर्माण ही 'सामाजिक सम्बन्धों' और नियन्त्रण की व्यवस्था द्वारा होता है। क्योंकि एक के अस्तित्व के बिना दूसरे का अस्तित्व सुरक्षित नही है।

पर्यावरणीय कानून, पर्यावरण को सुरक्षा, संरक्षण और प्रबंधन के महत्वपूर्ण अंग है। पर्यावरणीय कानून सभी देशों और समाजों में एक से नही होते है। लेकिन सभी समाजों में पर्यावरणीय कानूनों का महत्व है। पर्यावरणीय कानून मानव व्यवहार को तीन प्रकार से नियंत्रित करते हैं:-

- पर्यावरण के प्रति सभी व्यक्तियों के कर्तव्यों और अधिकारों को स्पष्ट करना,
- पर्यावरण विरोधी कार्यो के प्रति दण्ड की गंभीरता को स्पष्ट करना, एवं
- पर्यावरणीय कानून की अवहेलना करने वाले व्यक्ति को दण्ड देना।

भारत विश्व का एक ऐसा राष्ट्र है जिसने अपने संविधान में पर्यावरण सुरक्षा का प्रावधान किया है। 15 जून, 1972 में हुए सयुंक्त राष्ट्र संघ (स्टाकहोम) के मानव पर्यावरण सम्मेलन में पहली वार विस्तृत रूप से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा की गई और तभी से 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस सम्मेलन के पश्चात देश में कई पर्यावरण सम्बन्धी अधिनियम पारित हुए। इस प्रकार देश में पर्यावरणीय कानून से सम्बन्धित दो मार्गो को अपनाया जा सकता है- 1) संवैधानिक प्रयास 2) पर्यावरण सम्बन्धी अधिनियम

10.5.1 संवैधानिक प्रयास

संविधान के 42 वें संशोधन में निम्नलिखित पर्यावरण सम्बन्धी प्राविधान किये गए:

- धारा 48 । रू. यह देश पर्यावरण के सुधार व संरक्षण के लिए तथा देश के वनों व वन्य जीवन की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध होगा।
- धारा 51. । (जी) ऐश के हर नागरिक का यह पर्यावरण जिसमें इसके वन, झीले नदियाँ, व वन्य-जीवन शामिल है, की रक्षा व सुधारा करेगा तथा हर प्रकार के जीव के प्रति सवेदनशील होगा।

10.5.2 पर्यावरण सम्बन्धी अधिनियम

हमारे देश में पर्यावरण सम्बन्धी कई अधिनियम पारित हुए-

- वन्य-जीवन (सुरक्षा) अधिनियम, 1972
- वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980
- जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974
- वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1981, तथा
- पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986

वन्य-जीवन (सुरक्षा) अधिनियम, 1972

सन् 1972 में इस अधिनियम के पारित होने के बाद बोर्ड द्वारा वन्य जीवन सरक्षण के लिए अभ्यारण्य तथा राष्ट्रीय वन्य-जीवन को प्रदेश की सूची से निकाल कर इसे केन्द्रीय सूची में स्थानान्तरित कर शाक्तियों केन्द्र सरकार को प्रदान कर दी गई इस अधिनियम के अन्तर्गत निम्नलिखित उपाय किए गये है-

- वन्य जीवन से सम्बन्धित परिभाषायों को निश्चित करना,

- इस अधिनियम द्वारा वन्यजीवन सलाहकार समिति, वार्डन व उनके कर्तव्यों तथा शक्तियों को निर्धारित किया जाता है,
- संकटग्रस्त व विलुप्त होते वन्य जीवन की सूची को बनाना एवं जीवों के शिकार पर प्रतिबन्ध लगाना,
- संकटग्रस्त पौधों के संरक्षण का प्रावधान,
- राष्ट्रीय उद्यानों एवं वन्य जीवन सरंक्षण अभ्यारण्यों की स्थापना,
- वन्यजीवन प्रजातियों की व्यवसायिकों के लिए लाइसेंस आदि की व्यवस्था करना,
- केन्द्रीय चिड़ियाघर का प्रविधान,
- सूचीबद्ध संकटग्रस्त प्रजातियों के शिकार का व्यापार पर प्रतिबंध,
- अधिनियम की अवहेलना पर जुर्माना व सजा व दोनों का प्रविधान, एवं
- संकटग्रस्त वन्यजीवन प्रजातियों की संख्या वृद्धि के लिए व्यवस्था।

वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980

वन (संरक्षण) अधिनियम 1980 जम्मू कश्मीर को छोड़कर देश के सभी भागों में लागू किया गया है। इस अधिनियम के प्रमुख विशेषताए निम्नलिखित है:-

- राज्य सरकार वनों का प्रयोग केवल वानिकी कार्यो के लिए करेगी अन्यथा उसे केन्द्रीय सरकार से अनुमति लेनी होगी
- सलाहकार समिति का प्राविधान जो हर प्रकार के वनों के संरक्षण के लिए उचित धनराशि उपलब्ध करायेगी |
- वानिकी के अतिरिक्त यदि अन्य कोई कार्य वन के अन्दर हो रहा है, तो उसे तुरन्त रोकना |

1992 में संशोधन के पश्चात अधिनियम के संशोधित प्राविधान

- वन के अन्दर बिजली की लाइन, भूकम्प का सर्वेक्षण, बाँध परियोजना से सम्बन्धित कार्य के लिए केन्द्रीय सरकार से अनुमति प्राप्त कर कार्य करना,
- वानिकी कार्यो में चाय, काफी, रबड़, मसाले आदि को शामिल न करना,
- फल वृक्ष, तेल-वृक्ष, या औषधि वृक्षों के रोपण के लिए पुराने पेड़ों को काटने पर प्रतिबंध तथा केन्द्रीय सरकार से अनुमति प्राप्त करना,
- रेशम के कीड़ा का पालन किसी एक प्रकार के पेड़ पर न करके मिश्रित प्रजातियों के पेड़ो पर किया जाए,
- वन के अंदर खनन कार्य पर प्रतिबंध।

जल (प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण) अधिनियम, 1976

जल (प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण) अधिनियम, 1976 की प्रमुख विशेषताए निम्नवत है:-

- भूतिगत एवं सतही जल के स्रोतों की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए हर सम्भव प्रयास करना
- केन्द्रीय व राज्य प्रदूषण नियत्रणं बोर्ड की स्थापना तथा उनके कार्य एवं शक्तियाँ का निर्धारण
- बोर्ड से सम्बन्धित अनुदान, बजट, लेखा-जोख आदि का प्रावधान
- अधिनियम के प्राविधानों के उल्लंघन होने पर जुर्माना एवं सजा का प्रविधान

वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण) अधिनियम, 1981

वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियत्रण) अधिनियम 1981 की विशंषताएं निम्नवत् है:-

- कोई व्यक्ति या उद्योग या संस्थान राज्य बोर्ड द्वारा निर्धारित मानकों से अधिक प्रदूषित तत्व वायु में विर्सजित करता है। और वायु को प्रदूषित करता है तो उसे कानूनन अपराधी माना जायेगा। जिसके लिए कैद अथवा जुर्माना या दोनों का प्रारवधान है,
- राज्य बोर्ड को वह नमूने का एकत्र कर जाँच कर, फैसला देने का अधिकार है,
- 1987 में वायु प्रदूषण में ध्वनि प्रदूषण को भी शामिल किया गया है,
- मोटर-गाड़ियों से निकलने वाले धुएं से होने वाले प्रदूषण पर नियन्त्रण का प्रावधान,
- राज्य बोर्ड धारा 19 के तहत किसी भी क्षेत्र को वायु प्रदूषण नियन्त्रण क्षेत्र धोषित कर सकता है।

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986

पर्यावरण अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं निम्न है:-

- पर्यावरण में जल, वायु, भूमि, व उसके आपसी सम्बन्ध तथा उनका मनुष्यों व अन्य हर प्रकार के जीवों तथा पदार्थो से सम्बन्ध को सम्मिलित किया गया है।
- पर्यावरण प्रदूषण का अर्थ है किसी प्रकार भी प्रकार के ठोस, द्रव अथवा गैसीय वस्तु की इतनी मात्रा में उपस्थित जो पर्यावरण के लिए किसी भी प्रकार से हानिकारक हो या होने की सभावना हो।

इस अधिनियम में केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड को शक्तियाँ प्राप्त है कि वह पर्यावरण संरक्षण तथा सुधार के लिए कार्य करे तथा राज्य प्रदूषण बोर्ड उसे सहयोग करे। इस अधिनियम द्वारा केन्द्र यह सुनिश्चित करे कि:-

- जल, वायु व मृदा के मानक अलग-अलग क्षेत्रों व उद्देश्यों के लिए निर्धारित हो|
- प्रदूषणों की सर्वाधिक अनुमति योग्य मात्रा निर्धारित हो।
- विस्फोटक व संकटजन पदार्थो के बनाने रखने, वहन करने व विसर्जित करने के कड़े नियम निर्धारित हो।
- राज्य बोर्ड सुनिश्चित करे कि:-

औद्योगिक इकाइयों को अच्छी से अच्छी निवारण, नियन्त्रण व उपचार की तकनीकि से अवगत कराये

उद्योगो को प्रोत्साहन दे कि वे अपने कचरे का पुनरूपयोग व पुर्नचक्रण करे।

औद्योगिक इकाइयाँ जैविक गैस का उत्पादन और ऊर्जा की प्राप्ति भी।

10.6 सारांश

सारांश के रूप में इस अध्याय में पर्यावरण प्रबन्धन के विभिन्न आयामों, पक्षों एवं पर्यावरणीय कानूनों की भूमिका को स्पष्ट किया गया है।

10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) पर्यावरण प्रबन्धन की अवधारणा से आप क्या समझते हैं?

(2) पर्यावरण प्रबन्धन की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।

(3) पर्यावरण प्रबन्धन अभिगम को स्पष्ट कीजिए।

(4) पर्यावरणीय कानून को स्पष्ट कीजिए।

(5) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(अ) पर्यावरण रणनीतियां

(ब) पर्यावरण प्रबन्धन के विभिन्न पक्ष

(स) वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980

(द) पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986

10.8 सन्दर्भ पुस्तकें

- Bhartiya, A. K., Paryavaran, New Royal Book Company, Lucknow, Published under ASIHSS Programme (11th FYP), UGC, New Delhi.
- Kaushik, A., and Kaushik, C. P. Paryavaran Adhyan, NAIP, New Delhi, 2005.
- Singh, S. and Singh, J. Disaster Management, Pravalika Publications, Allahabad, 2013.
- Bharucha, I. Paryavaran Addhyan, Orient Laongman Pvt. Ltd., Delhi, 2006.

इकाई-11

आपदा एवं आपदा प्रबन्धन

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 आपदा का अर्थ एवं परिभाषा

11.3 आपदा के प्रकार

11.3.1 मानव जनित आपदा

11.3.2 प्राकृतिक आपदाएं

11.4 आपदा के शुरुआत की गति

11.4.1 धीमी शुरूआत वाली आपदा

11.4.2 तीव्र शुरूआत वाली आपदा

11.5 आपदा के मुख्य घटक

11.5.1 अति संवेदनशीलता

11.5.2 क्षमता

11.5.3 जोखिम एवं उसका वर्गीकरण

11.5.4 आपदा जोखिम

11.5.5 आपदा जोखिम न्यूनीकरण

11.6 जोखिम असुरक्षा विश्लेषण और खतरे का मूल्यांकन

11.6.1 जोखिम असुरक्षा विश्लेषण

11.6.2 खतरे का मूल्यांकन

11.7 आपदा का प्रभाव

11.8 आपदा प्रबन्धन

11.8.1 आपदा प्रबन्धन के सिद्धान्त

11.8.2 आपदा प्रबन्धन की प्रणालियां

11.9 आपदा से बचने के उपाय

11.10 सारांश

11.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.12 सन्दर्भ पुस्तकें

11.0 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप –

1. आपदा के अर्थ ,परिभाषा एवं आपदा के प्रकार को जान सकेंगे |
2. प्राकृतिक तथा मानवजनित आपदाओं का विश्लेषण कर सकेंगे |
3. आपदा की शुरूआत की गति तथा घटकों को समझ सकेंगे|
4. आपदा के प्रभाव तथा उनसे सुरक्षा के उपायों को जान जायेंगे |

11.1 प्रस्तावना

आपदा के कारण मानवीय एवं पर्यावरणीय संसाधनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जिसके कारण मानवीय जीवन कठिन हो जाता है। मानव ने पर्यावरण का निरन्तर उपयोग कर अपने विकास के मार्ग को सदैव प्रशस्त करता रहता है, वह पर्यावरण से समायोजन करता है और उसका शोषण भी। परिणामस्वरूप पारिस्थितिक संतुलन में बाधा उत्पन्न होती है, फलस्वरूप मानव को अनेक आपदाओं का सामना करना पड़ता है। जिससे न केवल मानव अपितु जीव-जुन्तु, पशु-पक्षी एवं वनस्पति का अस्तित्व भी संकटपूर्ण हो जाता है।

आपदा के कारण मानवीय एवं पर्यावरणीय संसाधनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और मानवीय जीवन प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है। सामान्यतः आपदा, समाज के क्रियाकलापों में गंभीर रूप से विध्वंस/कठिन/बहुत ज्यादा अस्तव्यस्तता होनें तथा बृहत् जानमाल एवं वातावरण में गिरावट/क्षति आदि को उत्पन्न करता हैं, और जिससे समाज अपने संसाधनों का उपयोग नही कर पाता है।

11.2 आपदा का अर्थ एवं परिभाषा

आपदा एक ऐसी विशेष घटना है जिसके कारण मानवीय एवं पर्यावरणीय संसाधनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और मानवीय जीवन प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है। आपदा को परिभाषित करने के विभिन्न प्रयास किये गये हैं। इन सभी प्रयासों में समस्या यह देखी गयी है कि आपदा का अर्थ या तो ये काफी विस्तृत हो जाता है या काफी संकीर्ण हो जाता है। सामान्यतः आपदा, समाज के क्रियाकलापों में गंभीर रूप विध्वंस/कठिन/बहुत ज्यादा अस्तव्यस्तता होनें तथा बृहत् जानमाल एवं वातावरण में गिरावट/क्षति को कहते हैं। जिससे समाज अपने संसाधनों का उपयोग नही कर पाता हैं। दूसरे शब्दों में अधिकतर आपदा के दौरान वाह्य सहायता की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु इन सहायताओं के सापेक्ष वाह्य सहायता का निर्णय देश एवं क्षेत्र पर भी निर्भर करता है। अधिकतर समय में यह एक राजनीतिक निर्णय भी होता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने आपदा को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''आपदा एक ऐसी घटना जिससे मानव जीवन की क्षति, वातावरण में प्रतिकूल प्रभाव, स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य सुविधाओं का ह्रास एवं धन की हानि, जो बाहरी सहायता एवं जवाबी कार्यवाही की जरूरत को व्यक्त करे/आमंत्रित करे।''

एक अन्य अन्तराष्टीय संगठन ने आपदा को निम्नलिखित तरीके से परिभाषित किया है कि ''आपदा एक ऐसी विशेष घटना है जिससे अचानक बड़ी संख्या में लोगों की जाने जाती हैं तथा जख्मी होते है।''

आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 में आपदा को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि ''आपदा का अभिप्राय किसी भी क्षेत्र में एक महाविपत्ति, अनर्थ, संकट या गंभीर घटना है, जो प्राकृतिक या मानव निर्मित कारणों से अथवा दुर्घटना या लापरवाही से उत्पन्न हुई हो, जिसके परिणामस्वरूप जीवन की भारी क्षति या मानवीय कष्ट हो, या सम्पत्ति की क्षति अथवा विध्वंश हो या पर्यावरण की क्षति अथवा क्षय हो और ऐसे स्वरूप या आकार की हो जो प्रभावित क्षेत्रों के समुदाय की सामना करने की क्षमता से परे हो''।

इस प्रकार आपदा को उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है कि ''आपदा एक ऐसी अप्रत्याशित घटना है जिससे आबादी की दैनिक दिनचर्या में अचानक गम्भीर व्यवधान उत्पन्न हो जाये, जिसके कारण बहुत बड़ी संख्या में जन-जीवन, सम्पत्ति एवं पर्यावरण को क्षति हो और जिसका निराकरण स्थानीय संसाधनों द्वारा सम्भव न हो, आपदा कहलाती है''।

11.3 आपदा के प्रकार

आपदा को उसकी विशेष प्रकृति के आधार पर मुख्य रूप से दो प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है:-

- मानव जनित आपदाएं, एवं
- प्राकृतिक आपदाएं

11.3.1 मानव जनित आपदा

मानव प्रेरित जोखिम द्वारा प्रवर्तित एक गंभीर व्यवधान जिससे मानवीय, भौतिक, आर्थिक या पर्यावरणीय क्षतियाँ हो जो प्रभावित लोगों के सामना करने की क्षमता से परे हो, मानव जनित आपदा कहलाती है। इस प्रकार मानव जनित आपदा को निम्नलिखित रूप से समझा जा सकता है:-

- रासायनिक तथा औद्योगिक आपदाएं जैसे तकनीकी खराबी से विषैली गैसों का रिसाव, विस्फोट, आग, भवनों का ध्वस्त होना, विद्युत उपकरणों आदि में विस्फोट,
- न्यूक्लीयर आपदाएं तकनीकी खराबी से परमाणु ऊर्जा संयंत्रों में रिसाव, आतंकी घटना, तोड़-फोड़ या युद्ध में परमाणु अस्त्रों का प्रयोग,
- हवाई, रेल एवं सड़क दुर्घटनायें,
- जैविक कारणों से उत्पन्न आपदाए जैसे युद्ध अथवा आतंकी गतिविधियों में जैविक अस्त्रों का प्रयोग, महामारी फैलाव, पशुओं द्वारा महामारी जैसे बर्ड फ्लू, सार्स आदि फूट प्वाइजनिंग तथा प्राकृतिक आपदाओं के उपरान्त फैली महामारियां,
- युद्ध, आंतरिक दंगे एवं आतंकी विस्फोट से उत्पन्न परिस्थिति।

अग्नि से होने वाली दुर्घटनायें

अग्नि एक ऐसी तीव्र ज्वलंतशील अभिक्रिया है जो प्रकाश, गर्मी और धुआ उत्पन्न करती है। सुरक्षित अग्नि हमारे लिए फायदेमंद होती है जबकि असुरक्षित अग्नि कमी-कभी भारी क्षति कर देती है। अग्नि से होने वाली दुर्घटनाओं के बहुत से कारण है। इस कारणों में बिजली की शार्ट सर्किट, केमिकल रिएक्शन, एल0पी0जी0 लीकेज, बम विष्फोट, सड़क दुर्घटना, रेल दुर्घटना आदि है। अग्नि शहरी क्षेत्रों में होने वाली एक भारी दुर्घटना है, जो अत्यधिक जान-माल एवं सम्पत्तियों की क्षति का कारण होती है। गर्मियों में ये दुर्घटनायें बहुतायत रूप में होती है।

इस प्रकार अग्नि एक रासायनिक प्रक्रिया है, जो त्रिभुज के आधार पर कार्य करती है ताप, ईधन और आक्सीजन। इनमे से किसी एक के न होने पर अग्नि नही जल सकती।

अग्नि के प्रकार- अग्नि पांच प्रकार की होती है-1. प्रथम श्रेणी की अग्नि 2. द्वितीय श्रेणी की अग्नि 3. तृतीय श्रेणी की अग्नि 4. चतुर्थ श्रेणी की अग्नि, एवं 5. पंचम श्रेणी की अग्नि।

प्रथम श्रेणी की अग्नि- सामान्य ज्वलनशील पदार्थ जैसे लकड़ी, कोयला, कागज, कपड़ा आदि। इस श्रेणी की अग्नि को पानी डाल कर बुझाया जा सकता है।

द्वितीय श्रेणी की अग्नि- ज्वलनशील तरल पदार्थ, जैसे पेट्रोल, वार्निश, तारकोल आदि। इस श्रेणी की अग्नि को बुझाने के लिए आक्सीजन का आवागमन बंद करने हेतु आवश्यक कदम उठाने चाहिए।

तृतीय श्रेणी की अग्नि- ज्वलनशील गैसों के जलने से जैसे एल0पी0जी0 आदि। इसे बुझाने के लिए अग्नि विरोधी निष्क्रिय गैस अथवा पाउडर का प्रयोग किया जाता है।

चतुर्थ श्रेणी की अग्नि- अति ज्वलनशील ठोस पदार्थो के जलने से होती है, जैसे मैग्नीशियम, अल्यूमिनियम, जिंक आदि। इसे रासायनिक प्रक्रियाओं से बुझाया जाता है।

पंचम श्रेणी की अग्नि- यह बिजली के उपकरणों के दुष्प्रयोग अथवा शार्ट सर्किट से होती है। इसे विद्युत आपूर्ति बाधित कर बुझाया जाता है, जिसमें विद्युत कुचालकों का प्रयोग किया जाता है।

सड़क दुर्घटनायें

सड़क दुर्घटनायें विश्व के लिए एक गम्भीर समस्या है। इस लिए अधिकांश विकसित देशों ने सड़क की सुरक्षा व्यवस्था एवं सड़क की अव्यवस्था को कम करने के लिए ठोस कदम उठाये है, किन्तु विकासशील देशों जैसे भारत में यह अभी सबसे गंभीर समस्याओं में से एक बनी हुई है।

11.3.2 प्राकृतिक आपदाएं

एक प्राकृति जोखिम (जल मौसम विज्ञानी, भोगोलिक या जैविक उत्पत्ति वाला) द्वारा प्रवर्तित एक गंभीर व्यवधान जिससे मानवीय, भौतिक, आर्थिक या पर्यावरणीय क्षतिया हो जो प्रभावित लोगों के सामना करने की क्षमता से परे हों, प्राकृतिक आपदाएं कहलाती है। इस प्रकार प्राकृतिक आपदाओं को निम्नलिखित रूप से समझा जा सकता है:-

- जल एवं मौसम सम्बन्धी जैसे बाढ़, चक्रवात बादलों का फटना, बिजली गिरना, एवलान्च, सूखा एवं गर्म हवाए(लू) तथा सर्द हवाए एवं बवंडर।
- भूगर्भीय आपदायें जैसे भूकम्प, लैण्ड स्लाइड, बाधों का टूटना एवं खदानों की आग।

भूकम्प

भूकम्प एक कम्पन या तरंग है जो पृथ्वी की सतह पर अचानक प्रभाव डालती है। यह कम्पन पृथ्वी के अन्दर के स्तर पर होने वाली हलचलों के कारण होता है। चूँकि पृथ्वी विभिन्न आकार के कई स्तरों से मिलकर बनी होती है, जिन्हें प्लेट्स कहते हैं। यह प्लेट्स जब गतिमान होकर एक दूसरे को धक्का देती हैं और एक प्लेट दूसरी प्लेट के नीचे खिसक जाती है या एक दूसरे से दूर चली जाती है या स्थान परिवर्तन कर लेती है, जिससे प्लेट्स के किनारों पर ऊर्जा एकत्रित होती रहती है और जब किसी एक स्थान पर यह ऊर्जा तीव्र हो जाती है तो वहाँ पर धरती फट जाती है और भूकम्प उत्पन्न होता है। इसे सिस्मोग्राफ यंत्र से नापा जाता है और इसकी गणना रिएक्टर स्केल से की जाती है।

भूकम्प किसी भी समय बिना पूर्व चेतावनी के आता है। इसके कारण जनसमुदाय के क्षेत्र में जान-माल एवं सम्पत्ति को भयानक नुक्सान होता है। भूकम्प के आने से भवन एवं अन्य संरचनायें ढह जाती हैं। इससे अधिकांश लोग वस्तुओं और मलबे के गिरने से हताहत होते हैं। इस लिए इसके बचाव के लिए हमें अपने स्तर पर भवनों, यातायात के साधनों, संचार सुविधाओं, वाटर सप्लाई की लाइनों बिजली आदि के निर्माण तथा उनके संचालन के लिए निर्धारित मानक का पालन करना चाहिए।

बाढ़

बाढ़ संसार के अधिकांश भागों में आने वाला सबसे आम नुकसान है। बाढ़ को इस प्रकार परिभाषित कर सकते है कि-'' अचानक आने वाली तेज बारिश, नदियों व तालाबों के उफान और बर्फ के पिघलने के कारण बहुत अधिक संख्या में आने वाला जल जो सूखे क्षेत्र को समाहित कर लेता है बाढ़ कहलाता है।''

पर्वत श्रृंखला से नदियों द्वारा जल प्रवाह के साथ लाई गयी गाद नदियों के तल में निरन्तर जमा होनें के कारण नदियों का जल स्तर ऊपर उठता रहता है, जिससे नदियों के तटों का अतिक्रमण एवं कटाव, भूमि का जल प्लावन, नदियों की धारा में लगातार परिवर्तन भीषण बाढ़ का रूप ले लेता है। बाढ़ के आने के प्रमुख कारण है:- कई दिनों तक लगातार बारिश होना,कुछ समय के लिए तेज बारिश होना तथा मिट्टी द्वारा पानी सोखने की क्षमता कम होना,नदी के अपने औसत स्तर से अधिक ऊपर तेजी से बहना,बाँध टूटना,बादल फटना,भूकम्प,पेड़ों की संख्या कम होना,विभिन्न कारणों से जल प्रवाह में अवरोध होना।

बाढ़ मानव समुदाय पर कई स्तरों पर प्रभाव डालता है, जिनमें दुर्घटनायें और सम्पत्तियों का नुक्सान प्राथमिक प्रभाव एवं जल प्रदूषण, सम्पूर्ण संरक्षित वस्तुओं का नुक्शान, जल प्रदूषण से होने वाली बीमारियों का प्रसार, उद्योगों, आदि पर प्रभाव डालता है। बाढ़ के कारण पर्यटन में गिरावट, भोजन की कमी, भवनों के पुर्ननिर्माण का व्यय, वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि आदि होती है।

बाढ़ निम्न प्रकार की होती है:-

- आकस्मिक स्थानीय बाढ़- थोड़े समय में अत्यधिक वर्षा होने तथा मिट्टी द्वारा पानी सोखने की क्षमता कम होने पर आकस्मिक स्थानीय बाढ़ आती है।
- नदी की बाढ- भारी वर्षा के कारण नदी के अपने औसत स्तर से अधिक ऊपर बहने के कारण बाढ़ आती है।

- तटीय बाढ़- तूफान के कारण उत्पन्न समुद्र की लहरों के अचानक उठने से समुद्रीय बाँध टूट जाता है और नदी का जल समुद्र के पानी से मिल नही पाता इससे बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

बाढ़ सुरक्षा के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम

बाढ़ से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधान हेतु 1954 के पूर्व योजनाबद्ध रीति से कोई कार्य नही किये गये थे। केवल कुछ क्षेत्रों में जमींदारों द्वारा कुछ सीमान्त बाँध बनाये गये थे, जिससे सीमित क्षेत्र की बाढ़ से सुरक्षा मिलती थी और यह बाँध भी तकनीकी दृष्टि से पूर्ण सुरक्षित नही थे। इस दिशा में योजनाबद्ध तरीके से कार्यक्रम वर्ष 1955 मे आयी भीषण बाढ़ के बाद से देवरिया जिले से प्रारम्भ हुआ। इसके बाद ग्रामों को ऊँचा करने, सीमान्त बांधों का निर्माण, जलोत्सारण नालियों का निर्माण, ड्रेनों का निर्माण तथा अन्य कटाव निरोधक कार्य किये गये।

बाढ़ नियंत्रण कक्ष

बाढ़ से अत्यधिक प्रभावित होने वाले क्षेत्रों में जनपदों के मुख्यालय तथा कुछ विशिष्ट कार्य स्थलों पर बाढ़ नियंत्रण कक्ष स्थापित किये जा रहे है। बाढ़ की स्थिति की सूचना इन कक्षों में एकत्रित की जायेगी तथा उन पर उचित एवं सामयिक कार्यवाही की जायेगी। लखनऊ में सिंचाई भवन एनेक्सी स्थिति केन्द्रीय बाढ़ नियंत्रण कक्ष के अन्य सभी कक्ष में सूचना भेजने के लिए दूर संचार टेलीफोन, फैक्स, तार तथा विशेष दूत का प्रयोग किया जायेगा। जनता, जन प्रतिनिधियों, स्थानीय अधिकारियों तथा अन्य श्रोतो से प्राप्त बाढ़ सम्बन्धी समस्याओं को एक रजिस्टर पर अंकित किया जायेगा, जिसमें समस्या के निराकरण का उल्लेख किया जायेगा। बाढ़ नियंत्रण कक्ष में अधिकारी तथा कर्मचारी रात दिन दोनो समय कार्यरत रहेगें। कक्षों में टेलीफोन की व्यवस्था भी रहेगी। बाढ़ नियंत्रण कक्ष केन्द्रीय बाढ़ नियंत्रण कक्ष को दैनिक सूचना भेजेंगे। बाढ़ नियंत्रण कक्षों में विभिन्न नदियों के जल स्तरों की दैनिक मानीटरिंग भी की जायेगी।

बाढ़ के पूर्वानुमान की व्यवस्था

प्रदेश मे प्रवाहित नदियों की बाढ़ के पूर्वानुमान का कार्य केन्द्रीय जल आयोग के देहरादून, दिल्ली, आगरा, लखनऊ, वाराणसी एवं पटना में स्थित खण्डों द्वारा किया जाता है। ये खण्ड अपने क्षेत्रों की नदियों के दैनिक एवं सम्भावित जलस्तर लखनऊ में स्थिति केन्द्रीय जल आयोग के खण्ड प्रथम को अपने बेतार नेटवर्क द्वारा उपलब्ध कराते है जो पूरे प्रदेश की संकलित सूचना केन्द्रीय बाढ़ नियंत्रण कक्ष, सिंचाई भवन एनेक्सी, लखनऊ, शासन आकाशवाणी, दूरदर्शन, सेना आदि को उपलब्ध कराती है। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन द्वारा प्रतिदिन इन सूचनाओं का प्रसारण किया जाता है। केन्द्रीय बाढ़ नियंत्रण कक्ष लखनऊ द्वारा भारतीय मौसम विज्ञान विभाग, लखनऊ से प्राप्त अत्यधिक वर्षा की फोरकास्ट, शासन से सम्बन्धित जिलाधिकारियों एवं विभाग के क्षेत्रीय एवं स्थानीय अधिकारियों को उपलब्ध करा दी जाती है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय बाढ़ नियंत्रण कक्ष लखनऊ द्वारा प्रतिदिन प्रदेश को अन्य बाढ़ सम्बन्धी सूचनायें भी शासन एवं उच्चाधिकारियों को उपलब्ध करायी जाती है।

बेतार केन्द्र

वर्षाकाल में बाढ़ सम्बन्धी सूचनाओं की ससमय सामयिक जानकारी प्राप्त होने एवं विभिन्न स्तरों पर सम्पर्क बनाये रखने के उद्देश्य से बेतार प्रणाली का उपयोग गत वर्षो से किया जा रहा है। इस हेतु वर्ष 2008 में 92 स्थानों पर बेतार केन्द्र स्थापित करवाने के लिए प्रस्तावित किये गये है। इनमें से लखनऊ में बेतार केन्द्र को केन्द्रीय बाढ़

नियंत्रण कक्ष, वजीरगंज, घसियारी मण्डी, गऊघाट, गोमती बैराज, हनुमान सेतु स्थापित करने का प्रस्ताव गत् वर्ष दिया जा चुका है।

बाढ़ के अनुश्रवण के लिए स्टीयरिंग ग्रुप का गठन

जनपदों में बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों की स्थिति की मानीटरिंग के लिए शासनादेश संख्या 443/एफ/85/23 सिं-6/40/बाढ़/85 दिनांक 13.05.1985 के क्रम में एक स्टीयरिंग ग्रुप का गठन किया गया है, जिनमें जिलाधिकारी-अध्यक्ष, अधिशासी अभियंता एवं बाढ़ समन्वय अधिकारी सिंचाई विभाग-सचिव हैं तथा सदस्यगण पुलिस अधीक्षक, जिला बाढ़ राहत अधिकारी, वरिष्ठ अधिशासी अभियंता राज्य विद्धुत परिषद, जिला कृषि अधिकारी, जिला आपूर्ति अधिकारी, अधिशासी अभियंता लोक निर्माण विभाग, अधिशासी अभियन्ता जल निगम हैं।

स्टीयरिंग कमेटी के मुख्य कार्य

- जनपद में बाढ़ के समय बाढ़ की स्थिति की समीक्षा करके आवश्यक प्रबंध एवं कार्यवाही करना।
- बाढ़ निरोधक कार्यो पर बाढ़ के समय आवश्यक सामग्री कार्यस्थल पर पहुॅचाने हेतु साधन उपलब्ध कराना।
- बाढ़ निरोधक कार्यो के क्षतिग्रस्त स्थल पर मरम्मत के लिए मजदूर एवं अन्य आवश्यक व्यवस्था करना।
- बाढ़ निरोधक कार्यो के सुरक्षार्थ आवश्यकता पड़ने पर पी0ए0सी0, पुलिस या होमगार्ड्स द्वारा पेट्रोलिंग का प्रबंध करना।
- शहरों एवं ग्रामीण क्षेत्रों में बाढ़ निरोधक कार्यो के क्षतिग्रस्त स्थलों पर जहाँ रात्रि में भी कार्य करने की आवश्यकता हो, वहाँ बिजली का उचित प्रबंध करना।
- जलमग्न क्षेत्र में पानी को निकालने के लिए पम्पों, डीजल और बिजली इत्यादि की समुचित व्यवस्था करना।
- राहत कार्यो से सम्बन्धित विभागों/संस्थाओं से समन्वय का कार्य।
- बाढ़ से सम्बन्धित अन्य कार्य।

बाढ़ से बचाव हेतु आवश्यक कदम

- उपलब्ध नावों, मोटरबोट, पम्प आदि की पूर्व में ही मरम्मत करा कर रखा जाये,
- सुरक्षा कार्यो में उपयोग की जाने वाली आवश्यक सामग्री की ढुलाई हेतु आवश्यक व्यवस्था की जाये,
- बाढ़ सुरक्षात्मक कार्यो का निर्माण वर्षा से पूर्व सम्पादित कर लिया जाये,
- जलोत्सारण नालों तथा साइफनों की सफाई वर्षा से पूर्व करा ली जाये,
- क्षतिग्रस्त बांधों की मरम्मत पूर्व में ही करा ली जाये,
- अतिवृष्टि जलप्लावन वाले क्षेत्रों में पम्पिंग की व्यवस्था की जाये,

- जलाशयों के जल स्तर पर पर नियंत्रण किया जाये,
- नहरें सिंचाई की आवश्यकता के अनुसार संचालित की जाये।

चक्रवात

चक्रवात अधिक दबाव वाली हवाओं के कम दबावों वाले केन्द्र में प्रवेश करने से उत्पन्न तीव्र हवाओं, तेज बारिश और विनाशकारी मौसम से पड़ने वाला एक वातावरणीय प्रभाव है। चक्रवात उत्तरी हेमीस्फेयर पर एण्टीक्लॉक वाइज एवं दक्षिणी हेमीस्फेयर पर क्लॉकवाइज होता है। इसे लो-एरिया-स्टोर्म भी कहते है। इसमें उच्च तापमान, नमी वाली हवा और बादलों से घिरा हुआ आसमान होता है।

चक्रवात दो प्रकार का होता है ट्रोपिकल और टेम्परेट चक्रवात। ट्रोपिकल चक्रवात हेमीस्फेयर में 5° से 30° होता है। ये हॉरीजेंटल लगभग 80 किमी से 300 किमी (डायामीटर) तक फैलता है और वर्टीकली 15 से 16 किमी तक फैलता है। इसकी गति 32 किमी से 120 किमी प्रति घण्टा होती है। इसे विभिन्न नामों से संसार के विभिन्न स्थानों पर जाना जाता है जैसे कैरेबियन सी (यूएसए, मैक्सिको, क्यूबा आदि) में हुरिकेन, दक्षिणी चाईना सी में ताईफून, आस्ट्रेलिया में विली-विलीज, जापान में टैफू और भारतीय समुद्र में साइक्लॉन। ट्रोपिकल चक्रवात विनाशकारी प्रकृति के होते है। टेम्परेट चक्रवात मिड लैटीट्यूट में पाया जाता है जो, हेमीस्फेयर में 35° से 60° होता है। टैम्परेट साइक्लॉन का डायमीटर 1000 से 2000 किमीं के बीच होता है और इसकी एवरेज गति 40 किमी प्रति घण्टा होती है।

तेज बारिश

तेज बारिश नदियों, तालाबों या पोखरों की सतह को काफी ऊँचा कर देती है। यदि जल निकासी उचित न हो तो उफान की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जुलाई 2005 में मुम्बई में जल प्लावन की स्थिति इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है, जो यह दर्शाता है कि तेज बारिश का प्रभाव आपदा पर पड़ता है। इस तेज बारिश लगभग 750 लोगों की जान गयी और शहर का क्रिया कलाप कई दिनों तक ठप्प रहा। जब पानी का स्तर नदियों या बांधों से ऊचा हो जाता है तब पानी नदियों से बाहर आ जाता है और बाढ़ का रूप ले लेता है। जब इसकी दर 4 मिमी/घण्टे से 50 मिमी/घण्टे के बीच होता है तो इसे बहुत तेज बारिश होना कहते हैं और जब इसकी दर 50 मिमी/घण्टे होती है तो इसे भयानक बारिश कहते हैं।

गर्म हवा (लू)

लू का कोई प्राकृतिक परिभाषा नही है किन्तु सामान्य भाषा में '' लू गर्म हवाओं का वह समय है जो नमी उत्पन्न करता है।'' यह क्षेत्र के मौसम के प्रभाव के अनुसार होता है। यह किसी देश के रीजन में प्रकृति एवं बदलाव में सामान्य मौसम से सम्बन्धित होता है। गर्म क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए यह सामान्य किन्तु ठण्डे क्षेत्रों में रहने वाले लोगो के लिए गर्म हवा (लू) के रूप में होता है। यह फसलों के क्षरण, हाइपरथर्मिया (लू के थपेड़ों) से होने वाली हजारों मृत्यु, कार्डीवैस्कुलर समस्यायें और पंखों, कूलरों और एयर कण्डीशनरों के चलने से उत्पन्न विद्युत संकट पर प्रभाव डालता है।

गर्म हवाओं से ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों पर क्षति का ज्यादा प्रभाव पड़ता है। गर्म वातावरण के कारण स्वास्थ्य समस्याओं में भी वृद्धि होती है, जिसमें मुख्य रूप से रेस्पिरेटरी कठिनाईयां है, जो शहरी क्षेत्रों में वातावरण में व्याप्त प्रदूषण से होती है। यहाँ भवन पक्की इंटों तथा सड़के डामर व कंक्रीट से बनती है, डामरकंक्रीट

देर तक गर्मी में रहने के कारण काफी गर्म हो जाते है और रात में यह वातावरण को गर्म करते है। शहरी क्षेत्र का यह रात्रि का गर्म वातावरण ''अर्बन हीट आईलैण्ड इफेक्ट'' कहलाता है।

सूखा

भारत में सूखा मानसून के समय पर न आने के कारण होता है। मानसून न आने के कारण या कभी-कभी मानसून कई सालों तक नही आ पाता, जिसके कारण पानी के अभाव में भूमि का स्तर सूख जाता है। सूखा उत्पन्न करने में वातावरण का भी अत्यधिक कारण होता है। अत्यधिक गर्म वातावरण एवं पानी न होने के कारण सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। सूखा के कारण धरती में जल स्तर काफी नीचे अथवा काफी कम हो जाता है। भारत में मानसून का अन्तराल समय पर न होने के कारण देश के कई क्षेत्रों में अत्यधिक सूखा पडने लगा है। मानसून के प्रभावित होने का मुख्य कारण है आबादी का बढ़ना जिससे वन प्रदेशों को धीरे-धीरे काट कर लोगों के रहने के लिए स्थान बनाया जा रहा है। इसके कारण हरे वृक्ष काटे जा रहे है। इसके साथ ही वातावरण में व्याप्त प्रदूषण भी मानसून को प्रभावित करता है। सूखा प्रभावित क्षेत्रों के इकोसिस्टम एवं कृषि पर बहुत प्रभाव डालता है। इस लिए सूखा स्थानीय वित्तीय संतुलन को गड़बड़ कर देता है। यह फसलों की पैदावर, जंगल में आग लगना, इण्डस्ट्री के उपयोगार्थ एकत्र किये जाने वाले पानी में कमी, धूल, रेगिस्तानी क्षेत्रों में वृद्धि, डिहाइडे"सन आदि को उत्पन्न करता है।

11.4 आपदा के शुरुआत की गति

आपदा की शुरूआत की गति दो प्रकार की होती है- धीमी शुरूआत वाली आपदा एवं तीव्र शुरूआत वाली आपदा।

15.4.1 धीमी शुरूआत वाली आपदा - वह आपदा जो विकास प्रतिक्रियाओं के साथ प्रकट होती है। जोखिम को अनेक दिनों, महीनों या वर्षो तक एक सतत दबाव के रूप में महसूस किया जा सकता है। अकाल, पर्यावरणीय क्षरण, कीट जंतुबाधा, सूखा इसके कुछ उदाहरण है।

15.4.2 तीव्र शुरूआत वाली आपदा- वह आपदा जो एक तात्कालिक आधात के कारण प्रवर्तित होती है। इस आपदा का प्रभाव मध्यावधि या दीर्घावधि के दौरान प्रकट हो सकता है। भूकम्प चक्रवात, बाढ़, ज्वालामुखी का फटना इसके कुछ उदाहरण हैं|

आपदा से होने वाली क्षति के आधार पर इन्हें पुनः दो प्रकार से चिन्हित किया जा सकता है- (1)प्रमुख, (2)गौण /अप्रमुख।

आपदा	प्रमुख	गौण
प्राकृतिक	• भूकंप • बाढ़ • चक्रवात • सूखा	• अतिवृष्टि • शीतलहर • धूलभरी आंधी • ओल पात
मानव जनित आपदाएं	• आगजनी • महामारी • पेड़ों का कटाव	• सड़क एवं रेल दुर्घटना • दूषित एवं विषाक्त भोजन • भीड़भाड़ वाले सार्वजनिक स्थानों में भगदड़

	• रासायनिक प्रदूषण	• त्योहारों पर दुर्घटना • साम्प्रदायिक या जातीय दंगा • युद्ध • औद्योगिक दुर्घटना • बाँध , कारखाना आदि के निर्माण कार्य से लोगों का विस्थापन

11.5 आपदा के मुख्य घटक

जोखिमो, अति संवेदनशीलता की स्थितियों और खतरे के सम्भावित नकारात्मक परिणामों को कम करने की अपर्याप्त क्षमता के परिणामस्वरूप ही आपदा प्रकट होती है।

जोखिम एक संभावित क्षतिदायक भौतिक घटना/अद्भुद घटना/मानव गतिविधि है, जिसके कारण मानव अथवा पशु-पक्षी की मृत्यु या घायल होना, सम्पत्ति की क्षति, सामाजिक एवं आर्थिक एवं पर्यावरण में व्यवधान/क्षय होना सम्भव है।

11.5.1 अति संवेदनशीलता (Most sensitivity)

जोखिम के प्रभाव के प्रति एक समुदाय की भौतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरण में घनात्मक परिवर्तन को अति संवेदनशीलता कहते हैं।

11.5.2 क्षमता (Capicity)

क्षमता एक समुदाय समाज या संगठन की वैसी सभी शक्तियों एवं संसाधनों का संयोजन है, जो जोखिम के स्तर या आपदा के प्रभाव को कम कर सकता है।

11.5.3 जोखिम एवं उसका वर्गीकरण (Risk and its clasification)

जोखिम एक खतरनाक स्थिति या घटना है जिससे जीवन या सम्पत्ति या पर्यावरण को क्षति पहुँचने की सम्भावना होती है। जोखिम को उसकी उत्पति के आधार पर दो शीर्षकों में बुनियादी तौर पर वर्गीकृत किया जा सकता है-

- प्राकृतिक जोखिम (वायु मण्डलीय भू वैज्ञानिक या जैविक उत्पति वाले जोखिम)।
- अप्राकृतिक जोखिम (मानव निर्मित या औद्योगिकीय वाले जोखिम)।

आबादी रहित क्षेत्र में भारी भूकम्प प्रकृति की एक अद्भुद घटना है परन्तु एक जोखिम नही। यह केवल तभी होता है जब प्रकृति की अद्भुत घटनाओं या मानव निर्मित पर्यावरण या कमजोर क्षेत्र के साथ अंतःक्रिया होती है तथा व्यापक नुक्सान होता है।

परम्परागत रूप से जोखिम को निम्नलिखित समीकरण द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है:-

खतरा = जोखिम × अति संवेदनशीलता (-) क्षमता

11.5.4 आपदा जोखिम (Risk Disaster)

आपदा जोखिम नुक्शानदायक परिणामों या प्रत्याशित जानमाल एवं पर्यावरण तथा आर्थिक गतिविधियों में क्षति की सम्भावना को कहते है, जिसकी उत्तपत्ति प्राकृतिक या मानवजनित जोखिमों एवं अतिसंवेदनशील परिस्थितियों की अन्रतक्रियाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है।

11.5.5 आपदा जोखिम न्यूनीकरण

आपदा जोखिम न्यूनीकरण एक ऐसा दीर्घकालिक विकास के लिए प्रयास है, जिससे समुदाय के अतिसंवेदनशील जोखिम एवं आपदा को प्रकट करने वाले अव्यवों को कम करने हेतु नीतियों, राजनीतियों एवं पद्धतियों में समुदाय की मदद से धनात्मक प्रयास किया जा सके, जिससे आपदा के प्रति खतरा कम किया जाये तथा आपदा के बाद जानमाल की क्षति को कम से कम किया जा सके। इस तरह दीघ्रकालीन विकास सम्भव हो सकता है। इस दीघ्रकालिक विकास के वृहद परिप्रेक्ष्य में पूरे समाज में अति संवेदनशीलताओं, जोखिमों तथा आपदा के प्रकट होने को न्यूनीकरण करने हेतु नीतियों, राजनीतियों एवं पद्धतियों का सुव्यवस्थित विकास एवं क्रियान्वयन करना है।

11.6 जोखिम असुरक्षा विश्लेषण और खतरे का मूल्यांकन

जोखिम असुरक्षा विश्लेषण और खतरे का मूल्यांकन का उद्देश्य समुदाय पर पड़ने वाले जोखिम के सम्बन्ध में चर्चा करने एवं उसकी सीमा क्या है इस सम्बन्ध में जोखिम असुरक्षा विश्लेषण और खतरे का मूल्यांकन कराने की आवश्यकता होती है।

11.6.1 जोखिम असुरक्षा विश्लेषण

जब आप जोखिम असुरक्षा विश्लेषण कराते है तब आपको कुण कोणों से भवनों के अंश, उनके ढाँचे और जोखिम से असुरक्षित क्षेत्रों के सम्बन्ध में वर्तमान जानकारिया प्राप्त होती है। एक कम्यूनिटी ग्रोथ प्लान या फलैट मैप पर सम्मिलित जोखिम मानचित्र प्राकृतिक जोखिम से असुरक्षित क्षेत्रों को ज्ञात करने में सहायक होगा। असुरक्षा खतरे के समय सुविधाओं और किन कोणों से उसे प्रभावित किया जा सकता है, की पहचान कराती है, जिस प्रकार वे चारों ओर के ढाँचे पर प्रभाव डालती हों।

जोखिम असुरक्षा विश्लेषण का कारण

- बने/प्राकृतिक वातावरण के खतरे की पहचान
- रिस्पोंस/रिकवर की क्षमता का निर्धारण
- न्यूनीकरण प्रभाव की प्राथमिकता
- औद्योगिकीय जोखिम का डाटा उपलब्ध कराना

11.6.2 खतरे का मूल्यांकन

खतरा जोखिम का एक सूचीबद्ध प्रभाव है जो समुदाय के लोगों, कार्यो, सुविधाओं और ढाचों पर प्रभाव डालता है। जोखिम के विपरीत प्रभाव के कारण दुर्घटनायें और नुक्शान होता है।

खतरे के मूल्यांकन का कारण

- उन जोखिमों की पहचान जिसका प्रभाव राज्यों और समुदायों पर सबसे अधिक होता है,
- ये जोखिम फिजिकल, सोसल एवं इकोनोमिक संसाधनों पर क्या प्रभाव डाल सकते है की जानकारी,
- इन जोखिमों के कारण सबसे अधिक क्षति वाले क्षेत्रों की पहचान,
- क्षति का आंकलन एवं भविष्य में न्यूनीकरण प्रोजेक्ट द्वारा सम्भावित खर्चों से बचना।

आपदा के खतरे का मूल्यांकन

जोखिम	समय	प्रभाव
बाढ़/जल प्लवन	जुलाई से सितम्बर	फसल, लोगों व पशुओं के जानमाल एवं बुनियादी संरचानाओं की क्षति
भूकम्प	जनवरीसे दिसम्बर	फसल, लोगों व पशुओं के जानमाल एवं बुनियादी संरचानाओं की क्षति
गर्म हवा (लू)	अप्रैल से जुलाई	फसल, लोगों व पशुओं के जानमाल एवं बुनियादी संरचानाओं की क्षति
चक्रवात	मई से दिसम्बर	फसल, लोगों व पशुओं के जानमाल एवं बुनियादी संरचानाओं की क्षति
महामारी	जून से सितम्बर	लोगों व पशुओं के जान की क्षति
आसमान से तड़ित बिजली	अप्रैल से दिसम्बर	लोगों व पशुओं के जानमाल एवं बुनियादी संरचानाओं की क्षति
आग	मार्च से जून	लोगों व पशुओं के जानमाल, सम्पत्यिों एवं बुनियादी संरचानाओं की क्षति
ठण्डी हवा	दिसम्बरसे जनवरी	लोगों व पशुओं के जान की क्षति
इलेक्टोक्सन	जनवरीसे दिसम्बर	लोगों, जानवरों और सम्पत्तियों की क्षति
सड़क दुर्घटनायें	जनवरीसे दिसम्बर	लोगों, जानवरों और सम्पत्तियों की क्षति

11.7 आपदा का प्रभाव

प्राकृतिक आपदा अचानक ही आती हैं, जो अपनी क्षमता, जटिलता एवं बारम्बारता के कारण अत्यधिक जन-धन की क्षति का कारण बनती है। जनसंख्या वृद्धि, निवास हेतु भूमि की कमी के कारण लोग उन स्थानों पर भी रहने लगे हैं जो क्षेत्र आपदा के प्रति अत्यधिक संवेदनशील क्षेत्र है। भारत में प्रायः बाढ़ का प्रकोप सर्वाधिक रहता है, जिससे सर्वाधिक जन-धन की हानि होती है। भूकम्प दूसरी अत्यधिक भयानक व क्षति पहुॅचाने वाली आपदा है, जिसके कारण भी सर्वाधिक जन-धन की हानि होती है। यहाँ के कुछ भागों में सूखे का प्रकोप भी रहता है। कई-कई क्षेत्रों में लगातार कई वर्षो तक सूखा पड़ने से गम्भीर पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। यह जन-धन की हानि में चक्रवात की भी मुख्य भूमिका रहती है, जिससे लोगों की जान की हानि तो होती ही है, अरबों रूपयों की सम्पत्ति का भी नुकसान होता है। विकासशील देशों में आपदाओं के कारण देश की अर्थव्यवस्था, औद्योगिक एवं

कृषि के विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। साथ ही राहत कार्यो के कारण शासन पर भी अतिरिक्त वित्तीय भार पड़ता है।इस प्रकार आपदाओं के निम्न प्रभाव है:-

- आर्थिक प्रभाव।
- सामाजिक प्रभाव।
- राजनैतिक प्रभाव।
- सांस्कृतिक प्रभाव।
- स्वास्थ्य पर प्रभाव।
- पर्यावरण पर प्रभाव।

11.8 आपदा प्रबन्धन

आपदा प्रबन्धन एक विशिष्टि एवं बहुआयामी दृष्टिकोण है जिसके द्वारा पूर्व तथा पश्चात में आपदा के प्रभावों को जो कि किसी विशिष्ट क्षेत्र से सम्बन्धित होता है। से मुकाबला करने का प्रयाय किया जाता है।

वास्तव में आपदा प्रबन्धन, एक राष्ट्र अथवा एक सगठन अथवा एक प्रास्त की व्यापक योजना की ऐ प्रक्रिया है जो कि मानवीय जीवन व सम्पत्ति पर पड़ने वाल प्रभावा से सुरक्षा प्रदान करती है। अप्रत्याशित खतरों और आपदा से और त्वरित रूप से प्रभावित लोगो को सहायता तथा पुनर्वास सम्बन्धी कार्यक्रमों को भी सहायता देती है।

आपदा प्रबन्धन एक भोजना है। जो कि किसी क्षेत्र में होने वाले आपदा कि प्रभावों क्रम करती है और लोगो को सामान्य जीवन धारा में वापस लाने में सहायक होती है।

आपदा प्रबन्धन प्राथमिक रूप से किसी एक सगंठन अथवा राष्ट्र द्वारा लिए गये वे क्षेणीबदृ श्रखंला होती है जो कि अप्रत्याशित अचानक तथा चरम स्तर होने वाले आपदा के से लोगों को बचाना एवं सहायता प्रदान करना है। जिससे कि उपका पुनर्वासन सम्भव हो सकें।

आपदा प्रबन्धन किसी संगठन अथवा राष्ट्र अथवा समाज द्वारा लिया गया एक नियोजित चरण है जिससे आपदा के कारण होने वाले प्रभावों को न्यूनतम करने को प्रयास किया जाता है जिससे कि समाज के लोग वापस सामान्य जीवन धारा के लौट सके और अपना जीवन कर सके।

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर हम निम्नलिखित निष्कर्षो पर पहुच सकते है।

1. आपदा प्रबन्धन एक व्यापक योजना है जिससे आपदा के प्रभावों को कम करने के लिए चरण बद्ध तरीको को अपनाया जाता है।
2. आपदा प्रबन्धन में जोखिय मुक्त खतरो को कम करने की योजना बनाई जाती है।
3. आपदा प्रबन्धन के द्वारा आपदा प्रभावित क्षेत्रों में त्वरित क्रिया द्वारा बचाव तथा सहायता सम्बन्धी उपयों को अपनाया जाता है।
4. आपदा प्रबन्धन मुख्य रूप से एक क्रियात्मक योजना है जो कि पुनर्वास पर बल देता है।

11.8.1 आपदा प्रबन्धन के सिद्धान्त

संघीय आकस्मिक प्रबन्धन संस्था (फेमा) ने आपका प्रबन्धन से सम्बधित सिद्धान्तों का उल्लेख किया है जो कि निम्नवत् है।

1. आपदा प्रबन्धन व्यापक होना चाहिए,
2. आपदा प्रबन्धन प्रगतिशील होना चाहिए,
3. आपदा प्रबन्धन जोखिम को पहचानने आकलन तथा प्रभावों का विश्लेषण करने वाला होना चाहिए,
4. आपदा प्रबन्धन एकीकृत होना चाहिए,
5. आपदा प्रबन्धन सहयोगत्क होना चाहिए,
6. आपदा प्रबन्धन के लोचशीलता होनी चाहिए,
7. आपदा प्रबन्धन व्यावसायिक होना चाहिए, एवं
8. आपदा प्रबन्धन में समन्य होना चाहिए।

11.8.2 आपदा प्रबन्धन की प्रणालियां

आपदा प्रबन्धन की विधियों को दो प्रमुख भागो में विभाजित किया जा सकता है। जो कि निम्नवत है।

- पूर्व आपदा चरण
- पश्चात आपदा चरण

पूर्व आपदा चरण में तीन प्रमुख प्रविधियों को अपनाया जाता है जिसे PMP के नाम से जाना जाता है। यहाँ पर P से तात्पर्य Preparedness अर्थात तैयारी से है, M से तात्पर्य Mitigition अर्थात अल्पीकरण से तथा P से तात्पर्य Prevention अर्थात रोकथाम से है। दूसरे शब्दों में मानव जीवन पर पड़ने वाले आपदा के नकरात्मक प्रभावों को न्यूनतम करना है। जिससे प्रारम्भ के दोनो चरण अर्पात तैयारी व अल्पीकरण आपदा द्वारा होने वाली क्षति को रोकने की पूर्व अनिवार्यताए है।

पश्चात आपदा चरण में तीन R प्रविधियों को अपनाया जाता है। जिससे प्रथम R से तात्पर्य Relif अर्थात सहायता से है। द्वितीय R से तात्पर्य Recovery अर्थात पुर्नस्थापना से है, तथा अन्तिम R से तात्पर्य Rehabilitation अर्थात पुर्नवास से है।

इस प्रकार पश्चात आपदा चरण को प्रक्रिया में राहत सम्बन्धी कार्य पुर्नस्थापना तथा पूर्नवास सम्बन्धी कार्य किए जाते है जिससे कि आपदा को कम किया जा सके और उसका प्रबन्धन उचित तरीके से हो सके।

11.9 आपदा से बचने के उपाय

आपदा के प्रभावों को कम करने एवं बचने के उपायों को कुछ उदाहरणों के साथ निम्नवत् समझाया गया है:-

15.9.1 अग्नि सुरक्षा

- घर की आपदा प्रबन्धन योजना बनाएं तथा समय-समय पर उसका पूर्वाभ्यास करें।

- घर में बीड़ी, सिगरेट आदि का प्रयोग न करें।
- बच्चों की पहुंच से माचिस, स्टोव, पटाखे, तेजाब आदि दूर रखें।
- भोजन बनाते समय सूती एवं फिट कपड़े पहनें।
- जलते हुए स्टोव व लालटेन में मिट्टी का तेल न भरें।
- पहने हुए कपड़ों का प्रयोग चूल्हें से बरतन उतारने के लिए न करें।
- भोजन बनाने के बाद चूल्हें, स्टोव या अंगीठी को तत्काल बुझा दें।
- गैस सिलिण्डर को सदैव खड़ा रखें तथा रात में सोने से पूर्व रेगुलेटर अवश्य बन्द करें।
- गैस की रबर पाइप हमेशा आईएसआई मार्का ही प्रयोग करें एवं हर 6 महीने पर बदल लें।
- गैस की लीकेज का आभास होने पर सभी आग बुझा दें। सभी खिड़की दरवाजे खोल दें व गैस एजेन्सी को तत्काल सूचित करें।
- यदि आपके कपड़ों में आग लग जाए तो भागें नहीं। जमीन पर लेटकर या शरीर पर कम्बल लपेटकर आग बुझाने की कोशिश करें।
- घर के बाहर मार्ग को खुला रखें जिससे आवागमन बाधित न हो।
- यदि सम्भव हो तो घर में फायर एलार्म तथा घरेलू अग्निशमन यंत्र लगवाएं।
- एक ही प्लग में कई विद्युत उपकरण न लगाएं।
- घर की वायरिंग को समय-समय पर चेक कराएं।
- घर में पानी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रखें।
- रसोई की छत को यदि फूस से बनवाएं तो उस पर अन्दर से मिटटी का लेप लगा दें।
- गांव के तालाब या कुंए तक फायर ब्रिगेड के पहुंचने का मार्ग बनाएं रखें।
- यदि किसी आयोजन के लिए पाण्डाल लगाएं तो उसके चारों ओर कम से कम 5 मीटर खुला स्थान छोडें।
- पाण्डाल की ऊंचाई 3 मीटर से अधिक रखें।
- पाण्डाल से बाहर निकलने के लिए 5 मीटर या उससे चैड़ा रास्ता रखें।
- पाण्डाल में कुर्सियां कम मात्रा में व व्यवस्थित ढंग से लगाएं।
- पाण्डाल के पास पानी की पर्याप्त व्यवस्था रखें।
- अस्थायी रसोईघर को पाण्डाल से 200 मीटर से दूर बनाएं।

- विद्युत ट्रांसफार्मर, रेलवे लाइन व खलिहान के आस-पास आग न जलाएं।
- बिजली के उपकरणोंमें आग लगने पर उसे पानी से बुझाने का प्रयास न करे।
- बिना प्लग के तार बिजली के साकेट में न लगाएं।

आपातकालीन सहायता के लिए फोन करें

1. अग्निशमन सहायता 101
2. पुलिस सहायता 100
3. जिला आपदा नियंत्रण कक्ष 1077

फोन पर सूचना देते समय घटनास्थल का सही पता बताएं व घटनास्थल पर पानी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है कि नहीं इसकी जानकारी अवश्य दें।

11.9.2 बाढ़ से सुरक्षा

बाढ़ से सुरक्षा के लिए बाढ़ से पूर्व तथा बाढ़ के दौरान् निम्नलिखित उपायों को अपनाया जाना चाहिए:-

बाढ़ के पूर्व

- अपने परिवार व गांव के लिए एक आपदा प्रबन्धन योजना बनाएं। समय-समय पर इसका पूर्वाभ्यास भी करें।
- बारिश के मौसम में रेडियो या टी0वी से प्रसारित सूचना व चेतावनी सुने और उनका अनुपालन करें।
- अफवाहों पर ध्यान न दें और घबराएं नहीं।
- अपना आपदा सहायता किट तैयार रखें।
- आवश्यक सामग्री एवं मवेशियों को सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दें।
- नाव की मरम्मत करवा लें।
- मवेशियों के लिए चारा इकट्ठा कर लें।

बाढ़ के दौरान

- उबला पानी पियं।
- भोजन ढककर रखें। हल्का भोजन करें।
- बच्चों को भूखा न रहने दें।
- ब्लीचिंग पाउडर से आस-पास की जगह साफ रखें।
- राहत सामग्री वितरित करने में प्रशासन/संस्थाओं का सहयोग करें।

- अगर घर खाली करना हो तो अपना आपदा सहायता किट अवश्य साथ ले जाएं।
- घर खाली करने के पूर्व कीमती वस्तुएं व जरूरी कागज को प्लास्टिक के थैलों में लपेटकर ऊंचे स्थान पर रखें।
- नंगे पांव बाहर न निकलें, बच्चों को नंगे पाव न निकलने दें।
- घर खाली करते समय लैटरिन में बालू से भरी बोरियां डाल दें और किसी भी प्रकार के छेद या नाली को बन्द कर दे।
- यदि पानी की गहराई पता न हो तो उसे पार करने की कोशिश न करें। यदि पार करना आवश्यक हो तो एक डण्डा साथ रखें जिससे गहराई की जानकारी हो सके।
- बच्चों को बाढ़ के पानी में मत खेलने दें।
- सांपों से बचकर रहें।

11.9.3 भूकम्प

भूकम्प से बचाव का सर्वश्रेष्ठ उपाय है कि घर को भूकम्परोधी तकनीकी से बनावाएं। इसके लिए अभियन्ता एवं प्रशिक्षित राजमिस्त्री की सेवा लें। ऐसे घर बनावाने में सामान्य घर की अपेक्षा केवल 10 से 12 प्रतिशत अधिक लागत आती है। यदि आपका घर पूर्व से बना है तो उसमें भूकम्परोधी सुधार कार्य (रेट्रोफिटिंग) करवाएं।

- अपने परिवार एवं नगर/गांव के लिए एक आपदा प्रबन्धन योजना बनाएं। समय-समय पर इसका पूर्वाभ्यास भी करें।
- अपना आपदा सहायता किट हमेशा तैयार रखें व उसे तय स्थान पर रखें। किट में सूखा भोजन जैसे चूड़ा, गुड़, लाई आदि पानी की बोतल, टार्च, रेडिया, प्राथमिक उपचार के लिए दवा, रूई, पट्टी कुछ जरूरी कपड़े, मकान या सम्पत्ति के कागजात, कुछ रूपये आदि रखें।
- घर के बाहर ऐसा स्थल चिन्हित करें जो सुरक्षित हो। सभी को उस स्थल के बारे में बताएं।
- घर के अन्दर सुरक्षित स्थलों की पहचान करें। बाहर न निकल पाने की स्थिति में इन स्थलों पर रूकें।
- घर में आवश्यक फोन नम्बर की सूची ऐसे स्थान पर चिपकाए जहां आसानी से पढ़ी जा सके।
- परिवार के सभी सदस्यों को खोज-बचाव एवं प्राथमिक चिकित्सा को प्रशिक्षण दिलवाएं।

भूकम्प के दौरान

- कभी-कभी भूकम्प आने के कुछ सेकण्ड पूर्व हल्के-हल्के झटके आते है। ये कुछ सेकण्ड आपको सुरक्षित जगह पहुंचने का मौका देते है।
- भूकम्प के दौरान पलंग, तख्त या मजबूत फर्नीचर के नीचे चले जाएं। संतुलन के लिये फर्नीचर को कसकर पकडे रहें।

- यदि पलंग तख्त या मजबूत फर्नीचर न हो तो अपने सिर को सुरक्षित रखने के लिये उसपर दरी या ताकिया रखें।
- भारी वस्तुओं जैसे अलमारी, टी0वी0 आदि को दीवार से बांधकर रखें ।
- दीवारों के जोड़ (कोने) मजबूत होते है। कोने में खडे होकर अपने सिर को ढककर रखें।
- मकान की छत पर मत जाए। बाहर निकलने की कोशिश करे। जहां पड़े, पोल,तार आदि न हो। वाहन के अन्दर ही बैठे रहें।

भूकम्प के बाद

- भूकम्प से क्षतिग्रस्त भवनों में प्रवेश न करें।
- रोशनी के लिये मोमबत्ती या लालटेन की बजाय टार्च को प्रयोग करें।
- रेडियो पर प्रसारित होने वाले सन्देश सुने व उसका पालन करें।
- यदि आप भवन में फंस गये है तो जोर-जोर से आवाज लगाकर मदद मांगे।
- यदि आप सुरक्षित है तो दूसरों की मदद करे।
- गैस सिलिण्डर या विद्युत उपकराणों को चालू करने की काशिश न करें।
- यदि पानी के नल, टंकी या पाइप में कोई क्षति हुई है तो उसका पानी न पियें।
- बिजली के मेन स्विच को तत्काल बन्द कर दें।
- बेसिक फोन को प्रयोग न करें। मोबाइल का प्रयोग करें।
- वाहन से पुल न पार करें। भूकम्प से क्षतिग्रस्त पुल कभी भी टूट सकता है।

यह हमेशा याद रखें कि भूकम्प किसी को मारता नही है, बल्कि कमजोर घरों के गिरने के कारण लोग मरते है। अतः यह आवश्यक है कि:-

- घर को भूकम्परोधी सुधार कार्य करवाएं।
- भूकम्प के बाद तुरन्त अपने घर में प्रवेश न करें जब तक कि चारों ओर से उसका विधिवत परीक्षण न कर लें।
- ज्यादा क्षति बहुमंजिली इमारतों को होती है। अतः कोशिश करें कि अपना मकान एक या दो मंजिल का ही बनवाएं।
- मकान में सबसे पहले सीढ़ियां ही गिरती है। अतः अन्दर या बाहर जाते समय सावधानी बरतें।
- अपने घर में तभी प्रवेश करें जब अधिकारी या खोज-बचाव दल के लोग कहें।

11.11 सारांश

सारांश के रूप में इस अध्याय में आपदा, आपदा से होने वाले प्रभावों एवं आपदा के प्रभाव को प्रबन्धन के द्वारा किस प्रकार से रोका जा सकता है कि भूमिका को स्पष्ट किया गया है।

11.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) आपदा से आप क्या समझते हैं?

(2) आपदा प्रबन्धन की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।

(3) आपदा के प्रकारों को स्पष्ट कीजिए।

(4) प्राकृतिक आपदाओं को स्पष्ट कीजिए।

(5) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(अ) आपदा से बचने के उपाय

(ब) जोखिम असुरक्षा विश्लेषण

(स) चक्रवात

(द) भूकम्प

11.13 सन्दर्भ पुस्तकें

- Bhartiya, A. K., Paryavaran, New Royal Book Company, Lucknow, Published under ASIHSS Programme (11th FYP), UGC, New Delhi.
- Kaushik, A., and Kaushik, C. P. Paryavaran Adhyan, NAIP, New Delhi, 2005.
- Singh, S. and Singh, J. Disaster Management, Pravalika Publications, Allahabad, 2013.
- Bharucha, I. Paryavaran Addhyan, Orient Laongman Pvt. Ltd., Delhi, 2006.

इकाई-12

लैंगिक असमानता एवं लिंग आधारित हिंसा

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 लैंगिक असमानता

12.3 महिला साक्षरता एवं विकास

12.4 महिला अधिकारिता एवं कल्याण

12.5 सूचना का अधिकार और महिला सशक्तीकरण

12.6 महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता

12.7 महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता

12.8 कार्यरत महिलाओं के लिए कानूनी व्यवस्था

12.9 लैंगिक भेदभाव और 12वीं योजना

12.10 लिंग आधारित हिंसा

12.11 सारांश

12.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.13 सन्दर्भ पुस्तकें

12.0 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय का के अध्ययन के पश्चात आप -

1. लैंगिक असमानता एवं लिंग आधारित हिंसा के विषय में जान सकेंगे।
2. महिलाओं से सम्बंधित सामाजिक तथा कानूनी मुद्दों को समझ सकेंगे |

12.1 प्रस्तावना

सैद्धातिंक आधार पर यदि देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि महिलाओ को पुरूषों के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समानता के अवसर प्रदान किए गए है तथा उन्हें समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है परन्तु व्यवहारिकता कुछ और

ही है। इस अध्याय में महिलाओ के साथ किए जाने वाले लैंगिक विभेदों एवं लिंग आधारित हिंसा के प्रकारों का समझाया गया है। भारत में लौंगिक असमानता एवं लिंग आधारित हिंसा सर्वव्यापी हैं। जैसे जैसे समाज का विकास हो रहा है महिला एवं पुरूषों में सामाजिक तथा आर्थिक स्तर पर यह असमानता और बढ़ती ही जा रही है। आजादी के बाद सवैंधानिक प्रावधानों तथा सरकारी प्रयासों के बावजूद भी यह असमानता अभी भी बरकरार है। शायद सामाजिक सांस्कृतिक जड़ता और पुरूष सत्तात्मक समाज की मनोवृत्तियों के चलते अभी इनको व्यवहार की जमीन नहीं मिल सकी है।

12.2 लैंगिक असमानता

भारत में लैंगिक असमानता की जड़े काफी गहरी है। इस असमानता का इतिहास वैदिक युग से ही देखा जा सकता है। उसके पश्चात महिला एवं पुरूषों में सामाजिक तथा आर्थिक स्तर पर यह असमानता बढ़ती ही रही। आजादी के बाद सवैंधानिक प्रावधानों तथा सरकारी प्रयासों के बावजूद यह असमानता अभी भी बरकरार है। आर्थिक क्षेत्र में भारत भले ही तेजी से बढ़ रहे देशों में शमिल हो गया हो और विश्व की तीसरी अर्थव्यवस्था (पीपीपी के मामले में) बन गई हो लेकिन यहां। लैगिक समानता का स्तर अभी भी दयनीय है। लैगिक असमानता से सम्बन्धित कुछ विभिन्न मुद्दों का विवेचन निम्नवत् किया गया है:-

12.2.1 कन्या भ्रूण हत्या

भारत में लड़कियों के साथ दोयम दर्जे के व्यवहार का एक अहम उदाहरण कन्या भ्रूण हत्या के रूप में देखने को मिलता है। इसके तहत उन्हें मां की कोख में ही उन्हें जीवन के अधिकार से बंचित कर दिया जाता है। तमाम कानूनी प्रावधानों के बावजूद इससे की आम दूर-दूर तक नहीं दिखती । देश की जनगणना रिपोर्ट 2011 इस बारे में और चिंताजनक तथ्य पेश करती है। राजधानी दिल्ली और इससे सटे हरियाणा, पंजाब ,राजस्थान सहित कई राज्यों में बाल लिंगानुपात चिंताजनक स्थिति तक पहुंच गया है। वर्ष 2011 में छह वर्ष तक के बच्चों का लिंगानुपात वर्ष 2001 के 927 के मुकाबले 914 हो गया है। हालकि प्रति 1000 पुरूषों पर महिलाओं की संख्या वर्ष 2001 के 933 के मुकाबले 2011 में 940 हो गई है, लेकिन बच्चों के लिंगनुपात में कमी आने की वजह से 2021 की जनगणना में यह पुनः घट जाएगी। हालाकि लड़कियों के प्रति लोगों का नजरिया विगत कुछ वर्षो में बदला है, लेकिन अब भी यह समाज के सामने एक बड़ी चुनौती है। शहरी व शिक्षित वर्ग में कन्या भ्रूण हत्या की बड़ी दर यह बताता है कि शिक्षा के बावजूद वंश परपरा और दहेज को लेकर की। मानसिकता बदली नहीं है। भ्रूण हत्या के खिलाफ प्री नेटल तकनीक (पीएनडीटी) एक्ट सहित अन्य कानून होने के इस पर रोक नहीं लग पाना अचरज की बात है। इसका मुख्य प्रशासिनक शिधिलता तथा नीतियों का सही तरीके से अनुपालन पाना है। हाल ही में प्रकाशित केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन की रिपोर्ट वर्ष 2001-2005 के दौरान करीब 6,82,000 कन्या भ्रुण हत्याएं लिहाज से देखें तो इन चार सालों में रोजाना 1800 से 1900 को जन्म लेने से पहले ही दफन कर दिया गया। समाज को में जीने को सही तस्वीर दिखाने के लिए सीएसओं की यह पर्याप्त है। सरकार की लाख कोशिशों के बावजमद समाज में कन्या की घटनाएं तेजी से बढ़ रही है। गैरकानूनी और छुपे तौर पर में तो जिस तादाद में कन्या भूरण हत्याएं हो रही है। उस पर की रिपोर्ट केन्द्र सरकार के दावों को सिरे से खारिज करती है। तर्क में कहा गया है। कि 0-6 साल के बच्चों का लिंग अनुपात कन्या भूरण के गर्भपात के कारण ही प्रभावित नहीं हुआ है बल्कि इसकी वजह कन्या मृत्यु दर का अधिक होना भी है। उल्लेखनीय है कि में 0-6 साल के बच्चों का लिगंनुपात 962 था, जो 1991 में भटकर और 2001 में 927 रह गया 1995 में बने जन्म पूर्व नैदानिक के अनुसार गर्भ में पल रहे बच्चे का लिंग परीक्षण गैरकानूनी है। इसके बावजूद इसका उल्लंघन सबसे अधिक होता है। सरकार ने 2016-17 बच्चों का लिंग अनुपात बढ़ाकर 950 का लक्ष्य रखा है। देश के 648 में जिलों में बच्चों का

लिंगानुपात कम है। यह स्थिति देश के बाल अनुपात में क्षेत्रीय असमानता को यूनिसेफ के अनुसार 10 महिलाएं विश्व की जनसंख्या से ही गई है। जो गहन चिंता का विषय के इस विलोपन के पीछे कन्या भ्रूण हत्या ही मुख्य कारण है।

12.2.2 कन्या भ्रूण हत्या में स्थानिक भिन्नता

भारत में कन्या भ्रूण हत्या में क्षेत्रीय एवं स्थानीय स्तर पर काफी विभिन्नता देखने को मिलती है। एक ओर जहां पूर्वी और उत्तर पश्चिमी राज्यों में इस तरह की घटनाएं ज्यादा दिखाई पड़ती है, वहीं पश्चिमी, उत्तरी, उत्तरी-पूर्वी तथा दक्षिणी राज्यों में इस तरह की घटनाएं कम देखने में आती है। वर्ष 2001 में देश में 0-6 वर्ष के बच्चों का लिंगानुपात जहां प्रति 1000 पर 927 था, वहीं 2011 की जनगणना में यह गिरकर 914 पर जहां पहुंचा। यह आजादी के बाद सबसे कम बाल लिंगानुपात हैं। हालांकि पंजाब, हरियाण, हिमांचल प्रदेश, गुजरात, मिजोरम, तथा अंडमान निकोबार द्धीप समूह में वर्ष 2001 के मुकाबले 2011 में बाल लिंगानुपात में वृद्धि दर्ज की गई है। शेष 27 राज्यों तथा केन्द्रशासित प्रदेशों में यह 2001 के मुकाबले नीचे आ गई है। सभी राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में मिजोरम बाल लिंगानुपात के मामले में नंबर वन पर है। 2011 की जनगणना की अंतरिम रिपोर्ट के अनुसार यहां 0-6 वर्ष के बच्चों में प्रति 1000 लड़कों पर लड़कियों की संख्या 971 है। दूसरे स्थान पर मेघालय है जहां यह अनुपात 970 है। कम लिंगानुपात वाले पंजाब एवं हरियाणा जैसे परंपरागत राज्यों में यद्यपि वर्ष 2001 के मुकाबले 2011 में बाल लिंगानुपात में वृद्धि दर्ज की गई है। लेकिन अभी वह मामले में निचलें पायदान में है। हरियाणा में यह अनुपात 830 तथा पंजाब में 846 है तथा ये दोनों राज्य बाल लिंगानुपात में निचले दो स्थान पर हैं। हरियाणा के झन्झर (774) तथा महेन्द्रगढ़ (778) जिले देश के सबसे कम बाल लिंगानुपात वाले जिले हैं। वहीं हिमांचल प्रदेश के लाहौल एवं स्पीति जिले का बाल लिंगानुपात 1013 है जो पूरे देश में सर्वाधिक हैं। चंडीगढ़, हिमांचल प्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु, मिजोरम एवं आंध्र प्रदेश में वर्ष 2001 के मुकाबले 2011 में शिशु लिंगानुपात में वृद्धि दर्ज की गयी है। शेष सभी राज्यों या केन्द्रशासित प्रदेशों में इसमें गिरावट दर्ज की गई है। जिसमें केरल जैसा राज्य भी शामिल हैं, जहां पूरे देश में स्त्री-पुरूष अनुपात सर्वाधिक है। पांडिचेरी जहां सभी केन्द्र शासित प्रदेशों के मुकाबले स्त्री-पुरूष अनुपात सर्वाधिक हैं, में भी बाल लिंगानुपात में 2001 के मुकाबले 2011 में कमी दर्ज की गई है। यह भविष्य में आनेवाले खतरे का संकेत है। समय रहते यदि इस पर गंभीरतापूर्वक नहीं सोचा गया तो इसके परिणाम काफी भयानक होंगे।

देश में कन्या भ्रूण हत्या को रोकने तथा प्रसव पूर्व लिंग परीक्षण को रोकने के लिए केन्द्र सरकार ने पीएनडीटी (प्रीनेटल डायग्नोस्टिक टेस्ट) अधिनियम पारित किया। इसे 1 जनवरी, 1996 में जम्मू कश्मीर को छोड़कर पूरे भारत में लागू किया गया। यह कानून गर्भ में पल रहे शिशु के लिंग का पता लगाने से रोकता है। यद्यपि जन्म से पूर्व शिशु के अनुवांशिक या उपापचयी संबंधी बीमारियों का पता लगाने या लिंग से संबंधित किसी अनियमितता की पहचान के लिए इस परीक्षण की छूट प्रदान की गयी है। इसके तहत निम्नलिखित प्रावधान किए गए है:-

- जन्म पूर्व लिंग परीक्षण गैरकानूनी घोषित ,
- अनुवांशिक एवं लिंग संबंधी अनियमितता की जांच के लिए किसी पंजीकृत चिकित्सा संस्थान द्वारा एमनियोसेंटेटिस एवं अल्ट्रासोनोग्राफी परीक्षण की छूट,
- प्रसव से पूर्व लिंग के बारे में पता लगाने संबंधी विज्ञापन पर रोक,

- इस अधिनियम के तहत गैर पंजीकृत व्यक्ति की अल्ट्रासाउण्ड मशीन बेचने पर प्रतिबंध,इस कानून का उल्लंघन करने पर दंड का प्रावधान। दोषी व्यक्ति को पांच साल तक की कैद तथा 1 लाख रूपये तक का जुर्माना देने का प्रावधान। इसके अलावा उसका पंजीकरण और लाइसेंस भी रद्द हो जाएगा।

इस अधिनियम के क्रियान्वयन में आ रही बाधाओं को दूर करने और जन्म से पहले लिंग निर्धारण पर प्रतिबंध लगाने के लिए तथा उच्चतम न्यायालय के निर्देशों को ध्यान में रखते हुए इसके नियमों और कानूनों में संशोधन किए गए जो 14 फरवरी 2003 से लागू हैं। इस अधिनियम का क्रियान्वयन जिला स्तर पर उचित अधिकारी करता है। राष्ट्रीय स्तर पर एक निगरानी समिति गठन की गई है, जो समस्या वाले राज्यों का दौरा कर जमीनी हकीकत का पता लगाती है। देश में अधिनियम के क्रियान्वयन को मजबूत बनाने के लिए एक नेशनल सपोर्ट एंड मानीटरिंग सेल (एनएसएमसी) की भी स्थापना की गई है। गर्भधारण और जन्म पूर्व निदानात्मक तकनीकी अधिनियम और तत्संबंधी नियमों को और प्रभावी बनाने के लिए सरकार अधिनियम और नियमों में और संशोधन का विचार कर रही है।

12.2.3 समाजिक एवं कानूनी मुद्दे

विभिन्न ऐतिहासिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक कारणों से हमारे समाज में महिलाओं की स्थिति कमजोर बनी हुई है। समाज में असमानता होना स्वाभाविक है, परन्तु समाज में व्याप्त असमानता के आधार पर किसी के साथ भेदभाव किया जाता है तो वह सामाजिक अन्याय के श्रेणी में आता है। भारतीय समाज में महिलाओं को विभिन्न अवसरों पर सामाजिक-आर्थिक एवं कानूनी रूप में असमानता का सामना करना पड़ता था । सामाजिक एवं कानूनी मोर्चे पर इस भेदभाव पूर्ण व्यवहार को सामाजिक अन्याय की श्रेणी में रखा जाता है। आजादी के बाद देश में सामाजिक तथा कानूनी क्षेत्र में इस लैंगिक असमानता को दूर करने के लिए अनेक संवैधानिक प्रावधान किए हैं।हालांकि इसमें अभी तक अपेक्षित सफलता नहीं मिल पायी है। लेकिन स्त्री शिक्षा तथा जन जागरूकता के माध्यम से इस असमानता को बहुत हद तक दूर किया जा सकता है। यहा पर संक्षिप्त रूप में महिलाओं से संम्बन्धित कानूनों स्पष्ट किया गया है तथा विस्तृत वर्णन अगले अध्याय में किया गया है।

महिलाओं के हितों से सम्बंधित विशिष्ट कानून

- अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956
- प्रसूति सुविधा अधिनियम, 1961
- दहेज निषेध अधिनियम, 1961
- स्त्री अशिष्ट रूपण (निषेध) अधिनियम, 1986
- सती प्रथा (निवारण) अधिनियम, 1987
- घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005

महिलाओं के हितों से सम्बंधित आर्थिक कानून -

- कारखाना अधिनियम 1984
- न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948

- समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976
- कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948
- बगान श्रम अधिनियम, 1951
- बंधित श्रम पद्धति (उत्पादन) अधिनियम, 1976

महिलाओं के हितों से सम्बंधित संरक्षण कानून -

- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के संगत उपबन्ध
- भारतीय दंड संहिता के विशेष उपबन्ध
- विधि व्यवसायी (महिला) अधिनियम 1923
- प्रसव एवं निदान तकनीक (विनियमन और दुरूपयोग निवारण) अधिनियम, 1994

महिलाओं के हितों से सम्बंधित सामाजिक कानून

- कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984--
- भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925
- गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम, 1971
- बाल विवाह अवरोध अधिनियम, 1929
- हिन्दू विवाह अधिनियम, 1956
- हिन्दू उत्तराधिकारी अधिनियम, 1956
- भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम 1969

12.2.4 वेश्यावृत्ति एक अभिशाप

महिलाओं और बच्चियों का अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु देह व्यापार करना वेश्यावृत्ति की श्रेणी में आता है। बच्चियों एवं महिलाओं को अवैध मानव तस्करी के माध्यम से भी देह व्यापार के धंधे में जबरदस्ती उतार दिया जाता है। यह बलपूर्वक कराई गई वेश्यावृत्ति के श्रेणी में आता है। महिलाओं और बच्चियों का अवैध देह व्यापार आज कुछ चुनिंदा इलाकों से बाहर निकल कर व्यापक संगठित अपराध का रूप ले चुका है। आज यह लाखों-करोड़ों का करोबार बन चुका है। वेश्यावृत्ति और देह व्यापार के लिए हर साल हजारों बालिकाओं एवं महिलाओं को जबरदस्ती इस नरक में धकेल दिया जाता है । इस तरह के गिरोहों के दलालों के तार गांवों में गरीब बालाओं के घरों तक पहुंचे हुए हैं। उनकी लाचारी को देखते हुए उन्हें कई तरह के सपने दिखाए जाते हैं। उनके माता-पिता को उनके सुखद भविष्य का दिलासा दिया जाता है। तमाम माता-पिता यह समझते है कि उनकी बेटी महानगर में कान करने जा रही है, पर धीरे-धीरे वह अनजान गलियों में खो जाती है। दलालों, कोठों

और अंधेरी सीलनभरी कोठरियों में सिसकती ये बालाएं एवं महिलाएं कैसा जीवन बिताती है यह आज के विकसित संचार माध्यमों की दुनिया से छुपी नहीं रह गई है।

अवैध देह व्यापार एवं वेश्यावृत्ति से पैदा होने वाली पहली गंभीर समस्या इसकी शिकार महिलाओं और लड़कियों में एचआईवी एड्स का तेजी से फैलना है। इन बीमारियों के चलते पीड़ित परिवारों के बच्चे एवं अन्य परिवार के सदस्य भी इसकी चपेट में आते जा रहे हैं, जो काफीचिंताजनक है। इस समस्या का एक और चिंताजनक पक्ष है, इस तौर पर इससे प्रभावित लोगों की संख्या भी बढ़ रही है। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा हाल में ही कराए गएएक अध्ययन के अनुसार देश में इस समय लगभग 32 लाख वेश्याएं (सेक्स वर्कर) हैं। इनमें से 35.47 प्रतिशत 18 साल से कम आयु की लड़कियां हैं। अमेरिकी विदेश विभाग द्वारा 5 जून 2006 को जारी रिपोर्ट 'ट्रफिकिंग अन पसर्स' रिपोर्ट में पेशेवर यौन शोषण के प्रयोजनार्थ महिलाओं एवं लड़कियों के अवैधव्यापार को लेकर भारत को निगरानी सूची में रखा गया है। मोटे तौर पर बढ़ता पर्यटन तथा औद्योगीकरण, शहरीकरण, गांवों से शहरों में पलायन तथा व्यवसायिक यौनकर्मियों की बढ़ती मांग तथा पुरूष प्रधान मूल्य प्रणाली इसके पीछे के खास कारण बताएं जा सकते हैं। ऐसा अंदाजा लगाया जाता है कि भारत में वेश्यावृत्ति एवं जबरन देह व्यापार का सलाना करोबार 2000-3000 करोड रूपये के बीच है। कुछ लोग यह तर्क भी देते हैं कि थाइलैण्ड, सेनेगल या नीदरलैण्ड की तरह भारत में भी देह व्यापार को कानूनी मान्यात दे देनी चाहिए, इससे एचआईवी का प्रसाद रूक जाएगा तथा जबरन देह व्यापार पर भी अंकुश लग जाएगा। इनका तर्क है कि संक्रमण का प्रसाद उच्च जोखिम समूहों से ही सर्वाधिक होता है। ऐसे में वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता देने से यह काम चोरी छुपे नहीं होगा और सुरक्षित तरीकों का व्यापक प्रचार भी उनके बीच हो सकेगा। लेकिन ये सभी तर्क अपनी जगही है। भारत की अपनी विशिष्ट सामाजिक परंपराएं इस देश को थाईलैण्ड की राह पर चलने देनी स्वीकार नहीं करेगी। इस समस्या की जड़ पर ही वास्तव में प्रहार किया जाना और ठोस पुनर्वास नीति बनाना जरूरी है।

12.2.5 देवदासी प्रथा

भारत में देवदासी एवं जोगिन प्रथा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक में कानूनी प्रतिबंध के बाद भी देवदासी तथा जोगिने प्रथा आज भी विद्यमान है। हलांकियह समस्या स्थानीय स्वरूप की है, पर इसकी आड़ में सैकड़ों बालिकाओं का जीवन बर्बाद हो गया है या हो रहा है। समस्या से निपटने के लिए आंध्र प्रदेश देवदासी (समर्पण का निषेध) अधिनियम 1988, कर्नाटक देवदासी (समर्पण निषेध) अधिनियम 1982, बंबई देवदासी संरक्षण अधिनियम 1934 तथा महाराष्ट्र देवदासी (उन्मूलन व पुनर्वास) अधिनियम 2001 बनाए गए हैं जिसमें देवदासी प्रथा पर प्रतिबंध है। केन्द्र तथा राज्य सरकारों के साझा प्रयासों से पुनर्वास की नीति भी बनी है और बच्चों का रिहायशी स्कूलों और हास्टलों में दाखिल भी करवाया जा रहा है। लेकिन कुछ समय पूर्व राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट ने इस समस्या पर सबका ध्यान फिर से खीचा। इस रिपोर्ट के अनुसार तमाम अभियानों का असर यह पड़ा कि नामी गिरामी मंदिरों में यह प्रथा समाप्त हो गई, पर छोटे मंदिरों में यह अब भी विद्यमान है। देवदासी प्रथा के पीछे गरीबी खासतौर पर जिम्मेदार है। गरीब लोग अपनी बच्चियों को मंदिरों को दान है देते हैं ताकि उनको मंदिरसे खाने पीने की वस्तुए मिलती रहे। बिना प्रचार या ताम-झाम के देवदासी बनाने के आयोजन अब छोटे मंदिरों व पुजारियों के घरों पर किए जाते हैं। इसी नाते यह परंपरा जारी है तथा पहले से कहीं अधिक व्यावसायिक रूप ले चुकी है। कानून इतना कमजोर है कि अनेक शिकायतों के बाद भी कर्नाटक देवदासी अधिनियम के तहत एक भी मामला दर्ज नहीं किया गया। रिपोर्ट के मुताबिक पुनर्वास प्रयास अपर्याप्त है।

12.2.6 वेश्यावृत्ति की रोकथाम हेतु उपाय

वेश्यावृत्ति निवारण का काम द्विआयामी है। इसके लिए तात्कालिक तथा दूरगामी उपाय अपनाने की जरूरत है। इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि वेश्यावृत्ति मांग आधारित बुराई है। जितनी ज्यादा मांग होगी उतनी ही ज्यादा बुराई होगी। परिस्थितियां हर मामले में गरीबी ही नहीं होती। वह कई कारको का मिला-जुला परिणाम होती है। अधिकारों के प्रति अज्ञानता, अशिक्षा, आय में विषमता, कमजोर कानून, जन-जागरूकता की कमी और अधिकारों के उल्लंघन पर चुप्पी साधे रहने की प्रकृति इसमें शामिल हैं। भारतीय संविधान की धारा 23(अनुच्छेद23) इस प्रकार की वेश्यावृत्ति का निषेध करती है। इसके अनुरूप अनैतिक वेश्यावृत्ति निवारण अधिनियम आईटीपीए 1956, बंधुआ तथा उन्मूलन अधिनियम 1976, बाल अपराध न्याय अधिनियम अनैतिक व्यापार निवारण (संशोधन) अधिनियम 2006 आदि। भारतीय .. संहिता में कई धाराएं शामिल है। भारत सरकार इस कार्यभार को रोकने के लिए और भी कई कदम उठा रही है ताकि अपराधियों का कानूनों की सख्त व्यवस्थाओं के तहत अपराधियों को कड़ी सजा दी जा सके।

12.3 महिला साक्षरता एवं विकास

महिलाओं का शिक्षित होना किसी भी समाज के विकास के लिए प्रगति के निर्धारण का महत्वपूर्ण मानदंड होती है। उनकी शैक्षिक दशा, राजनीतिक एवं सामाजिक निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में उनकी भूमिका एवं उनके सामाजिक अधिकार उनकी स्थिति को जानने के संकेतक हैं। महिला अधिकारिता एवं समानता को लेकर संपूर्ण विश्व की जागरूकता एवं प्रयासों के बावजूद साक्षरता के क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति दोयम दर्जे की बनी हुई है। प्रौढ़ निरक्षरों में दो तिहाई तथा विश्व के कुल निरक्षरों में 70 प्रतिशत महिलाएं है। भारत में भी महिला एवं पुरूष साक्षरता के बीच अन्तर बरकरार है। आजादी के 65 सालों के बाद यह असमानता जारी है महिला अधिकारिता को जब तक हम सिर्फ वैधानिक एवं संवैधानिक अधिकारों में जोड़ कर देखने रहेगें तब तक महिलाओं की स्थिति को सुदृढता मिलनी मुश्किल है। वैधानिक एवं सवैधानिक अधिकारों के साथ-साथ जब तक महिलाओं को शैक्षणिक स्थिति सुदृढ नहीं होगी तब तक महिला अधिकारिता का प्रश्न अधूरा रहेगा। शिक्षा का सीधा संबंध विकास से है विशेषतः महिलाओं का विकास तब तक संभव नही जब तक वह शिक्षित न हो क्योंकि महिला साक्षरता का सकारात्मक संबंध बाल विकास, स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता निम्न जन्म दर एवं निम्न मृत्यु दर से है। भारत सरकार के योजन आयोग ने महिलाओं के विकास एवं उसकी अधिकारिता को सुदृढता प्रदान करने के लिए मुख्य रूप से तीन विन्दुओं पर ध्यान केद्रिन्त किया है। स्वास्थ्य, शिक्षा और कल्याण महिला अधिकारिता को सुदृढता प्रदान करने के लिए जो क्षेत्र मील का पत्थर सिद्ध हो सकता है वह है शिक्षा। योजना आयोग ने महिला शिक्षा को अपनी नीतियों का केन्द्र बिन्दु बनाया क्योकि शिक्षा ही वह माध्यम है जो महिलाओं में न केवल आत्मविश्वास जागृत करती है, बल्कि अपने अधिकरों के प्रति सजग रहने एवं अन्याय से लड़ने की नैतिक शक्ति भी पैदा करती है। महिला शिक्षा को लेकर स्वतंत्रता के पश्चात् समय-समय पर कई समितियां एवं योजनाएं बनाई गई है। इसके बावजूद महिला शिक्षा उस गति से अपने लक्ष्यों की ओर नही बढ़ पा रही है, जैसा कि अपेक्षित था महिला शिक्षा की ओर नहीं बढ पा रही है जैसा कि अपेक्षित था महिला शिक्षा को सिर्फ साक्षरता के संदर्भ में जोड़ कर देखा जाना सर्वथा अनुचित था। शिक्षा का संबंध स्वस्थ एवं जागरूक समाज से है। विशेष कर महिलाओं के संदर्भ में सरकार द्वारा महिला शिक्षा के क्षेत्र में किए जा रहे प्रयलों के स्वैच्छिक संस्थाएं, स्वयंसेवी संगठन एवं सम्पूर्ण समाज इस प्रयास में साथ दे।

12.4 महिला अधिकारिता एवं कल्याण

स्वास्थ्य एवं शिक्षा के अलावा भारत मे महिला कल्याण संबंधी गतिविधियों को संस्थागत ढांचा उपलब्ध कराने और संवैधानिक सुरक्षा उपलब्ध कराने हेतु अनेकानेक कदम उठाए गए हैं। आजादी के बाद से ही महिलाओं का विकास देश की आयोजन प्रणाली का केन्द्रीय विषय रहा है। 1970 के दशक में जहां कल्याण की अवधारणा अपनाई गई, वहीं 1980 के दशक मे विकास पर बल दिया गया। 1990 के दशक से निरंतर महिला अधिकारिता पर बल दिया जा रहा है और ऐसे अथक प्रयास किए जा रहे हैं, जिनसे महिलाएं निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल हों और नीति निर्माण के स्तर पर भी उनकी सहभागिता बढ़े। संविधान के अनुच्छेद 14 में स्त्री पुरूष के बीच भेदभाव समाप्त करने और महिलाओ को समाज में बराबरी का हक दिलाने की बात कही गई है। अनुच्छेद 15 में लिंग के आधार पर किसी भी तरह के भेदभाव को रोकने की व्यवस्था की गई है। संविधान के अनुच्छेद 15(3) में राज्य की महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान करने की छूद दी है। अनुच्छेद 16 में सरकारी नौकरियों में महिलाओं को भी पुरूषों के बराबर अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 30 में राज्य से अपेक्षा की गई है कि वह स्त्रियों और पुरूषों के की अजीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध कराएगा। अनुच्छेद 51(ई) में प्रत्येक नागरिक को यह दायित्व सौंपा गया है कि वह महिलाओं की मान-मर्यादा को कम करने वाला कोई कार्य न करें। संवैधानिक उपबंधों के अलावा भी भारत सरकार ने पिछले दो दशकों में अनेक ऐसे कानून बनाए हैं जिनके माध्यम से महिलाओ को पुरूषों के बराबर लाने का प्रयास किया गया है। भारतीय उत्तराधिकारी अधिनियम 1925 जिसमें 1997 में वसीयत के जरिए तथा बिना वसीयत के उत्तराधिकारी के मामले मे गैर हिन्दुओं की तरह संशोधन किया गया था। इसमें महिलाओं के उत्तराधिकारी के अधिकार को मान्यता नहीं दी गई, किन्तु हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 पारित किए जाने से देश की स्वतंत्रत के 65 वर्ष के बाद महिलाओं को पैतृक संपत्ति पर अधिकार का दावा संभव हो सका।

12.5 सूचना का अधिकार और महिला सशक्तीकरण

सूचना का अधिकार और महिला सशक्तीकरण यद्यपि दो अलग-अलग विषय हैं, लेकिन इसके बीच अत्यन्त निकट का संबंध है। सूचना के अधिकार के माध्यम से महिला सशक्तीकरण अभियान को और सशक्त बनाया जा सकता है। सूचना का अधिकार विश्व के कई देशों की जनता को मिला हुआ है। भारत में भी महिलाओं को यह अधिकार 26 अक्टूबर 2006 को प्राप्त हुआ। यह अधिकार इस दृष्टि से विलक्षण है कि इसके तहत चंद प्रतिबंधित क्षेत्रों को छोड़कर प्रायः सभी क्षेत्रों से संबंधित आवश्यक सूचना जनता को पाने का अधिकार दिया गया है। इस अधिकार के अत्यन्त सार्थक एवं सकारात्मक परिणाम सामने आए हैं। जहां तक महिला सशक्तीकरण का प्रश्न है तो इस अधिकार के माध्यम से लेकर राष्ट्रीय संदर्भ में महिलाएं इस अधिकार का उपयोग कर बहुत कुछ प्राप्त कर सकती है। महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए उन पहलुओं को मजबूत बनाने की आवश्यकता है जिनका सीधा संबंध स्वावलंबन और उत्थान से है। शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र इनमें प्रमुख है। आम तौर पर इन सभी क्षेत्रों में महिलाएं बहुत पीछे है। महिलाओं को आर्थिक एवं सामाजिक रूप से स्वावलंबी बनाने के लिए असल में लायी गई योजनाएं क्रियान्वयन के स्तर पर भ्रष्टाचार से ग्रसित है। परिणामस्वरूप इसका लाभ महिलाओं को नहीं मिल पा रहा है। इसके लिए भ्रष्टाचार को कम अथवा समाप्त करने की दिशा में एक मजबूत हथियार के रूप काम कर रहा है।। इस कानून का एक महत्वपूर्ण भाग अनुच्छेद 8(2) है, जो वचन देता है कि किसी राज्य के सूचना विधान से किसी भी व्यक्ति को वंचित नहीं किया जा सकता। महिलाएं सूचना के अधिकार के

कानून को समझकर अगर उसका नियमित तौर पर प्रयोग करें तो इससे न केवल वह तमाम तरह के अन्यायों से मुक्ति पा सकेगी बल्कि उसमें जारी सशक्तीकरण की प्रक्रिया और भी मजबूत होगी।

12.6 महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता

महिलाओं को उन्नति व विकास के लिए आवश्यक है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र, विशेषकर राजनीति में उनका सशक्तिकरण हो उनकी सहभागिता का स्तर उच्च हो। ऐसा होने पर ही लैंगि आधार पर एक समानापूर्ण समाज की स्थापना होगी महिलाओं के राजनीति में भागीदारी के लिए तीन आधारभूत सिद्धातो को आवश्यक माना जाता है।

- स्त्री-पुरूष के मध्य समानता,
- स्वयं की क्षमताओं के पूर्ण विकास का महिलाओं का अधिकार,
- स्वयं के प्रतिनिधित्व व स्वयं के सन्दर्भ में निर्णय लेने का महिलाओं का अधिकार।

इस सिद्धांतों के माने जाने के बावजूद राजनीतिक परिदृश्य में आज भी महिलाओं की भूमिका बहुत सार्थक नहीं मानी जा सकती है निर्णय प्रक्रिया में सशक्त भागीदारी के अभाव में प्राय: ही उन्हे संसाधनों के असमान वितरण अपने हितों की उपेक्षा तथा अनके अन्य बंचनओं का सामना भी करना पड़ता है। पिछले कई दशकों से चल रह महिला आंदोलनों की प्रभावशाली उपलब्धियां रही है लेकिन इसके बावजूद भी राजनीतिक शक्ति संरचना में उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व देखने को नहीं मिलता आज भी पूरे विश्व में औसतन 12.13 प्रतिशत महिलाएं ही विधायी संस्थाओं हेतु निर्वाचित हो रही है तथा भारत में भी स्थिति इसके आस-पास ही है।

भारत में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता से संबधित मृद्दा सबसे पहले स्वंतत्रता संग्राम के दौरान चर्चित हुआ जिसमें स्वयं महिलाओं की सक्रिया सहभागिता थी। वर्ष 1917 में श्रीमती सरोजनी नायडू के नेतृत्व में भारतीय महिलाओं ने राजनीति में स्त्रियों के प्रतिनिधित्व का मुद्दा उठाया और उस समय इस मांग का अर्थ सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार से था। वर्ष 1921 के सुधार अधिनियम ने महिलाओं को यह अधिकार प्रदान किया। परन्तु यह केवल उन गृहणियों तक सीमित था जो सम्पन्न व शिक्षित थी। ब्रिटिश शासकों ने स्त्रियों को कभी भी एक राजनीतिक शक्ति के रूप में नही देखा। महिलाओं की समानता व राजनीतिक अधिकारों संबंधी उनकी आवश्यकता के महत्व का समझते हुए स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माताओं ने इस हेतु स्पष्ट प्रयास किये। भारतीय संविधान ने राष्ट्र को समता के सिद्धांतों का पालन करने और व्यक्ति की प्रतिष्ठा का आदर करने का वचन दिया तथा राजनीतिक व विधिक समता के बारे में महिलाओं के मौलिक अधिकारों की घोषणा की।

विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों की सहायता से स्वतंत्र भारत में महिलाओं अनेक क्षेत्रों में सफलतापूर्वक महत्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वाह कर रही है परन्तु उनकी राजनीतिक भूमिक को आज भी बहुत अधिक निर्णायक नहीं माना जाता। महिलाओं ने अपनी गमिविधियों से गैंर परंपरागम राजनीतिक क्षेत्र जैसे- पर्यावरण संबंधी आदोलन मद्यनिषेध आदोंलन आदि के संदर्भ में महिलाओं ने न सिर्फ भूमिका का निर्वाह किया है बल्कि सचा व शक्ति के पदों पर बैठे लोगों को अपनी गतिविधियों से प्रभावित करते हुए उनके मध्य अपनी सशक्त उपस्थिति भी दर्ज कराई है। ऐसा करने वाली महिलाओं में सुदूर ग्रामीण अंचल की अशिक्षित व साधनहीन महिला से लेकर शिक्षित व सम्पन्नतम तबके की महिलाओं भी शमिल रही है। उत्तराखण्ड का चिपकों आंदोलन आंध्र प्रदेश का अरक विरोधी आंदोलन तथा आदिवासी पुनर्वास हेतु किा जा रहा नर्मदा बचाओं आंदोलन आदि में महिलाओं

की भागीदारी प्रमुख चर्चा में रही है। इन सबके बाबजूद भी सक्रिया प्रत्पक्ष व चुनावी राजनीति मुख्यात पुरूष प्रभुत्व का क्षेत्र ही रहा है। जिसमें महिलाओं को सहभागिता आनुपातिक रूप से हमेशा से ही बहुत कम रहा है।

चुनाव संबंधी आंकड़ों के विश्लेषण से महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता संबंधी प्रवृत्तियों की स्थिति स्पष्ट होती है। यह विश्लेषण चुनावों में मतदाओं व उम्मीदवायं के रूप से राजनीतिक प्रक्रिया में उनकी भागादारी आधार पर की जा सकती है। प्रथम व द्वितीय लोकसभा चुनाव के मतदाताओं का प्रतिशत 46.6 था वही 1967 में बढ़कर यह प्रतिशत 55.5 हो गया। उपलब्ध आंकडों के अनुसार महिला मतदाताओं का उच्चतम प्रतिशत (59.2) वर्ष 1984 के चुनावों में रहा था। उम्मीदवारी के मामले में तो स्त्रियों व पुरूषों के मध्य यह अंतर स्पष्टत बहुत अधिक है। वर्ष 2009 के लोकसभा चुनाव में कुल 556 महिला उम्मीदवार प्रत्याशी थी जिनमें से 59 महिलाओं जीत हासिल की थी। यह कुल 45 महिला उम्मीदवार विजयी रही थी। महिला उम्मीदवारों की उच्चतम संख्या वर्ष 1996 के चुनाव में 599 थी। अभी हाल ही में हुए 2014 के चुनाव में 62 महिला उम्मीदवार विजयी रही है।

स्वतंत्रता के पश्चात राजनीतिक जीवन में महिलाओं की धीमी परन्तु क्रमश बढ़ती सहभागिता के बावजूद राजनीतिक प्रक्रिया पर आज भी उनका प्रभाव बहुत अधिक नहीं है। महिला की राजनीतिक भागीदारी मे आमूल परिवर्तन लाने के लिए इस बात की आवश्यकता है। कि उन्हें प्रदत्त संवैधानिक समानता को एक सशक्त साधन के रूप में उपयोग किया जाय। महिलाओं से संबंधित राष्ट्रीय समिति की रिपोर्ट में कहा गया है। कि संख्या को दृष्टि से महिलाएं अल्पसंख्यक नहीं मानी जा सकती परन्तु स्थिति व राजनीतिक शक्ति में असमानता के कारण उनमें अल्पसंख्यकों के लक्षण बढ़में जा रहे है।

महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी में दो प्रमुख बाधाएं है।

12.6.1 सामाजिक बाधाएँ-

सामाजिक स्थितियां कुछ हद तक महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का सीमित करती है।

- घर से बाहर कार्य करने की स्थिति में घर-परिवार व कार्यक्षेत्र के दोहरे दायित्व का निर्वाह करने की बाध्यता महिलाओं की राजनीतिक गतिविधियों को सीमित कर देती है।
- निश्चित लैंगिक भूमिकाओं के निर्वाह हेतु महिलाओं का समाजीकरण होना।
- प्रजनन कार्य व शिशु पालन-पोषण का एकांगी दायित्व

12.6.2 राजनितिक बाधाएं -

अत्यधिक धन व शरीरिक बल पर आधारित निर्वाचन प्रणाली का वर्तमान स्वरूप महिलाओं के लिए राजनीतिक सहभागिता को कठिन बना देता है। राजनीतिक दलों को संरचना व एजेडा चूंकि मुख्यतः पुरूष परिप्रेक्ष्य में ही निर्धारित होता है। अत: स्वयं के बल पर राजनीति में सफलता प्राप्त करने वालों की संख्या नहीं के बराबर है।

12.7 महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता

संयुक्त राष्ट्रसंघ की रिपोर्ट 'भारत में औरतें: कितनी आजाद कितनी बराबर" के अनुसार महिलाओं की श्रम शक्ति में भागीदारी अर्थात् वयस्क महिलाओं का प्रतिशत जो वास्तव में काम कर रही है, महिलाओं के दोयम दर्जे का संकेतक है तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रमों की मानव विकास रिपोर्ट में जेंडर सशक्तिकरण का मापक

एक अहम घटक है। विश्वभर में 1.5 लाख व्यक्ति प्रतिदिन एक अमरीकी डालर या इससे कम में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इनमें महिलाओं की संख्या अधिक है। इसीलिए यह कहा जा सकता है कि गरीबी का महिलाकरण (फेमानाइजेशन आफ पावर्टी) हो गया है। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं के कार्यों को उचित सम्मान नहीं मिलता।

विश्व की कुल जनसंख्या में आधी जनसंख्या महिलाओं की है। वे कुल कार्यकारी घंटो में दो तिहाई का योगदान करती हैं, लेकिन विश्व आय का केवल दसवां हिस्सा प्राप्त कर पाती है और उन्हें विश्व संपत्ति में सौवें से भी कम की हिस्सेदारी प्राप्त है। यद्यपि रोजगार में महिलाओं की संख्या में वृद्धि हो रही है लेकिन उन्हें कम वेतन मिल रहा है और उनके कार्य की परिस्थितियां असंतोषजनक है। महिलाएं अधिकांशतः पारिवारिक दायित्वों का निवर्हन करती है, वे बच्चों और बड़ों की देखभाल करती हैं, पारिवारिक भूमि के कामों में या व्यापार में सहयोग करती हैं, गांवों में पानी, ईंधन और चारा लाने में जीवन व्यतीत करती हैं। उनके ये कार्य निःशुल्क तथा अप्रत्यक्ष होते हैं, जीडीपी में इसकी गणना नहीं होती।

कार्यकारी महिलाओं की बहुत छोटी सी संख्या को सरकारी आंकड़ों में स्थान मिल पाता है। ज्यादातर महिलाएं असंगठित क्षेत्रों जैसे -कृषि पशुपालन के कार्यों में संलग्न रहती है। सर्वेक्षणों के दौरान ये महिलाएं अपने आपको घरेलू औरतें ही कहती हैं। हलांकि वे आमदनी के लिए 14 से 16 घंटे रोज काम करती हैं।

कार्यरत महिलाओं के लिए कानूनी व्यवस्था

संसद के द्वारा समय-समय पर नीति निर्देशक सिद्धांतों के क्रियान्वयन के लिए कानून बनाए गए हैं। अनुच्छेद 38 के अनुसार राज्य का वह दायित्व है कि वह ऐसी व्यवस्था करे जिससे सभी को 'सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक' न्याय प्राप्त हो सके। अनुच्छेद 39, 42 और 43 के अनुसार राज्य ऐसी विधियां पारित करेगा जिससे सभी को समान कार्य के लिए समान वेतन, कार्य की औचित्यपूर्ण तथा मानवीय परिस्थितियां, मातृत्व अवकाश प्राप्त हो।

12.8 लैंगिक भेदभाव और 12वीं योजना

12वीं योजना (2012-13 से 2016-2017) का उद्देश्य तेज गति से टिकाऊ और अधिक समावेशी वृद्धि हासिल करना है। योजना के दृष्टिकोण पत्र में अर्थव्यवस्था के मजबूत वृहद बुनियादी अंग और 11वीं योजना के दौरान औसत सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 8.2 प्रतिशत की वृद्धि को तो उल्लेख है लेकिन यह बताने से बचा गया है कि 11 वीं योजना में महिलाओं सहित बहिष्कृत/हाशिये पर जीते हुए समूहों को अधिकाधिक भागीदारी देते हुए वृद्धि का जो वायदा किया गया था उसे पूरा क्यों नहीं किया गया। वृद्धि के दायरे से बाहर छूटे समूहों में महिलाओं का अनुपात बहुत अधिक है और उन्हें शामिल करने के लिए सार्थक रोजगार का दायरा बढ़ाना और उन अनेक प्रमुख कार्यों में भागीदारी देना आवश्यक है, जिनके लिए सरकार ऊंची वृद्धि दरों से लाभान्वित समूहों से प्राप्त राजस्व का अधिक से अधिक अनुपात दे रही है। किन्तु प्रश्न यह है कि उन्हें किस हदतक शामिल किया गया है, इसका पैमाना क्या होगा और योजना अवधि के दौरान इसकी निरन्तर निगरानी कैसे होगी। दृष्टिकोण पत्र में, समावेशन या सबको शामिल करने की एक पूर्ण समावेशन बहु आयामी परिभाषा दी गई है, लेकिन इसे वृद्धि से कैसे जोड़ा जाएगा और अलग-अलग आयामों के बीच मिलन कैसे होगा? यह कहने के जरूरत नहीं है कि उनके सामूहिक प्रभाव से ही ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषकर महिलाओं के लिए इतनी अधिक वंचना को दूर किया जा सकता है। महिलाएं बिना किसी वेतन के परिचर्या की अर्थव्यवस्था में इनमे से कुछ काम करतीहैं। विशेषकर महिलाओं के

सरोकार विभिन्न क्षेत्रामें से जुड़े हुए हैं। इसलिए उनके हित में अन्तर क्षेत्रीय व्यवस्था को शामिल करना जरूरी है, जिसमें सबसे वंचित समूह की महिलाओं के दृष्टिकोण हित और आवाज सबसे आगे रखी जाएं।

स्थानीय निकायों में (पिछले 15 वर्ष में विकसित) निर्वाचित प्रतिनिधि के रूप में महिलाओं की भागीदारी महत्वपूर्णरही है। अतः विशेषकर बुनियादी स्तर पर समावेशी कार्यक्रम अपनाने के लिए इन एजेंसियों की भूमिका और शक्तियां को मजबूत करने से महिलाओं के नेतृत्वमें प्रशासन को बढ़ावा देने में मदद मिलेगी। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कार्यक्रमों में प्राथमिकता का निर्धारण आवश्यक है, और साथ में स्वच्छ जल, स्वच्छता और स्वच्छ इंधन जैसी कुछ अपरिहार्य आवश्यकताओं के लिए कहीं अधिक संसाधन आवंटित किए जाएं। समावेशी वृद्धि सुनिश्चित करने के लिए अकेला सबसे महत्वपूर्ण कारक अजीविका है और भारत में काम में महिलाओं की भागीदारी की नीची दरों को देखते हुए महिलाओं के सराकारों से जुड़ा एक महत्वपूर्ण मुद्दा भी है। इसके बावजूद हमारी योजनाओं की आधारभूत मान्यता आज भी यही है कि उत्पादन में वृद्धि होने से आवश्यक रोजगार अपने आप पैदा हो जाएगा। जबकि तमाम प्रमाण इसके विपरित हैं।

वर्तमान योजना अवधि में यह समस्या और भी गंभीर हो गई है। एनएसएसओ के ताजा आंकड़े बताते हैं कि 15 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों के लिए मुख्य गतिविधि के अनुसार सभी प्रकार के रोजगार में वार्षिक चक्रवृद्धि वृद्धि 2004-05 और 2009-10 के बीच गिरावट 0.82 प्रतिशत रह गई जबकि इससे पहले की अवधि में यह दर 2.7 प्रतिशत थी। सबसे अधिक चिंताजनक तथ्य इस अवधि के दौरान पूर्ण दृष्टि में कुल महिला रोजगार में गिरावअ है। इसका अधिकतर कारण स्वरोजगार में बहुत अधिक कमी है। स्वरोजगार में आमतौर पर गिरावट आने से निचलने दर्जे की मैन्युफैक्चरिंग/मामूली सेवाओं में छोटे-छोटे स्वरोजगार की व्यावहारिकता पर भीसवाल खड़ा हो गया। जो अजीविका मिशन मोटे स्तर पर आर्थिक संदर्भ और माल तथा सेवाओं की मांग को ध्यान में नहीं रखते उनके सफल होने की संभावना कम है। राष्ट्रीय ग्रामीण अजीविका मिशन के अंतर्गत 12वीं योजना में उत्पादक समूहों के गठन परजो बहुत जोर दिया गया है वह तभी प्रभावकारी होगा जब उसमें बच्चे माल, ऋण मार्केटिंग और टैक्नोलाजी तक पहुंच बढ़ाई जाएगी। शहरी और ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों तक महिलाओं के लिए नियमित रोजगार में वृद्धि का प्रश्न है, शहरी क्षेत्रों में यह वृद्धि अधिकतर घरेलू सेवा और अध्ययन में हुयी है। अध्यापन में वृद्धि शिक्षा सुविधाओं के विस्तार के सार्थक प्रभाव का संकेत हैं। लेकिन घरेलू सेवा में वृद्धि से पता चलता है कि महिलाओं के लिए जिनके पास दक्षता बहुत कम है। इसे आर्थिक उछाल दिखाने वाली सार्थक गतिविधि के विस्तार की दृष्टि से उपयुक्त नहीं माना जा सकता है।

रोजगार की स्थिति विशेष रूप से महिलाओं के लिए इतनी अधिक महत्वपूर्ण है कि इसे 'उत्तम दर्जे' की नौकरियों के रूप में नियोजनप्रक्रिया का मुख्य लक्ष्य माना जाना चाहिए। संगठित क्षेत्र में रोजगार बढ़ाने और अनौपचारिक क्षेत्र तथा स्वरोजगार की परिस्थितयां सुधारने की आवश्यकता है। न्यूनतम वेतन से भी कम वेतन पर आंगनवाड़ी कार्यकर्ता/सहायक, आशा पैरा टीचर की तरह महिलाओं को रोजगार देना सबसे अधिक प्रमुख कार्यक्रमों का आधार बन गया है किन्तु इस प्रथा को बन्द किया जाना चाहिए।

नीतिगत ढांचे में नीति नियोजन और बजट निर्धारण की प्रक्रिया में महिलाओं की स्थिति के नजरिए को शामिल करने की आवश्यकताका कोई जिक्र नहीं है। महिलाओं की आवश्यकताओं के अनुरूप बजट प्रयासों का उपयोग विकसित और विकासशील दोनों ही तरह के देशों में महिलाओं और पुरूषों के बीच बराबरी के लक्ष्य की दिशा में आगे बढ़ने के लिए किया जा रहा है। किन्तु इस तरह के बजट प्रयास महिलाओंके लिए बजट संसाधनों के प्रवाह के अनुमानों से सम्बद्ध गिनती के खेल से आगे जाने चाहिए ताकि वृहत् स्तर पर आर्थिक नीति के कुल निर्धारण से उन्हें जोड़ा जा सके और इस स्तर तक बढ़ाया जा सके कि सामाजिक निवेश और सार्वजनिक भलाई

के प्रावधानों के लिए पर्याप्त समर्थन हो। इसमें महिलाओं की बाजार से बाहर की गतिविधियों और उनके उत्पादन को भी शामिल किया जाना चाहिए। प्रत्येक महिला खासकर जिन महिलाओं को सबसे कम साधन सम्पन्न माना जाता है, उनके आर्थिक योगदान तथापरिवार को संभालने में खर्च होने वाले उनके समय का महत्व समझा जाना चाहिए। महिलाओं को विकास का एजेंट बनाने में शासन की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि योजना अवधि के दौरान महिलाओं पर पड़ने वाले प्रभाव की निगरानी और मूल्यांकन के लिए महिलाओं के कल्याण महिलाओं के काम सवेतन और अवैतनिक, प्रमुख कार्यक्रमों तक और प्रभाव, पोषण सहित स्वास्थ्य और भोजन तथा शिक्षा तक पहुंच, कौशल विकास, परिसम्पत्तियां, ऋण पर नियंत्रण, बुनियादी सुविधाओं तक पहुंच और सार्वजनिक सुविधाओंके उपयोग के हर पहलू के बारे में महिलाओं के उत्तम किस्म के अलग-अलग आंकड़ों का उपलब्ध होना आवश्यक है।

12.9 लिंग आधारित हिंसा

महिलाएं विभिन्न रूपों में सदैव हिंसा का शिकार होती रही है। शायद अभी तक महिलाओं के विरूद्ध होने वाली हिंसा के कारणों को ज्ञात करने में हमारी समझ अपर्याप्त है। जिसके कारण हमारे प्रयास असफल हो रहे है और हम हिंसा का उन्मूलन नहीं कर पा रहे है। महिलाओं के विरूद्ध हिंसा एक सार्वभौमिक समस्या है जो विश्व के प्रत्येक समाज में व्याप्त है। पूरे विश्व में कम से कम तीन महिलाओं में से एक महिला मारपीट, लिंग के आधार पर भेदभाव अथवा अपने जीवन में दुर्व्यवहार का शिकार होती है। अधिकतर महिलाएं अपने परिवार के सदस्यों के द्वारा, नियोक्ता के द्वारा अथवा अपने सहायक के द्वारा हिंसा का शिकार होती है। लिंग आधारित हिंसा महिलाओं के विरूद्ध होने वाली हिंसा है जिसका प्रमुख आधार समाज में महिलाओं की दोयम दर्जे की होना है। इसमें उन सभी धमकियों अथवा कृत्यों को शामिल किया जाता है जिनके द्वारा किसी महिला को शारीरिक, मानसिक, लैंगिक हानि पहुचती है। यहा पर लिंग आधारित हिंसा के कुछ उदाहरणों को प्रस्तुत किया गया है:-

शारीरिक हिंसा:- मारपीट, धक्का देना या सामगी धकेलना, मुक्का मारना ,लात मारना, थप्पड़ मारना, किसी अन्य तरह की चोट

मौखिक या भावनात्मक हिंसा :- अपनी पसंद के व्यक्ति से शादी करने या न करने का दबाव डालना, किसी व्यक्ति से मिलने से रोकना, नौकरी करने से रोकना/ बाहर जाने से रोकना, शिक्षा में अवरोध डालना,बच्चा/बेटा न होने का ताना देना, कलंक लगाना/ बुराई/मजाक उड़ाना

आर्थिक हिंसा :-रूपये न देना या उनका उपयोग न करने देना , घर का किराया न देना। घर के किसी भाग में न जाने देना, नौकरी न करने देना। वेतन या मजदूरी छीन लेना ,दहेज या अन्य सम्पत्ति मांगना, किसी अन्य तरह का उत्पीड़न, व धमकाना ,बिलों का भुगतान न करना

यौनिक हिंसा :-यौनिक दुव्यर्वहार या अपमान, अश्लील साहित्य या अन्य देखने के लिये मजबूर करन, स्वयं या दूसरों के साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाने के लिए मजबूर करना |

12.10 सारांश

सारांश के रूप में कहा जा सकता है कि महिलाएं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लैंगिक असमानता एवं लिंग आधारित हिंसा का सामना कर रही है। जिसके कारण महिलाओं एवं पुरूषों के मध्य अनतर बढ़ता जा रहा है। में इस अध्याय में स्वतन्त्र भारत में पारित किए गए संवैधानिक एवं वैधानिक प्रावधानों का विस्तृत उल्लेख किया गया है। यह

अत्यधिक गहन एवं चिंता का विषय है। हमें इस ओर अधिक से अधिक संवेदनशील होना पड़ेगा और अपने नज़रिए में परिवर्तन लाना पड़ेगा।

12.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) लैंगिक असमानता पर अपने विचार दीजिए।

(2) सूचना का अधिकार और महिला सशक्तीकरण की स्थिति पर प्रकाश डालिए।

(3) महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता की स्थिति को स्पष्ट कीजिए।

(4) महिलाओं से संबंधित अपराध और सजा को स्पष्ट कीजिए।

(5) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(अ) कन्या भ्रूण हत्या

(ब) वेश्यावृत्ति

(स) लिंग आधारित हिंसा

(द) लैंगिक भेदभाव और 12वीं योजना

12.12 सन्दर्भ पुस्तकें

- Gupta, A. R., Women in Hindu Society (A Study of Tradition and Transition), Jyotsna Prakashan, New Delhi, 1982.
- Sharma, Usha, Gender Mainstreaming and Women's Rights, Author Press, Delhi, 2004.
- Seth, Mira, Women Development: The Indian Experience, Sage Publications, New Delhi, 2001.
- Agrawal, R. and Rao, BVLN, Gender Issues: A Road Map to Empowerment, Shipra Publications, Delhi, 2004.
- Grover, V. and Arora, R., (ed.) Violence, Communalism and Terrorism in India, Deep and Deep Publication, New Delhi, 1995.
- Roberts, A. R. (ed.), Handbook of Domestic Violence Intervention Strategies, Oxford University Press, NY, 2002.
- Sarkar, I., (ed.), Women in Changing Society, Serial Publication, New Delhi, 2008.
- Pandya, R., Women in Changing India, Serial Publication, New Delhi, 2008.
- Prasad, N., Women and Development, APH Publishing Corporation, New Delhi, 2007.
- Constitution of India, Eastern Book Company, Lucknow, 12th Edition, 2008.
- Singh, S. and Srivastava, S.P., (ed.) Social Work Education in India: Challenges and Opportunities, NRBC, Lucknow, 2003.

इकाई-13

मानवाधिकार: अवधारणा, सिद्धान्त, दृष्टिकोण एवं महत्व

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 मानवाधिकार की अवधारणा

13.3.1 ऐतिहासिक विकास

13.3.2 मानवाधिकार का अर्थ

13.4 मानवाधिकार के सिद्धान्त

13.4.1 प्राकृतिक अधिकारों का सिद्धान्त

13.4.2 अधिकारों का कानूनी सिद्धान्त

13.4.3 गैर उपयोगितावादी सिद्धान्त

13.4.4 विधिक यथार्थवादी सिद्धान्त

13.4.5 माक्र्सवादी सिद्धान्त

13.5 मानव अधिकार पर महत्वपूर्ण दृष्टिकोण

13.5.1 उदारवादी दृष्टिकोण

13.5.2 समाजवादी दृष्टिकोण

13.5.3 तृतीय विश्व का दृष्टिकोण

13.6 मानवाधिकारों का महत्व

13.7 सारांश

13.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.9 सन्दर्भ पुस्तकें

13.0 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप:-

1. मानवाधिकार की अवधारणा,अर्थ तथा इसके ऐतिहासिक विकास को जान सकेंगे |
2. मानवाधिकार के प्रमुख सिद्धान्त एवं महत्व आदि का विश्लेषण कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

मानव समाज में कई स्तर पर कई तरह से विभेद मौजूद हैं। भाषा, रंग, मानसिक स्तर, प्रजातीय स्तर आदि स्तरों पर मानव समाज में भेदभाव का बर्ताव किया जाता रहा है। इन सबके बावजूद कुछ अनिवार्यताएं सब समाजों में समान हैं। यही अनिवार्यता मानव अधिकार है, जो एक व्यक्ति को मानव होने के कारण मिलना चाहिए। मनुष्य को मनुष्य के रूप में स्थायित्व के लिए जिन मानव उपयोगी मूल्यों की तथा उच्च मर्यादाओं की आवश्यकता होती है उनको ही हम मानव अधिकार कह सकते हैं।

मानवाधिकार एक ऐसा अधिकार है। जिसके बिना एक मानवीय समुदाय का समुचित विकास सम्भव नही है और ये मानवधिकार आदिकाल से जब सभ्यता का विकास नही हुआ था, तब से हमारे समाज में किसी न किसी रूप में व्याप्त है। इन मानवाधिकारों की महत्व का वर्णन अनेक विद्धानों ने अपने कतव्यों में किया है हैराल्ड लास्की ने इनकी महत्ता की बात करते हुए कहा था कि ये ऐसे अधिकार है जिनके बिना कोई भी व्यक्ति अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास कर नही सकता है।

13.2 मानवाधिकार की अवधारणा

मानव इतिहास इस बात का उदाहरण है कि प्रत्येक मानव समाज में व्यक्ति की गरिमा तथा व्यक्ति एवं समाज के मध्यम सम्बन्धों को परिभाषित करने का सक्रिय प्रयास किया गया है। सामाजिक नैतिकता, व्यक्तिगत मूल्य, सामाजिक पदक्रम, जन्म, लिंग, शासकीय या दैवीय शक्तियाँ इन मूल्यों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही हैं।

इस प्रसंग में मानव अधिकार की अवधारणा जो कभी-कभी निजी अधिकारों पर बल देती है, समाज के साथ अन्तर्विरोध पैदा करती हैं। लेकिन इस संदर्भ में, जैसा कि मानव अधिकारों के प्रवर्तकों की धारणा है कि मानव अधिकार स्वयं में, अन्तर्निहित, अपृथकरणीय एवं वैश्विक है। सरल भाषा में कहें तो, कुछ मूलभूत मानव अधिकार हैं, जिन्हें व्यक्ति या समाज से अलग नहीं किया जा सकता है। 'निहित' इस अर्थ में है कि ये अधिकार जन्मजात हैं, 'न अलग किए जाने वाला' इस अर्थ में है कि इन्हें मानव से अलग नहीं किया जा सकता; तीसरे अपने प्रकृति (स्वभाव) में 'वैश्विक' है क्योंकि समस्त मानव समाज के लिए अनिवार्य है।

13.3.1 ऐतिहासिक विकास

यद्यपि मानव अधिकार 20वीं शताब्दी में विशेष रूप से लोकप्रिय हुआ, लेकिन इसकी जड़े सदैव मानव समाज में विद्यमान रही है।इसका चरित्र द्वंदात्मक रहा है और इसी आधार पर मानव विकास सम्भव हो सका है। मानव अधिकारों के विद्वान इसकी जड़ें प्राचीन यूनान एवं रोम में मानते हैं, जहाँ पर सर्व प्रथम स्टाईक दार्शनिकों ने प्राकृतिक कानून के रूप में मानव अधिकार की व्याख्या की थी। इस विचारधारा की स्थापना जेनो आफ सिटियम ने की थी, जिसका दृष्टिकोण था कि एक वैश्विक कार्यशक्ति सभी चीजों का निर्धारण करती है इसलिए प्राकृतिक

कानून के अनुसार, सब कुछ परखा जा सकता है। इस प्रकार स्टोइक दर्शन ने प्राकृतिक अधिकारों के स्वरूप निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। पाश्चात्य राजनीतिक दार्शनिक चिंतन में, यूनानी नगर राज्यों के समय से लेकर आधुनिक समय तक मानव अधिकार लगातार विचार-विमर्श का मुद्दा रहा है। सुकरात और प्लेटो के समय में मानव अधिकार सम्बन्धी विचार प्राकृतिक कानून और राजनीतिक आदर्शवाद से जुड़ा था। आगे चलकर, इन्हीं विचारों ने राजाओं एवं सम्राटों को भी प्रभावित किया। यह विचार बल पकड़ने लगा कि मानव जाति के कुछ प्राकृतिक अधिकार हैं जो राज्य की स्थापना से पहले से ही विद्यमान थे। स्टोइक दार्शनिकों एवं मध्यकालीन ईसाई चिन्तक सेंट आगस्टाइन ने इसी बात पर बल दिया है।मध्यकालीन समय में, जिसकी कालावधि 13वीं सदी से वेस्टफेलिया की संधि (1648) तक विस्तृत है, पुनर्जागरण और सामंतवाद के पतन का दौर भी है। इसी कालावधि में मनुष्य के परम्परागत विचारों, विश्वासों में परिवर्तन हुआ है। जन समुदाय ने यह महसूस किया कि मानव अधिकार एक सामाजिक आवश्यकता है। थामस एक्विनास (1224-1274) और ह्यूगोग्रोशियश (1583-1645) की शिक्षाएं, मैग्नाकार्टा (1215) अधिकार पत्र (1628) और ब्रिटिश अधिकार पत्र (1689) इस बदलाव के प्रमाण थे। इन सभी घटनाओं में विचार इस विश्वास के आधार भूमि थे कि समस्त मानव जाति कुछ मूलभूत, शाश्वत प्राकृतिक अधिकारों से युक्त हैं, जो राज्य या समाज के उदय के पहले भी मौजूद थे। इन्हीं विचारों ने आगे चलकर, 17वीं एवं 18वीं शदी के प्राकृतिक अधिकारों की पृष्ठभूमि तैयार की थी।

17वीं शताब्दी के वैज्ञानिक एवं बौद्धिक उपलब्धियों ने जिसमें, गैलिलियो, न्यूटन की खोजें, थामस हाब्स का भौतिकवाद, रेनेडेस कार्टेज और लीबनिब्ज का तर्कवाद, स्पिनोजाका सर्वेश्वरवाद और बेकन तथा लाक के अनुभववाद ने प्राकृतिक कानून और समस्त विश्व की एक व्यवस्था की धारणा को पुष्ट किया। 18वीं सदी जो ज्ञानोदय की सदी भी है, में मानवीय तर्क और विश्वास की वृद्धि हुई। इंग्लैण्ड में जानलाक, फ्रांस में मांटेस्क्यू, वाल्टेयर और रूसो ने मानवीय तर्क तथा प्राकृतिक कानूनों को बल प्रदान किया है। जानलाक जो आधुनिक उदारवाद का पिता तथा गौरवपूर्ण क्रांति का शिशु था, वास्तव में प्राकृतिक अधिकारों की धारणा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण बनाया। सामाजिक समझौता सिद्धान्त के अधिकारी विचारक होने के कारण लाक ने यह विचार दिया कि सामाजिक या राजनीतिक संगठन की स्थापना के पहले ही मनुष्य को कुछ मूलभूत प्राकृतिक अधिकार प्राप्त थे, जैसे-जीवन का अधिकार, स्वतन्त्रता और सम्पत्ति का अधिकार इन अधिकारों में महत्वपूर्ण थे। उसने इन अधिकारों की रक्षा करते हुए राज्य द्वारा हनन किए जाने पर व्यक्ति को राज्य के खिलाफ विद्रोह करने का अधिकार दिया है। 1688 के गौरवपूर्ण क्रांति के दौरान यह विचार इंग्लैण्ड में गूँज रहा था।

18वीं सदी के उत्तरवर्ती एवं 19वीं सदी के पूर्ववर्ती वर्षों में पश्चिमी संसार में जानलाक के विचारों का बहुत प्रभाव पड़ा। 1776 का पेनसिलवानिया घोषणा-पत्र, 1789 का फ्रंच मानव अधिकार घोषणा पत्र तथा 1789 का मेसाच्यूट घोषणा पत्र आदि सभी मानव अधिकारों के विचारों से भरे पड़े थे। ये घोषणा-पत्र एक तरह से राजनीतिक सर्वाधिकारवाद के खिलाफ घोषणाएं थीं। मौरिस क्रेंसटन जैसे विद्वानों की धारणा है कि यह विचार राज्य सर्वाधिकारवाद का प्रत्युत्तर था।

19वीं शती के जर्मन आदर्शवाद एवं यूरोपीय राष्ट्रवाद की पृष्ठभूमि पर उदित माक्र्सीय विचार पद्धति का व्यक्गित अधिकारों को नकारती रहीं लेकिन, अधिकारों को एक सामाजिक स्वीकृति का परिणाम मानती हैं।

इन सभी विचारधारात्मक आलोचनाओं एवं तर्कों के बावजूद प्राकृतिक अधिकार की धारणा किसी न किसी रूप में मानव समाज में जीती-जागती रही है। दासता के अंत की मांग, जनशिक्षा एवं सबके मताधिकार का आंदोलन इस बात का सबूत है। जर्मन नाजीवाद के उदय एवं पतन से मानव अधिकार के विषय में कुछ नए सवाल पैदा हुए। जर्मन आदर्शवाद ने मानव जाति पर भयंकर अत्याचार किए। जातीय उच्चता के सिद्धान्त ने जर्मन एवं

यहूदियों के बीच नए सम्बन्धों को जन्म दिया। यहूदियों एवं अन्य लोगों की हत्या करना हिटलरकालीन जर्मन लोगों का अधिकार बन गया था। लेकिन अंततोगत्वा यह मानव अधिकार नहीं था।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद गठित राष्ट्रसंघ (1919) के कारण मानव अधिकारों की अवधारणा का विकास अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हुआ। यद्यपि राष्ट्रसंघ की प्रसंविदा में मानव अधिकारों का स्पष्ट उल्लेख नहीं था, फिर भी राष्ट्रसंघ ने इस दिशा में विशेषकर अल्पसंख्यकों एवं युद्ध प्रभावित लोगों के बारे में ध्यान दिया। राष्ट्रसंघ ने श्रमिकों के अधिकारों एवं बालश्रम पर भी ध्यान दिया। यही कारण था कि 1919 में ही अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का गठन हुआ जो इस समय संयुक्त राष्ट्रसंघ की एक स्वायत्त संस्था के रूप में काम कर रहा है।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी में मानव अधिकार की धारणा विस्तृत हुई। बदलते विश्व ने वास्तव में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्तरों पर एक मानवीय जीवन दर्शन का विकास किया, तथा साथ ही इसके लिए संघर्ष भी चल रहा है। संविधानवाद की मांग प्रतिनिधिक सरकार, सार्विक मताधिकार, जनशिक्षा, एक तरफ से तथा दूसरी तरफ सोवियत समाजवादी गणतन्त्र के उदय ने मानव जाति के मध्य लोकतांत्रिक एवं सबसे अधिकारों के लिए मांग एवं संघर्ष का रास्ता चुना है।

13.3.2 मानवाधिकार का अर्थ एवं परिभाषायें

मानव समाज में कई स्तर पर कई तरह से विभेद मौजूद हैं। भाषा, रंग, मानसिक स्तर, प्रजातीय स्तर आदि स्तरों पर मानव समाज में भेदभाव का बर्ताव किया जाता रहा है। इन सबके बावजूद कुछ अनिवार्यताएं सब समाजों में समान हैं। यही अनिवार्यता मानव अधिकार है, जो एक व्यक्ति को मानव होने के कारण मिलना चाहिए। मनुष्य को मनुष्य के रूप में स्थायित्व के लिए जिन मानव उपयोगी मूल्यों की तथा उच्च मर्यादाओं की आवश्यकता होती है उनको ही हम मानव अधिकार कह सकते हैं। एक प्रकार से मानव ही इन सबका केन्द्र-बिन्दु है। सूक्ष्म में यह कह सकते हैं कि जो विधा मनुष्य को एक इज्जतदार और स्वतन्त्र जीवन प्रदान करती है, उसको मानव अधिकार कहा जा सकता है।

मानवाधिकार की प्रमुख परिभाषाएं निम्नवत् हैं:-

जे. सी. जौहरी के अनुसार, ''यह तथ्य हे कि मानव समाज में कई रूतरों पर विभेद मौजूद है चाहे वह भाषा, वर्ण या लिंग के आधार पर हो किन्तु इनके बावजूद कुछ अनिवार्यताएं यब समाजों में विद्यमान है, यही मानव अधिकार है, जो एक व्यक्ति को मानव होने के कारण मिलना चाहिए।''

आर. जे. विंसेट के अनुसार ''मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव होने के कारण प्राप्त हैं। इन अधिकारों को आधार मानव स्वभाव में निहित है।''

डेविड सेलबाई के अनुसार ''मानव अधिकार संसार के समस्त व्यक्ति को प्राप्त हैं, क्योंकि यह स्वयं में मानवीय है, वे पैदा नहीं किये जा सकते, खरीद या संविदावादी प्रक्रियाओं से मुक्त होते हैं।''

ए.ए. सईद के अनुसार, ''मानव अधिकारों का सम्बन्ध व्यक्ति की गरिमा से है एवं आत्म-सम्मान का भाव जो व्यक्तिगत पहचान को रेखांकित करता है तथा मानव समाज को आगे बढ़ाता है।''

सभी लेखकों का जोर मुख्यतः तीन बातों पर है, पहला मानव स्वभाव, दूसरा मानव गरिमा-तीसरा समाज का अस्तित्व। इनको ध्यान में रखते हुए प्लानो और ओल्टन ने एक संतुलित परिभाषा देने का प्रयास किया है जिसके अनुसार, ''मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो मनुष्य के जीवन उसके अस्तित्व एवं व्यक्तित्व के विकास के लिए अनिवार्य हैं।''

इस प्रकार परिभाषाओं से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि मानव अधिकार, मानवीय स्वभाव में ही अन्तर्निहित हैं तथा इन अधिकारों की अनिवार्यता मानव व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए सदैव से रही है। वस्तुतः मानवाधिकार की सभी परिभाषाएं मानवीय गरिमा से संबन्धित हैं और मानव व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास के लिए ये नितांत आवश्यक हैं।

13.4 मानवाधिकार के सिद्धान्त

मानव अधिकारों के बारे में और गहरी समझ विकसित करने के लिए यह जरूरी है कि इस विषय पर उपलब्ध राजनीतिक सिद्धान्तों का खुलासा किया जाय। इस संदर्भ में कई सिद्धान्त उल्लेखनीय हैं:

प्राकृतिक अधिकारों का सिद्धान्त

यह अधिकारों के सिद्धान्त का सबसे प्राचीन सिद्धान्त है और इसका उदय प्राचीन ग्रीक में हुआ था। इस सिद्धान्त के अनुसार, अधिकार मनुष्य के स्वभाव से सम्बन्धित है इसलिए स्वतः प्रामाणिक सत्य है। यह इस बात पर भी बल देता है कि प्राकृतिक अधिकार राज्य एवं समाज की स्थापना के पहले से ही मानव के साथ रहे हैं या मानव उनका उपभोग करता रहा है। लाक इस सिद्धान्त का अधिकारी प्रवर्तक था।

अधिकारों का कानूनी सिद्धान्त

प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त के प्रति क्रिया स्वरूप पैदा हुआ। इस सिद्धान्त के अनुसार, मानव अधिकार राज्य के कानूनी शक्ति द्वारा ही पैदा की जा सकती है। थामस ,हाब्स और बेंथम तथा आस्टिन ने इस सिद्धान्त को विकसित किया। अधिकार पूरी तरह से उपयोगितावाद पर आधारित हैं। व्यक्ति को सामाजिक हित में कुछ अधिकार छोड़ने पड़ते हैं। केवल कानून अधिकारों का जन्मदाता नहीं हो सकता है। परम्पराएं, नैतिकता, प्रथाए मानव अधिकार के विकास में मुख्य भूमिका निभाती हैं। इस सिद्धान्त ने अधिकारों के संरक्षण के लिए राज्य की भूमिका स्वीकार की।

गैर उपयोगितावादी सिद्धान्त

द्वार्वाकिन नाजिक और जानराल्य इस सिद्धान्त के प्रवर्तक हैं। इस विचार पद्धति के अनुसार व्यक्तिगत एवं सामाजिक अधिकारों के मध्य कोई आपसी विरोध नहीं होना चाहिए, बल्कि एक समभाव जरूरी है।

विधिक यथार्थवादी सिद्धान्त

यह एक समकालीन विचार माला है। यह मूलतः अमेरिका में राष्ट्रपति रुजवेल्ट के 'न्यू डील पालिसी' के दौरान उद्भूत हुआ था। कार्ल लेवलेन तथा रेस्क्यू पाउण्ड जैसे न्यायविदों ने इस सिद्धान्त को आगे बढ़ाया। यह सिद्धान्त मानव अधिकारों के व्यावहारिक पक्ष पर बल देता है।

मार्क्सवादी सिद्धान्त

मार्क्स के अनुसार, ''अधिकार वास्तव में वुर्जुवा (पूँजीपति) समाज की अवधारणा है जो शासक वर्ग को और मजबूत बनाती है। राज्य स्वयं में एक शोषणपरक संस्था है, अतएव पूँजीवादी समाज एवं राज्य में अधिकार वर्गीय अधिकार है।''

मार्क्स का दृढ़ विश्वास था कि मानव अधिकार एक वर्गहीन समाज में पैदा और जीवित रह सकता है। इस तरह का समाज वैज्ञानिक समाजवादी विचारों के अनुसार ही गढ़ा जा सकता है। सामाजिक और आर्थिक

अधिकार इस सिद्धान्त के लिए अधिक महत्वपूर्ण हैं। इस सिद्धान्त ने 'आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा पत्र (1966) को भी प्रभावित किया है।''

13.5. मानव अधिकार पर महत्वपूर्ण दृष्टिकोण

वास्तव में अधिकार, मानव जीवन और उसके सामाजिक जीवन के समग्र सम्बन्धों को व्यक्त करता है। सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक एवं विचारधारा के व्यापक फलक में ही अधिकारों को सही तरीके से देखा जा सकता है। इस सम्बन्ध में तीन महत्वपूर्ण विचार धाराओं पर प्रकाश डाला गया है:-

उदारवादी दृष्टिकोण

पाश्चात्य उदारवादी विचारधारा के अनुसार, व्यक्ति स्वभाव से ही एक निजी एवं स्वायत्त गुणों से ओत-प्रोत रहने वाला प्राणी है। समाज एवं राज्य की स्थापना मानव व्यक्तिगत अधिकारों एवं गुणों के रक्षार्थ ही हुई है। सम्पत्ति के अधिकार तथा स्वतन्त्र प्रतियोगिता इस विचारधारा के मुख्य लक्षण हैं। यही लक्षण उदारवादी विचारधारा के लिए मानव के मूल अधिकार हैं। इस व्यवस्था में पूँजीवाद का विकास हुआ। पूँजीवाद व्यवस्था से अन्य परेशानियां पैदा हुई। इन सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का निपटारा करने के लिए बीसवीं सदी में सकारात्मक उदारवादियों ने कल्याणकारी राज्य का दर्शन दिया। राज्य अब केवल पुलिस छवि वाला राज्य ही नहीं रहा, वरन नागरिकों के लिए विविध सामाजिक आर्थिक कल्याणकारी कार्यों की जिम्मेदारी भी निभाने लगा।

समाजवादी दृष्टिकोण

समाजवादी विचारधारा यह मानकर चलता है कि मनुष्य का स्वभाव और उसके जीवन की दशाएं बहुत सीमा तक मानव के भौतिक जीवन से प्रभावित होती हैं। एजेंल्स का विचार है कि सभ्यता के विकास के पहले मनुष्य आदिम साम्यवाद की अवस्था में रहता था। समाजवादी विचारकों माक्र्स और ऐजेंल्स का स्पष्ट मत था कि एक समाजवादी राज्य में ही वास्तविक रूप से मानव अधिकार अस्तित्व में रह सकता है। मनुष्य केवल एक स्वार्थी प्रतियोगी प्राणी ही नहीं वरन् सामाजिक भाव से प्रेरित प्राणी भी है। इसलिए एक साम्यवादी व्यवस्था में सब मनुष्य अपना विकास कर सकता है।

तृतीय विश्व का दृष्टिकोण

सर्वप्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि तृतीय विश्व के अधिकांष देश उपनिवेशवादी चंगुल से स्वतन्त्र हुए हैं। इसलिए इन देशों के सामने अपना आर्थिक विकास, तथा राष्ट्र निर्माण की जबरदस्त चुनौती थी। इन्हीं परिस्थितियों में मानव अधिकारों के सम्बन्ध में इन देशों का दृष्टिकोण निश्चित हुआ है। राज्य एवं नगारिकों के मध्य सम्बन्ध क्या हो? कौन सा अधिकार नागरिकों को मिलना चाहिए? इन सभी प्रश्नों का समुचित उत्तर खोजना ही तृतीय विश्व के देशों के महती चुनौती थी।

इन देशों में मानव अधिकारों की घोषणा उपर्युक्त दोनों विचारधाराओं को मिलाकर की गयी है। आर्थिक और सामाजिक विकास इन देशों की मुख्य चुनौती है इसलिए इन देशों के नीति निर्माताओं की मुख्य चिन्ता सामाजिक और आर्थिक अधिकारों की थी।

13.6 मानवाधिकारों का महत्व

मानवाधिकार एक ऐसा अधिकार है। जिसके बिना एक मानवीय समुदाय का समुचित विकास सम्भव नही है और ये मानवधिकार आदिकाल से जब सभ्यता का विकास नही हुआ था, तब से हमारे समाज में किसी न

किसी रूप में व्याप्त है। इन मानवाधिकारों की महत्व का वर्णन अनेक विद्धानों ने अपने कतव्यों में किया है हैराल्ड लास्की ने इनकी महत्ता की बात करते हुए कहा था कि ये ऐसे अधिकार है जिनके बिना कोई भी व्यक्ति अपने सम्पूर्ण व्यक्तिय का विकास कर नही सकता है। यद्यपि के रोटी,कपडा, मकान, मनुष्य के जीवन के लिये अपरिहार्य है, अपितु मानवाधिकार ही है जो मनुष्य को मानवगरिमा के साथ जीवनयापन करने में मदद करते है। इस प्रकार मानवाधिकार व्यक्ति को गरिमायुक्त भयमुक्त भूखमुक्त जीवन व्यतीत करने में सहायता प्रदान करते है मानवाधिकार की यह महत्ता एवं प्रास्थिति व्यक्ति और राज्य के बीच संघर्ष का परिणाम है। मानवाधिकार वास्तविकता में मात्र हमारे जीवन को इस योग्य बना देते है, कि हम अपने जीवन की जैविक एवं न्यूनतम आवश्यकताओं की ही पूर्ति नही करते है। अपितु ये हमारे जीवन को इस योग्य बना देजे है कि हम अपने जीवन का सम्पूर्ण चहुसुखी विकास कर सकते है। मानवाधिकार के उल्लघंन या हनन की बात करे तो यह स्थिति तैयार करता है, या उस परिस्थिति को परिलक्षित करता है जो आपसी संघर्ष राज्य के विरूद्ध विद्रोह युद्ध राजनैतिक एवं सामाजिक तनाव जैसी स्थितियों को उत्पन्न करते है। इन्हीं कारणों से मानवाधिकार को बात इस तथ्य से जानी जा सकती है, कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सन् 1945 में वैश्विक स्तर पर मानवाधिकारों की बात संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की गयी। इस सार्वभौमिक घोषणा पर जिन देशों ने हस्ताक्षर किया उन पर इसका बाध्यकारी प्रभाव था। इसके पश्चात् सन् 1966 में संयुक्त राष्ट्र की साधारण सभा द्वारा मानवाधिकारों के पालनार्थ निम्न दो प्रसंविदायें की गयी:- (1) सिविल एवं राजनैतिक अधिकार प्रसंविदा। (2) आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार प्रसंविदा।

इनमें से पहली प्रसंविदा को निर्मित करने के पीछे उद्देश्य यह था कि संविदा पर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों पर यह बाध्यता होगी की वे व्यक्तियों के मानवाधिकारों को कानूनी रूप से लागू करायें तथा दूसरी प्रसंविदा का उद्देश्य यह था कि राष्ट्र द्वारा मानवाधिकारों से सम्बन्धित विधि राष्ट्र स्तर पर बनाकर लागू की जायें। कई देशों ने इन प्रसंविदाओं का अनुसमर्थन 1981 के अन्त तक कर दिया। भारत भी इन प्रसंविदाओं का एक पक्षकार है। ''एन्थानी डी अमाती'' ने ''दी कन्सेप्ट आफ ह्यूमन राइट्स इन इन्टरनेशनल ला, कोलम्बिया ला रिव्यू, वाल्यूम 82 (1982) प्रष्ठ 111 में कहा है कि वर्तमान में मानवाधिकार को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्रदान करना और लागू करना, विदेशी सहायता प्राप्त करने की एक शर्त के रूप में स्थापित हो गया है, उदाहरणार्थ - संयुक्त राज्य अमेरिका की एक विधि के अनुसार वह उसे प्रत्येक राज्य की आर्थिक मदद नहीं करेगा, जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने यहां मानवाधिकारों को मान्यता नहीं प्रदान करते हैं या नहीं करते हैं। इस प्रकार मानवाधिकारों की आवश्यकता को देखते हुए एवं इसके अभाव में, उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों को स्मरण में रखते हुए मानवाधिकारों का महत्व प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है।

मानवाधिकार सभ्य समाज की आधारशिला है। लोकतांत्रिक व्यवस्था के मजबूत होने के साथ-साथ इन अधिकारों को आर्थिक सम्मान देना अनिवार्य हो गया है। निम्नलिखित कारणों से, मानवाधिकारों की रक्षा और प्रवर्तन करना जरूरी है ताकि मानव की गरिमा को कायम रखा जा सके- प्रथम, मानवाधिकार व्यक्ति को जन्म से ही प्राप्त होते है और उसके सर्वांगीण विकास के लिए इनकी रक्षा की जानी आवश्यक है। इन्हे मानवाधिकार इसीलिए कहा जाता है कि ये मानव के जन्मसिद्ध अधिकार है और इन्हें मानव से अलग कर देने पर वहीं मानव ही नहीं रहेगा। द्वितीय, व्यक्ति का स्थान अन्य सब संस्थानों से ऊंचा है इसीलिए उसके अधिकारों की रक्षा को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। समाज, सरकार व अन्य संगठन तभी सफल माने जा सकते हैं जब वे व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा कर पायें। तृतीय, मानवाधिकारों की रक्षा इसीलिए जरूरी है कि इनकी रक्षा से राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा जुड़ी है। नाजी, जर्मनी, फासी इटली और अनेक कम्युनिस्ट सरकारों ने व्यक्ति के अधिकार की अवहेलना की फलतः उन्हें जनता के विरोध और अन्य राष्ट्रों से युद्ध का सामना करना पड़ा और अंततः सरकारें

नष्ट हो गई। चतुर्थ, कल्याणकारी राज्य सिद्धान्त के अनुसार राज्य का पहला कर्तव्य है जनता का कल्याण और सुख की व्यवस्था करना। इसकी प्राप्ति के लिए मानवाधिकारों की रक्षा करना जरूरी है। पंचम्, आज के अन्तर्राष्ट्रीय के दौर में कोई भी देश इन अधिकारों को अनदेखा करके अपना अस्तित्व नहीं बचा सकता। संयुक्त राष्ट्रसंघ के दबाव और अन्य राष्ट्रों के बहिष्कार के चलते प्रत्येक देश को इन अधिकारों को मान्यता देनी पड़ती है।

मानवाधिकार शब्द का इस अर्थ में प्रयोग 1940 में श्रीमती इलेनोर रूजवेल्ट ने किया। उन्होंने पाया कि पूर्व में प्रयोग होने वाले शब्द ''मनुष्य का अधिकार'' में कुछ लोग महिलाओं का अधिकार शामिल नहीं मानतें। हलांकि इस अवधारणा का अस्तित्व इससे पहले भी रहा था।

प्राचीन काल के विश्व में किसी न किसी रूप में इस अवधारणा ने अपना स्थान बना लिया था। प्राचीन यूनान में अरस्तू का 'न्याय का सिद्धान्त' सामने आया जिसके अनुसार शुभों का बंटवारा अनुपातिक रूप में होना चाहिए। रोम में सिसरो ने जुस नेचुरल कानून सब लोगों पर हर समय लागू है। प्राचीन भारत में महाभारत में शांति पर्व में शासक के आचरण और राजस्व के सिद्धान्त के बारे में कहा गया है। अर्थशास्त्र में प्रजा के कल्याण में राजा का कल्याण बताया गया है। सम्राट अशोक ने कलिंग अभिलेख में प्रजा को संतान की तरह माना है और अधिकारियों को जनता पर अत्याचार न करने की चेतावनी दी है।

मध्यकाल में कैथोलिक धर्म ने प्राकृतिक कानून का सिद्धान्त दिया जिसके अनुसार ईश्वर का कानून ही प्राकृतिक कानून है, जो अन्य कानून से ऊपर है। उस काल में न्यायपूर्ण कानून को ही सम्मान देने की बात कही गई है।

आधुनिक काल में पुनर्जागरण के दौर के बाद प्राकृतिक न्याय और प्राकृतिक अधिकारों की स्थापना हुई। प्राकृतिक न्याय के अनुसार वे ही अधिकार माने जाने योग्य है, जो तर्कसंगत है और प्रकृति से संगति रखते है। मिल्टन ने प्राकृतिक स्वतंत्रता की बात कही जो जान लाक ने सभी लोगों के लिए समान अधिकारों की बात कही। बेथम ने उपयोगितावाद का सिद्धान्त दिया और जे0एस0 मिल ने स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अधिकार के अधिकार की बात सामने रखी। 1776 में अमरीकी क्रान्ति के बाद स्वाधीनता की घोषणा की गइ जिसमें कहा गया कि ''हमारे लिए यह स्वयंसिद्ध सत्य है कि सभी मनुष्य जन्म से समान है।'' फ्रांस में 1789 में क्रान्ति हुई जिसमें स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के नारे दिये गये। फ्रांस में 1789 में संविधान बना जिसमें मनुष्य के जन्मजात अधिकारों को मान्यता दी गई।

माक्र्स ने मनुष्य के अधिकारों की अलग तरह से व्याख्या की है। संपत्ति के अधिकार को उन्होंने बुर्जुआ और पूंजीवादी मांग बताया तथा स्वतंत्रता की व्याख्या श्रमिकों की पूंजीवादी शोषण से मुक्ति के रूप में की। फिर भी कुछ ऐसे विचार अवश्य माक्र्सवाद और समाजवाद ने दिये, जो मानवाधिकारों में शामिल किये गये, जैसे- समाज कार्य के लिए समान वेतन, रोजगार का अधिकार, बेकारी की स्थिति में सरकारी सहायता आदि। लेनिन ने कहा कि अधिकारों को समझने के लिए मनुष्य को समाज के अभिन्न अंग के रूप में समझना चाहिए और समाज की इच्छापूर्ति में ही व्यक्ति की स्वतंत्रता निहित है।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद राष्ट्र संघ चार्टर जारी किया गया। राष्ट्रसंघ के सहयोग में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संघ बना जिसने वेतन, कार्य-दशा, कार्य के घंटे और सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में काम किया। 1925 में ''बालकों के अधिकार'' की जेनेवा घोषणा की गई और दासता व बलातश्रम के उन्मूलन हेतु कार्य किये।

अप्रैल 1945 में सान फ्रांसिस्को में चार महाशक्तियों ने एक ड्राफ्ट चार्टर पर विचार करके संयुक्त राष्ट्र चार्टर स्वीकृत किया। इसकी प्रस्तावना में कहा गया है- ''हम स्त्री पुरूषों के समान .....मूल मानवाधिकारों में,

मानव जाति की गरिमा और मूल्य में, स्त्री पुरूषों के समान अधिकार में आस्था सुनिश्चित करने के लिए .....'' इसी प्रकार अनुच्छेद 55 में कहा गया ''संयुक्त राष्ट्र'' मानवाधिकार और मूल स्वतंत्रताओं के लिए सार्वभौम सम्मान और पालन को, बढ़ायेगा।''

अधिकार को अनेक रूपों में परिभाषित कियागया है। एक तथ्य पर सभी विचारक सहमत है कि अधिकार कुछ करने या रखने की स्वाधीनता है जो विधि द्वारा मान्यता प्राप्त और संरक्षित है। अधिकार की अवधारणा की प्रगति कदम दर कदम हुई है। इसका अगला कदम है विधिक अधिकार जो किसी विशेष विधि के दायरे में आने वाले व्यक्ति केा उस विधि के द्वारा प्राप्त होते हैं। ये अधिकार आत्यंतिक नहीं है और उस विधि द्वारा लगाये गये प्रतिबंधों से सीमित होते हैं। मूल अधिकार इस अवधारणा का अगला कदम है। ये ऐसे आधारभूत अधिकार है जो किसी नागरिक के बौद्धिक, नैतिक और आध्यत्मिक विकास के लिए अनिवार्य है। इन अधिकारों के अभाव में व्यक्ति का विकास अवरूद्ध हो जायेगा और उसकी शक्तियां अविकसित रह जायेंगी। लेकिन यह अधिकार किसी देश के नागरिक को ही उपलब्ध होते हैं और अ-नागरिक इन अधिकारों को प्राप्त करने का दावा नहीं कर सकता है। मूल अधिकारों पर भी तर्कसंगत प्रतिबंध लगाये जा सकते हैं। अधिकार की अवधारणा का विकास और आगे जाकर मानवाधिकार के रूप में हुआ है।

आसान रूप में कहा जाये तो मानवाधिकार ऐसे अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव प्राणी होने के नाते प्राप्त हैं, भले ही उसकी राष्ट्रीयता, लिंग, व्यवसाय, वर्ग और सामाजिक-आर्थिक स्थिति कुछ भी हो। मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 में मानवाधिकारों को परिभाषित कियागया जो धारा 2(डी) में वर्णित है। इसके अनुसार मानवाधिकार का अर्थ व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता व गरिमा से संबंधित उन अधिकारों से है जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत है या अन्तर्राष्ट्रीय करारों में वर्णित है और भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय है। इन अधिकारों के बिना व्यक्ति की स्थिति पशु की भांति हो जायेगी। इनके माध्यम से ही व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक और आत्मिक आवश्यकताएं पूरी कर पाता है और अपने व्यक्तित्व का विकास करने में समर्थ हो पाता है। मानव होने की धारणा के साथ ही कुछ अधिकार व स्वतंत्रताएं जुड़ी हुई हैं। जिनसे वंचित होने पर मानव अपनी मानवता से ही वंचित हो जाता है। इसीलिए मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा को मानव जाति का महाधिकार पत्र ठीक ही कहा गया है।

13.7 सारांश

सारांश के रूप में मानवाधिकार एक ऐसा अधिकार है, जिसके बिना एक मानवीय समुदाय का समुचित विकास सम्भव नही है। मानवाधिकार एक ऐसा अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव प्राणी होने के नाते प्राप्त हैं। इनके माध्यम से ही व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक और आत्मिक आवश्यकताएं पूरी कर पाता है और अपने व्यक्तित्व का विकास करने में समर्थ हो पाता है।

13.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) मानवाधिकार से आप क्या समझते हैं?

(2) मानवाधिकार के ऐतिहासिक विकास पर प्रकाश डालिए।

(3) मानवाधिकार के सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए।

(4) मानव अधिकार पर महत्वपूर्ण दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए ।

(5) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(अ) उदारवादी दृष्टिकोण

(ब) विधिक यथार्थवादी सिद्धान्त

(स) प्राकृतिक अधिकारों का सिद्धान्त

(द) समाजवादी दृष्टिकोण

13.9 सन्दर्भ पुस्तकें

- गौतम, रमेश प्रसाद, मानव अधिकार: विविध आयाम, विश्वविद्यालय प्रकाशन म.प्र. वर्ष 2003.
- राय, अरूणा, भारत का राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, वर्ष 2005
- श्रीवास्तव, मुकुल, मानवाधिकार और मीडिया, अटलांटिक पब्लिसर्श, नई दिल्ली, 2007.
- अवस्थी, एस0 के0, मानव अधिकार विधि, ओरियेन्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 2013.
- सिंह, सुरेन्द्र, मिश्र, पी॰ डी॰, समाज कार्य इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियाँ, न्यू रा ॅयल बुक कम्पनी लखनऊ, वर्ष 2009
- सिंह, सुरेन्द्र, वर्मा, आर॰ बी॰ एस॰, भारत में समाज कार्य का क्षेत्र, रा ॅयल बुक कम्पनी लखनऊ, वर्ष 2009.

संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकार सम्बन्धी घोषणाएँ

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 भूमिका

14.3 मानवाधिकार सम्बन्धी घोषणाए

14.4 मानवाधिकार एवं संयुक्त राष्ट्र चार्टर का उदेश्य

14.5 मानवाधिकार एवं महत्वपूर्ण अन्त्तराष्ट्रीय घोषणाएं एवं प्रसंविदा

14.6 सारांश

14.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.8 सन्दर्भ पुस्तकें

14.0 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप-

1. संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकार सम्बन्धी घोषणाओं के विषय में जान सकेंगे।

2. संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकार सम्बन्धी घोषणाएँ के विकास एवं घोषणा पत्र की भूमिका को समझ सकेंगे |

14.1 प्रस्तावना

मानव अधिकार की अवधारणा प्राचीन भारतीय सभ्यता में प्रारम्भ से रही है। प्राचीन भारत में सनातन धर्म का विधान न केवल धार्मिक एवं नैतिक विधान था वरन् राजा के व्यवहारों, दण्ड विधानों को भी नियन्त्रित एवं संतुलित करता था। मध्ययुगीन काल में भी मानवाधिकार किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा है। मानवाधिकार के बिना मानवीय समुदाय का समुचित विकास सम्भव नही है और ये मानवधिकार आदिकाल से जब सभ्यता का विकास नही हुआ था, तब से हमारे समाज में किसी न किसी रूप में व्याप्त है। वर्तमान समय में भी मानवाधिकार की उपादेयता को नकारा नहीं जा सकता है।मनुष्य को मनुष्य के रूप में स्थायित्व के लिए जिन मानव उपयोगी मूल्यों की तथा उच्च मर्यादाओं की आवश्यकता होती है उनको ही हम मानव अधिकार के रूप में समझ सकते हैं। मानव समाज में भाषा, रंग, मानसिक स्तर, प्रजातीय स्तर आदि स्तरों पर भेदभाव किया जाता रहा है। इन सबके बावजूद कुछ अनिवार्यताएं सब समाजों में समान हैं। यही अनिवार्यताएं मानव अधिकार है। जो एक व्यक्ति को मानव के रूप में प्राप्त होनी चाहिए।

14.3 मानवाधिकार सम्बन्धी घोषणाएँ

पृथ्वी पर जब से आज के मानव के रूप में मानव ने अपने को जाना है तभी से उसको अपने अधिकारों के प्रति ललक पैदा हुई और किसी न किसी रूप में वह इनको प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहा। इसके विषय में चर्चायें हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भी रही है, लेकिन उनको मनाव अधिकार जैसा नाम प्रदान नहीं किया। आधुनिक इतिहासज्ञ इस विधा का उद्गम 1521 के मैग्नाकार्टा से मानते हैं। यद्यपि मैग्नाकार्टा के सूक्ष्मावलोकन पर ये पता चलता है कि ये एक उस समय के समुदाय विशेष की तरफ से राजा को दिया हुआ प्रपत्र था, जिसमें राजा को उन लोगों के लिए कुछ विशेष अधिकार देने के लिए बाध्य किया गया था। इस मैग्नाकार्टा द्वारा जिन अधिकारों की स्वीकृति मिली उसमें न तो विश्वव्यापी मानव अधिकार जैसी कोई चीज है और न ही आम मानव की मूल स्वतन्त्रताओं पर प्रकाश डालता है। यथार्थ में 1776 में जब अमेरिका स्वतन्त्र हुआ और उसका संविधान निर्मित हुआ तो उसमें मानव अधिकार को 'बिल ऑफ राइट्स' के नाम से सम्मिलित किया गया। कहा जाय तो यहीं से आज की मानव अधिकार विधा का श्रीगणेश माना जा सकता है। इसके बाद 1789 में फ्रांस की क्रान्ति द्वारा मनुष्य के मानव अधिकारों व नागरिक अधिकार का सूत्रपात हुआ। 1929 में अन्तर्राष्ट्रीय विधि संस्था (न्यूयार्क) अमेरिका ने मानव अधिकार एवं कर्तव्यों पर एक घोषणा पत्र तैयार किया। 1945 में अमेरिकन सभा में एक प्रस्ताव पास किया गया जिसके अनुसार एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के गठन की एक रूपरेखा बनी जोकि विश्व में मानव व मानव के अधिकारों की रक्षा कर सके।

द्वितीय विश्व युद्ध में राजनैतिक तथा सामाजिक रूप से अल्पसंख्यक लोगों पर जो कहर बरपा किया उसने विश्व की मानवता एवं मित्र राष्ट्रों की भावनाओं को झकझोर कर रख दिया और उन्हें इस विचार को मानने के लिए बाध्य कर दिया कि विश्व में एक ऐसी संस्था का सृजन आवश्यक है जो विश्व के सभी देशों में भ्रातृत्व भाव को जाग्रत कर सके और मानव अधिकार तथा मानव स्वतन्त्रताओं को सुनिश्चित कर सके। इसी के आधार पर संयुक्त राष्ट्र संघ का गठन हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र में सम्मिलित प्रस्ताव में इन उद्देश्यों का दिग्दर्शन किया गया है।

''हम अन्तर्राष्ट्रीय मानव दृढ़ प्रतिज्ञ होकर.....मानव के मूलभूत अधिकारों में, मानवता के गौरव एवं मूल्यों में तथा सभी पुरूष एवं महिलाओं में एवं सभी छोटे व बड़े देशों के एक समान अधिकारों में पूर्ण आस्था व्यक्त करते हैं।''

इस अन्तर्राष्ट्रीय घोषणापत्र में ये भी दर्शाया गया है कि संयुक्त राष्ट्र संघ का गठन मुख्यतया मानव की विश्व व्याप्त आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अन्य मानव उपयोगी समस्याओं के निराकरण के लिए तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव प्राप्ति के लिए, सार्वभौमिक मानवाधिकारों का मानव की मूलभूत स्वतन्त्रताओं में मूल, वंश, लिंग, भाषा व धर्म से निरपेक्ष होकर प्रगति हेतु हुआ है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने उपरोक्त मानवोपयोगी अधिकारों तथा मानव की मूलभूत स्वतन्त्रताओं में वृद्धि हेतु तथा उनके सतत प्रयोग निमित्त, जो अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार सम्बन्धी बिल महासभा के द्वारा पास कराया उसमें निम्नलिखित अन्तर्राष्ट्रीय घोषणायें एवं प्रपत्र सम्मिलित हैं:

- अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार घोषणा-1948
- अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक व राजनैतिक अधिकार प्रतिज्ञापत्र-1966
- अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक प्रतिज्ञापत्र-1966

- अन्तर्राष्ट्रीय संस्था लाभ प्राप्ति हेतु वैयक्तिक स्वतन्त्रता के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय वैकल्पिक व्यवस्था संलेख-1966

ये उपरोक्त घोषणा एवं प्रतिज्ञापत्र निम्नांकित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निर्मित किये गये हैं:-

1. सारे मानव-समाज को बिना किसी भेद के इन मानवाधिकार प्रपत्रों की सीमा के अन्तर्गत लाया जा सके।
2. बिना, मूल, वंश, लिंग, भाषा अथवा धार्मिक विभेद के इन सभी अधिकारों का समान उपयोग।
3. इन अधिकारों के कार्यान्वयन हेतु अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना सृजन।

संयुक्त राष्ट्र संघ की दृष्टि में मानव अधिकार एवं मूलभूत स्वतन्त्रतायें अविभाज्य व अन्र्तआश्रित विधायें हैं। इसके साथ ही संघ की दृष्टि में मानव के नागरिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों के कार्यान्वयन एवं प्रगति पर समान रूप से शीघ्र ही ध्यान दिया जाना चाहिए, तभी यथार्थ में विश्व में मानव कहलाने का हकदार है। मानवाधिकारों को मुख्यतया तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

- नागरिक व राजनैतिक अधिकार।
- आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकार।
- वर्गीय अधिकार।

संयुक्त राष्ट्र संघ की इस सोच को संरचनात्मक प्रस्ताव के रूप में तेहरान 1968 के नाम से घोषित किया गया है। इस प्रस्ताव की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं:-

- मानव की विश्वव्यापी विभिन्न प्रकार की समस्याओं को एक सूत्र में पिरोना।
- मानव अधिकारों के हनन के मुख्य कारणों को पहचानना।
- विश्व की विभिन्न परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए मानव अधिकारों की सतत उपलब्धि के लिए ठोस कार्यवाही करना।
- विश्व में व्याप्त राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक भिन्नताओं के विषय में ज्ञान उपलब्ध कराना।
- आज के मानव का, आज के विश्व की गतिशील परिस्थितियों में स्थान विशेष का ज्ञान उपलब्ध कराना।

जो घोषणायें प्रतिज्ञापत्र व समझौते अब तक संयुक्त राष्ट्र संघ ने किये हैं, उनको उनके विषय के आधार पर निम्नलिखित श्रेणियों में बांटा जा सकता है:-

- अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार घोषणा
- बाल सम्बन्धी घोषणायें
- महिला सम्बन्धी घोषणायें
- दासता सम्बन्धी घोषणायें
- शरणार्थी सम्बन्धी घोषणायें

- श्रम सम्बन्धी घोषणायें
- वेश्यावृत्ति निवारण सम्बन्धी घोषणायें
- न्याय तथा न्यायालय सम्बन्धी घोषणायें
- आदिवासी सम्बन्धी घोषणायें
- बन्दी विषयक घोषणायें
- सामाजिक विकास सम्बन्धी घोषणायें
- रंगभेद निवारण सम्बन्धी घोषणायें
- शिक्षा, संस्कृति एवं राजनैतिक विषयक घोषणायें
- युद्ध निवारण सम्बन्धी घोषणायें

मानव अधिकारों का वैश्विक घोषणापत्र वास्तव में समस्त मानव जाति के लिए कुछ मूलभूत अधिकारों की घोषणा करता है। स्वतन्त्रता, समानता एवं सामाजिक न्याय मानव अधिकारों के महत्वपूर्ण अभिलक्षण हैं।

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा

मानव परिवार के सभी सदस्यों की अंतर्निहित गरिम और सम्मान तथा अभेद्य अधिकार विश्व में स्वतंत्रता न्याय और शाति के आधार है। मानव अधिकारों की उपेक्षा और अवमान के परिणामस्वरूप ऐसे बर्बर कार्य हुए है जिन्होने मानप की अन्तरात्मा पर आधार किया है और ऐसे विश्व के निर्माण को जिसमें सभी मानव वाक् स्वातंत्रत और विश्वास की स्वतंत्रता का तथा भय और अभाव से मुक्ति का उपभोग करेगें जिसे जनसामान्य की उच्चतम आकांक्षा घोषित किया गया है।

यदि मनुष्य को अत्याचार और उत्पीड़न के विरूद्ध अन्तिम अस्त्र के रूप में विद्रोह का अवलंब लेने के लिए विवश नही किया जाना है। तो यह आवश्यक के कि मानव अधिकारी का संरक्षण विधि सम्मत शासन द्वारा किया जाता चाहिए। राष्ट्र के लोगों ने चार्टर में मूल मानव अधिकारों में मानव देह की गरिमा और महत्व तथा पुरूषों और स्त्रियों के समान अधिकरों में अपने विश्वास की पुन पुष्टि की है, और सामाजिक प्रगति करने तथा अधिकाधिक स्वतंत्रता के साथ उत्कृष्ट जीवन स्तर की प्रप्ति का निर्णया किया है। सदस्य राज्यों ने यह प्रतिज्ञा की है कि वे संयुक्त राष्ट्र के सहयोग से मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सार्वभौम सम्मान जाग्त करेगें और उनका पालन कराएगें।

इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं के प्रति एक ही दृष्टि इस प्रतिज्ञा को पूरी तरह सफल बनाने के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है इसलिए:-

मानव अधिकारों की इस सर्वभौम-घोषणा कों सभी लोगों और सभी राष्ट्रों के लिए इस उदेश्य की प्रप्ति के लिए एक सामान्य मानक के रूप में उद्घोषित करती है कि प्रत्येक व्यक्ति और समाज का प्रत्येक अंग इस घोषणा को निरन्तर ध्यान में रखतें हुए शिक्षा और संस्कार द्वारा इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान जागृत करेगा और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रगामी उपयों के द्वारा, सदस्य राज्यों के लोगों के बीच और उनकी अधिकारिता के

अधीन राज्यक्षेत्रों के लोगों के बीच इन अधिकारों की विश्वव्यापी और प्रभावी मान्यता और उनके पालन को सुनिश्चित करने के लिए प्रयास करेगा।

अनुच्छेद-1

सभी मनुष्य जन्म से ही गरिमा और अधिकारों की दृष्टि से स्वतंत्र और समान है। उन्हें बुद्धि और अन्तश्चेतना प्रदान की गई है। उन्हें परस्पर भ्रातृत्व की भावना से कार्य करना चाहिए।

अनुच्छेद-2

प्रत्येक व्यक्ति इस घोषणा में उपवर्णित सभी अधिकारों और स्वतंत्रताओं का हकदार है इसमें मूलवंश, वर्ण लिंग भाषा धर्म राजनीति या अन्य बिचार राष्ट्रीय या सामाजिक उद्भव संपत्ति जन्म या अन्य प्रास्थिति के आधार पर कोई विभेद नहीं किया जाएगा।

इसके अतिरिक्त किसी देश या राज्यक्षेत्र की चाहे वह स्वधीन हो न्यास के अधीन हो, अस्वशासी हो या प्रभूता पर किसी मर्यादा के अधीन हो राजनीतिक अधिकारिता-विषयक या आधार पर उस देश या राज्यक्षेत्र के किसी व्यक्ति सें कोई विभेद नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद-3

किसी भी व्यक्ति को दास या गुलाम नहीं रखा जाएगा, सभी प्रकार की दासता और दाम व्यापार प्रतिषिन्द्ध होगा।

अनुच्छेद-4

किसी भी व्यक्ति को यंत्रणा नहीं दी जाएगी या उसके साथ क्रूर, अमानवीय अपमानजक व्यवहार नहीं किया जाएगा या उसे ऐसा दण्ड नहीं दिया जाएगा।

अनुच्छेद-5

प्रत्येक व्यक्ति को सर्वत्र विधि के समक्ष व्यक्ति के रूप में मान्यता का अधिकार है।

अनुच्छेद-6

सभी व्यक्ति विधि के समक्ष समान है और किसी विभेद के बिना विधि के समान संरक्षण के हकदार है। सभी व्यक्ति इस घोषणा के अतिक्रमण में विभेद के विरूद्ध और ऐसे विभेद के उछीपन के विरूद्ध समान संरक्षण के हकदार हैं।

अनुच्छेद-7

प्रत्येक व्यक्ति को संविधान या विधि द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों का अतिक्रमण करते वाले कार्यो के विरूद्ध सक्षम राष्ट्रीय अधिकरणों द्वारा प्रभावी उपचार का अधिकार है।

अनुच्छेद-8

किसी भी व्यक्ति को मनमानों ढंग से गिरफतार, निरूद्ध या निर्वासित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद-9

प्रत्येंक व्यक्ति अपने अधिकारों और बाध्यताओं के और उसके विरूद्ध आपराधिक आरोप के अवधारण में पूर्णतया समान रूप से स्वतंत्र और निष्पक्ष अधिकरण द्वारा ऋजु और सार्वजनिक सुनवाई का हकदार है।

अनुच्छेद-10

1. ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को जिस पर दाण्डित अपराध का आरोप है यह अधिकार है कि उसे तब तक निरपराध माना जाएगा जब तक कि उसे लोक विचारण में जिसमें उसे अपनी प्रतिरक्षा के लिए आवश्यक सभी गांरटिया प्राप्त हो, विधि के अनुसार दोषी साबित नहीं कर दिया जाता।
2. किसी भी व्यक्ति को किसी ऐसे कार्रू वा लोप के कारण जो किए जाने के समय राष्ट्रय या अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अधीन दाण्डिक अपराध नहीं था, किसी दण्डिक अपराध का दोषी अभिनिर्धारित नहीं किया जाएगा। उस शास्ति से अधिक शस्ति अधिरोपित नहीं की जाएगी जो उस समय लागू थी जब अपराध किया गया था।

अनुच्छेद-11

किसी भी व्यक्ति को एकांतता कुटुम्ब घर या पत्र-व्यवहार के साथ मनमाना हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा और उसके सम्मान और ख्याति पर प्रहार नहीं किया जाएगा। प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे हस्तक्षेप या प्रहार के विरूद्ध विधि के संरक्षण का अधिकार है।

अनुच्छेद-12

1. प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक राज्य की सीमाओं के भीतर संचरण और निवास की स्वतंत्रता का अधिकार है।
2. प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश को या किसी भी देश को छोड़ने और देश में वापस आने का अधिकार है।

अनुच्छेद-14

1. प्रत्येक व्यक्ति को उत्पीड़न के कारण अन्य देशों में शरण मांगने और लेने का अधिकार है।
2. अस अधिकार कार्यों से वास्तविक रूप से उद्भत अभियोजनों की दशा में नहीं लिया जा सकेगा।

अनुच्छेद-15

1. प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्रीयता का अधिकार है।
2. किसी भी व्यक्ति को मनमाने ढंग से न तो उसकी राष्ट्रीयता और न राष्ट्रीयता परिवर्तित करने के अधिकार से वंचित किया जाएगा।

अनुच्छेद-16

1. वयस्क पुरूषों और स्त्रियों को मूलवंश राष्ट्रीता या धर्म के कारण किसी भी सीता के बिना, विवाह करने और कुटुम्ब स्थापित करने का अधिकार है। वे विवाह के विषय में विवाहित जीवनकाल में और उसके विघटन पर समान अधिकारों के हकदार है।
2. विवाह के इच्छुक पक्षकारों की स्वतंत्र और पूर्ण सम्मति से ही विवाह किया जाएगा।

3. कुटुम्ब समाज की नैसगिंक और प्राथमिक सामाजिक इकाई है और इसे समाज और राज्य द्वारा सरंक्षण का अधिकार है।

अनुच्छेद-17

1. प्रत्येक व्यक्ति को अकेले या अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर सम्पत्ति का स्वामी बनने का अधिकार है।
2. किसी को भी उसकी सम्पत्ति से मनमाने ढंग से वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद-18

प्रत्येक व्यक्ति को विचार अतंकरण और धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार है। इस अधिकार के अन्तर्गत अपने धर्म या विश्वास को पविर्तित करने स्वतंत्रता और अकेले या अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर तथा सार्वजनिक रूप से या अकेले शिक्षा व्यवहार पूजा और पालन में अपने धर्म या विश्वास को प्रकट करने स्वंतत्रता भी है।

अनुच्छेद-19

प्रत्येक व्यक्ति अभिमत और अभिव्यक्ति की स्वंतत्रता का अधिकार है इस अधिकार के अन्तर्गत हस्तक्षेप के बिना अभिमत रखते और किसी भी संचार माध्यम से और सीमाओं का विचार किए बिना जानकारी माॅगने प्राप्त करने और देने की स्वतंत्रता भी है।

अनुच्छेद-20

1. प्रत्येक व्यक्ति को शन्ति पूर्वक सम्मेलन और संगम की स्वतंत्रता का अधिकार है।
2. किसी भी व्यक्ति को किसी संगम में सम्मिलित होने के लिए विवश नही किया जाएगा।

अनुच्छेद-21

1. प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की सरकार में सीधें या स्वतंत्रपूर्वेक चुने गए प्रतिविधियों के माध्यम से लेने का अधिकार है।
2. लोक व्यक्ति को अपने देश की लोकसेवा में समान पहुँच का अधिकार है।
3. लोक सरकार के प्राधिकार का आधार होगा, इसकी अभिव्यक्ति आवधिक और बिन निर्वाचनों में होगी, जो सार्वभौग और समान मताधिकार द्वारा होगें और गुप्त मतदान द्वारा या समतूल्य स्वतंत्र मतदान की प्रक्रिया द्वारा किए जाएगें।

अनुच्छेद-23

1. प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करने का नियोजन के स्वतत्रत चयन का कार्य की न्यायोति और अनुकूल दशाओं का और बेरोगारी के विरूद्ध संरक्षण का अधिकार है।
2. प्रत्येक व्यक्ति को किसी विभेद के बिना समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार है।
3. प्रत्येक व्यक्ति को जो कार्य करता है ऐसे न्यायोचित और अनुकूल पारिश्रमिक का अधिकार है जिससे स्वयं उसका और उसके कुटुम्ब का मानव गरिमा के अनुरूप जीवन सुनिश्चित हो जाए और वदि आवश्यक हो तो सामाजिक संरक्षण के अन्य साधनों द्वारा उसे अनुपूरित किया जाए।

4. प्रत्येक व्यक्ति को अपने हितों के संरक्षण के लिए व्यवसाय संघ बनाने और उनमें सम्मिलित होने का अधिकार है।

अनुच्छेद-24

प्रत्येक व्यक्ति को विश्राम और अवकाश का अधिकार है जो स्वयं उसके और उसके कुटुम्ब के स्वास्थ्य और कल्याण के लिए पर्याप्त है जिसके अन्तर्गत भोजन वस्त्र मकान और चिकित्सा तथा आवश्यक सामाजिक सेवायें भी है और बेरोजगारी रूग्णता अशक्तता वैधव्य वृद्धावस्था या उसके नियंत्रण के बाहर परिस्थितियों में जीवन-यापन के अभाव की दशा में सुधार का अधिकार है।

मातृत्व और बाल्यकाल विशेष देखभाल और सहायता के हकदार है। सभी बच्चें चाहे उनका जन्म विवाहित जीवनकाल में हुआ हो या अन्यथा, समान सामाजिक संरक्षण प्राप्त करेगें।

अनुच्छेद-26

1. प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है। कम से कम प्राथमिक और मौलिक स्तर पर शिक्षा निःशुल्क होगी। प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य होगी। तकनीकी और वृत्तिक शिक्षा साधारणत उपलब्ध कराई जाएगी। और उच्च शिक्षा, सभी व्यक्तियों को गुणगुण के आधार पर समान रूप से प्राप्त होगी।
2. शिक्षा का लक्ष्य मानव व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति आदर की वृद्धि होगा। यह सभी राष्ट्रों मूलवंश विषयक या धार्मिक समूहों के बीच समादर सहिष्णुता और मैत्री की अनुवृद्धि के लिए उदिष्ट होगी और शान्ति बनाये रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र के कार्यलपों को अग्रसर करेगी ।
3. माता-पिता को यह करने का पूर्णाधिकार है कि उनकी संतान को किस प्रकार की शिक्षा दी जाएगी।

अनुच्छेद-27

1. प्रत्येक व्यक्ति को समुदाय के सांस्कृति जीवन में मुक्त रूप से भाग लेने कलाओं का आनन्द लेने और वैज्ञानिक प्रगति और उसको फायदों में हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार है।
2. प्रत्येक व्यक्ति स्वनिर्मित वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक कृति के परिणामस्वरूप होने वाले नैतिक और भौतिक हितों के संरक्षण का अधिकार है।

अनुच्छेद-28

प्रत्येक व्यक्ति ऐसी सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का हकदार है जिसमें इस घोषणा में वर्णित अधिकारों और स्वतंत्रताओं को पूर्ण रूप से प्राप्त किया जा सकता है।

अनुच्छेद-29

1. प्रत्येक व्यक्ति के उस समुदाय के प्रति कर्तव्य है, जिसमें उसके व्यक्तित्व का उन्मुक्त और पूर्ण विकास संभव है।
2. प्रत्येक व्यक्ति पर अपने अधिकारों और स्वतंत्रताओं के प्रयोग में वही मर्यादाए लगाई जाएगी जों अन्य व्यक्तियों के अधिकारों और स्वतंत्रतओं की सम्यक् मान्यक् मान्यता और सम्मान सुनिश्चित करने और

प्रजातंत्रात्मक समाज में नैतिकता, लोक व्यवस्था और साधारण कल्याण की न्यायोजित अपेक्षाओं को पूरा करने के प्रयोजन के लिए विधि द्वारा अवधारित की गई है।

अनुच्छेद-30

इस घोषणा की किसी बात का यह निर्वचन नहीं किया जाएगा कि उसमें किसी राज्य समूह या व्यक्ति के लिए कोई ऐसा कार्यकलाप या कोई ऐसा कार्य करने का अधिकार विवक्षित है जिसका लक्ष्य इसमें उपर्विणत अधिकारों और स्वतंत्रताओं में से किसी का विनाश करना है।

14.4 मानवाधिकार एवं संयुक्त राष्ट्र चार्टर का उदेश्य

मानवाधिकारों को संरक्षिता करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने चार्टर द्वारा अपने उद्ेश्य को निम्न प्रकार प्रकाशित किया गया है।

हम, संयुक्त राष्ट्र के लोग,

आने वाली पीढियों के युद्ध की ज्वाला से रक्षा करने के लिए जिसके कारण मानव जाति को हमारे जीवनकाल में दो बार अकथनीय दुःख भोगना पड़ा है, और मूल मानव अधिकारों के प्रति मानव की गरिमा और महत्व के प्रति पुरूषों और स्त्रियों तथा बड़े और छोटे राष्ट्रों के समान अधिकारों के प्रति निष्ठा को पुन अभिपुष्ट करने के लिए और ऐसी परिस्थितिया उत्पत्र करन के लिए जिनके अधीन संथियों और अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अन्य स्त्रोतों से उद्भुत होने वाले दायित्वों के प्रति न्याय और बनाए, रखा जा सके, और व्यापक स्वतंत्रता में सामाजिक प्रगति और जीवन स्तर की अभिवृद्धि के लिए दृढ निश्चय करके और इस उदेश्यों की पूर्ति के लिए सहिष्णुता का आचरण करने और अच्छे पडोसियों की भाति एक-दूसरे के साथ मिलकर शांतिपूर्वक रहने के लिए और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए अपनी शक्तियों को एक करने के लिए, और ऐसे सिद्धांतों को स्वीकार करके और ऐसी पद्धतियां प्रतिस्थापित करके यह सुनिश्चित करने के लिए एक सशस्त्र बल का प्रयोग सामान्य हित में ही किया जाए, अन्यथा नहीं और सभी राष्टों की आर्थिक और सामाजिक उत्रति की अभिवृद्धि के लिए अन्तर्राष्ट्रीय तंत्र का उपयोग करने के दृढ निश्चय करके यह संकल्प करते है कि इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए हम संयुक्त रूप से प्रयास करेगें।

तदृनुसार, हमारी अपनी-अपनी सरकारों ने , सैन फ्रांसिस्कों में एकत्रित उन प्रतिनिधियों के माध्यम से, जिन्होने अपने पूर्ण अधिकार-पत्र प्रस्तुत किए है, जिन्हे ठीक और सही पाया गया है, सयुक्त राष्ट्र के इस चार्टर को सहमति दे दी है और वे इसके द्वारा संयुक्त राष्ट्र नामक एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना करती है

14.5 मानवाधिकार एवं महत्वपूर्ण अन्रराष्ट्रीय घोषणाएं एवं प्रसंविदायें

मनुष्य एक प्रज्ञावान प्रणी है एवम् मनुष्य होने के कारण वह ऐसे मौलिक एवम् अप्रतिदेव अधिकारों को धारण करने के लिए अधिकृत है जिन्हें सामान्यत मानवाधिकार कहा जाता है। ये अधिकार सभी व्यक्तियों के लिए आवश्यक है क्योंकि इन अधिकारों से मानव गरिमा एवं सामाजिक कल्याण सुनिश्चित होता है। इसका स्वल्प धर्म,जाति लिंग एंव राष्ट्रीयता से परे है, ये प्रकृति में नैसगिंक है अतः इन्हें मूलाधिकार जन्मजात अधिकार अथवा अन्तर्निहित अधिकार की संज्ञा देना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा।

यद्यपि मानवधिकारों के हनन सम्बन्धी घटनायें समाज में दिन प्रतिदिन घट रही है चाहे वह पुलिसिया अत्याचार से सम्बन्धित हो अथवा अन्य प्रकार का मामला हो किन्तु वर्तमान समय की मानवाधिकार की गतिविधि द्वितीय

विश्वयुद्ध के सीमित विनाश का परिणाम है, इस युद्ध ने मानवता के विरूद्ध जिस कुकुत्य का प्रदर्शन किया था वह अविस्मरणीय है और तभी से यदि अनुभव किया जाने लगा कि यदि मानवाधिकारों को संरक्षित करना है तो विश्व में शांति एवं सुरक्षा की स्थापना करना इस दिशा में प्रथम शर्त होगी।

मानवाधिकारों को संरक्षित करने के क्षेत्र में सर्वप्रथम अमरीकी राष्ट्रीय फ्रैकलिन रूजवेल्ट ने 6 जनवरी 1941 को कतिपय स्वतंत्रताओं की घोषणा की जिसे 14 अगस्त 1941 के अटलांटिक चार्टर द्वारा अनुमोदन प्राप्त हुआ। यह चार्टर सभी व्यक्तियों को पीडा एवं भय से मक्त करके उनकी स्वंतत्रता सुनिश्चित करने से सम्बन्धित था। बाद में इस दिशा में संयुक्त राष्ट्र घोषणा जिस पर 26 देशों द्वारा 1 जनवरी 1942 को हस्तक्षर किया गया था तथा जिसमें चारों महाशक्तियां अर्थात् यू0एस0ए0, यू0के0, रूस एवं चीन भी शामिल थे। इस घोषणा में यह कहा गया है। कि सभी देशों में मानवाधिकारों की संरक्षा की जाएं।

संयुक्त राष्ट्र के संस्थापक सैन फंरैसिंस्कों सम्मेलन में उपस्थित हुए तो इस बात पर बल दिया गया सयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार पत्र का निर्माण होना चाहिए यद्यपि परिकल्पना को साकार नहीं किया जा सका फिर भी मानवाधिकारों के सरक्षण पर विशेष बल दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि संयुक्त राष्ट चार्टर में वर्णित मूल स्वतंत्रताओं को संरक्षित करने पर बल दिया गया चार्टर की उदेशिका में प्रथम महत्पूर्ण प्रावधान यह है कि सयुक्त राष्ट्र के लोग मूल मानव अधिकारों के प्रति मानव गरिमा एवं महत्व के प्रति पुरूषों एवं स्त्रियों के प्रति बड़े एवं छोटे राष्ट्रों के समान अधिकारों के प्रति निष्ठा को अभिपुष्ट करने का संकल्प करते है।

संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुछेद 1 के परिच्छेद तीन में मूल वंश लिंग भाषा धर्म एवं क्षंत्रीयता के आधार पर किसी भी प्रकार के विभेद का प्रतिपेक्ष किया गया है। मानवाधिकारों के क्षेत्र में सयुक्त राष्ट्र का प्रयोग उदेश्य व्यक्ति की स्वतत्रंता एवं गरिमा मं अभिवृद्धि करना है।

अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार पत्र

संयुक्त राष्ट्र के समक्ष सर्वाधिक महत्वपूर्ण दायित्व मूल स्वतंत्रताओं की अभिरक्षा थी। अतः इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार पत्र को तैयार करने का निश्चय किया और संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने इस मामले को मानवाधिकार आयोग द्वारा अध्ययन करने के लिए आर्थिक एवं सामाजिक परिषद को निर्दिष्ट किया। आयोग ने सन 1947 में इस पर विचार-विमर्श किया एवं इसके क्रियान्वयन पर विचार किया गया और यही विचार आगे चलकर अन्त्रराष्ट्रीय मानवाधिकार घोषणा, अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार प्रसंविदा के नाम से जाना जाने लगा बाद में अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार पत्र की संज्ञा प्राप्त किया।

मानवाधिकार आयोग प्रारूप समिति ने 1948 में आयोजित अपने दूसरे सत्र में मानवाधिकार पत्र पर विचार-विमर्श किया और इसे सामाजिक एवं आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् ने इसे सर्वसम्मति से स्वीकार किया। महासभा ने इसे एक संकल्प ''सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा'' के माध्यम के साथ, विस्समति के बिना 48 राज्यों द्वारा अनुमोदित किया गया। इस घोषणा में प्रस्तावना के अतिरिक्त 30 अनुच्छेद है जिनकी आगे/अन्यत्र चर्चा की गयी है।

घोषणा में मानव मूलाधिकारों का विशद् वर्णन किया गया है। इन अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं में निम्नलिखित बातें शामिल हैं:-

- जीवन, स्वाधीनता एवं शारीरिक स्वतंत्रता का अधिकार ;
- दासता से मुक्ति;

- मनमानीपूर्ण गिरफ्तारी एवं निरोध से स्वतंत्रता;
- किसी स्वतंत्र एवं निष्पक्ष अधिकरण द्वारा ऋजु विचारण का अधिकार;
- निर्दोषिता की उपधारणा सम्बन्धी अधिकार जब तक कि दोष साबित न कर दिया जाय
- आवागमन एवं निवास की स्वतंत्रता;
- पत्र एवं आवास आदि की गोपनीयता;
- राष्ट्रीयता का अधिकार;
- विवाह करने तथा कुटुम्ब स्थापित करने का अधिकार;
- सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार;
- विचार एवं अंतरात्मा एवं धर्म की स्वतंत्रता;
- मत एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता;
- शांतिपूर्ण सम्मेलन एवं मेल-मिलाप की स्वतंत्रता;
- मतदान में भाग लेने एवं लोक सेवा में भाग लेने का अधिकार;
- सामाजिक सुरक्षा का अधिकार ;
- कार्य का अधिकार;
- पर्याप्त जीवन स्तर का अधिकार;
- शिक्षा का अधिकार;
- समुदाय के सांस्कृतिक जीवन में शामिल होने का अधिकार।

उपर्युक्त घोषणा में सभी व्यक्तियों को निस्सन्देह प्रभावित किया। इसके बाद मानवाधिकारों में संरक्षित एवं संवद्धित करने हेतु पश्चात्वर्ती घोषणा जैसे - शिशु अधिकार घोषणा (1950), उपनिवेशीय देशों एवं लोगों को स्वतंत्रता प्रदान करने वाली घोषणा (1960), सामाजिक प्रगति तथा विकास घोषणा (1969) एवं उत्पीड़न तथा अन्य क्रूर अमानवीय और अपमानजनक व्यवहार और दण्ड के विरूद्ध संरक्षण की घोषणा (1975) प्रभावित हुए।

मानवाधिकार प्रसंविदा

मानवाधिकार, आयोग की 'ड्राफ्टिंग कमेटी' द्वारा निर्मित अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार पत्र के प्रारम्भिक स्वरूप पर विचार करते हुए 1947 में पृथम प्ररूप संविदा तैयार करने का निश्चय किया गया जो आगे चलकर दो प्रसंविदाओं के रूप में महत्वपूर्ण हुई - 1. नागरिक तथा राजनीतिक अधिकार अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंवदिा (इण्टरनेशनल कवीनेंट आन सिविल एण्ड पोलिटिकल राइट्स) 2. नागरिक तथा राजनीति अधिकार अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा एच्छिक नयाचार आप्शनल प्रोटोकाल टू इण्टरनेशनल कवीनेंट आन सिविल एण्ड पोलीटिकल राइट्स)

उपर्युक्त दोनों प्रसंविदाओं को स्वीकार करने के परिणामस्वरूप संयुक्त राष्ट्र ने व्यक्तियों के मानवाधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकारों केा संरक्षित करने का विचार पूर्ण किया। दोनों प्रसंविदाओं पर 19 दिसम्बर 1966 को हस्ताक्षर किया गया।

दोनों प्रसंविदाओं को भिन्न-भिन्न राज्यों द्वारा अनुसमर्थन प्राप्त हुआ। इण्टरनेशनल कवीनेण्ट आन सिविल एण्ड पोलीटिकल राइट्स, में 53 अनुच्छेद हैं जिसे 6 भागों में विभाजित किया गया है।

अनुच्छेद 1 व्यक्तियों के आत्म निर्णय के अधिकार को सुनिश्चित करता है। यह अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार से स्वतंत्रता; दासता; अधिसेविता व बलातश्रम की घोर निन्दा करता है एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शांतिपूर्ण सम्मेलन, ख्याति के विरूद्ध संरक्षण की स्वतंत्रता पर बल देता है। वर्तमान में इस प्रसंविदा को सौ से अधिक राष्ट्रों का अनुसमर्थन प्राप्त हो चुका है।

आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक प्राधिकार प्रसंविदा में कुल 31 अनुच्छेद है जिन्हें पांच भागों में विभाजित किया गया है। भाग 1 लोगों के आत्मनिर्णय के अधिकार के बारे में उपबन्ध करता है और भाग तीन मे कतिपय अधिकारों की घोषणा की गयी है जैसे -

- कार्य के न्यायोचित तथा अनुकूल परिस्थितियों के अधिकार ;
- श्रम एवं अधिकार;
- सामाजिक सुरक्षा का अधिकार;
- विवाह तथा परिवार से सम्बन्धित अधिकार;
- पर्याप्त खाद्य, कपड़ा, निवास स्थान एवं जीवन-स्तर का अधिकार;
- भूख से स्वतंत्रता का अधिकार;
- लोक स्वास्थ्य एवं नैतिकता का अधिकार;

प्रसंविदाओं में महत्व इस संदर्भ में है कि ये मानव गरिमा को यहां तक संरक्षित करते हैं। प्रसंविदाओं में वर्णित अधिकारों का आधार मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा है। दोनों प्रसंविदाओं के मध्य निकट सम्बन्ध है। संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने 1977 में एक संकल्प में पुनः कहा था कि ''सभी मानवाधिकार तथा मौलिक स्वतंत्रताएं अविभाज्य हैं तथा परस्पर एक दूसरे पर आधारित हैं तथा दोनों के अनुसार, नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों एवं आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के उपभोग के बिना पूर्ण प्राप्ति असम्भव है। इसीलिए दोनों को समान महत्व दिया जाना चाहिए।

कतिपय विद्धानों द्वारा उपर्युक्त प्रसंविदाओं की आलोचना भी की गयी है। उनके अनुसार मानवाधिकार प्रकृति मे सार्वभौम नहीं हो सकते। विकसित, विकासशील एवं अल्पविकसित देशों के व्यक्तियों के अधिकार एक समान नहीं हो सकते। मानवाधिकारों के विषय में यह उल्लेखनीय प्रतीत होता है कि ये पूर्वी देशों से पश्चिमी देशों के व्यक्तियों के लिए कम भिन्न-भिन्न नहीं होते हैं। मानवाधिकारों का कोई वर्ग नहीं हो सकता एवं प्रसंविदाओं में वर्णित अधिकार सार्वभौम है। वर्तमान में मानवाधिकार कतिपय देशों के लिए अवांछनीय एवं असंगत हो सकते हैं, किन्तु प्रसंविदाओं को अंगीकार करके उनके समक्ष मानवाधिकारों के सम्मान का लक्ष्य रखा गया है और उनकी इच्छा एवं प्रवृत्ति का परिणाम दोनों प्रसंविदाओं में परिलक्षित होता है।

14.6 सारांश

सारांश के रूप में कहा जा सकता है कि मानव की विश्व व्याप्त आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अन्य मानव उपयोगी समस्याओं के निराकरण के लिए तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव प्राप्ति के लिए, सार्वभौमिक मानवाधिकारों का उदय मानव की मूलभूत स्वतन्त्रताओं में मूल, वंश, लिंग, भाषा व धर्म से निरपेक्ष होकर प्रगति हेतु हुआ है।

14.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) मानवाधिकार सम्बन्धी घोषणा से आप क्या समझते हैं?

(2) मानवाधिकार एवं संयुक्त राष्ट्र चार्टर का उदेश्य पर प्रकाश डालिए।

(3) मानवाधिकार एवं महत्वपूर्ण अन्त्तराष्ट्रीय घोषणाएं एवं प्रसंविदायं को स्पष्ट कीजिए।

(4) मानवाधिकार प्रसंविदा को स्पष्ट कीजिए।

(5) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(अ) अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार पत्र

(ब) अनुच्छेद-2

(स) अनुच्छेद-29

(द) अनुच्छेद-18

14.8 सन्दर्भ पुस्तकें

- गौतम, रमेश प्रसाद, मानव अधिकार: विविध आयाम, विश्वविद्यालय प्रकाशन म.प्र. वर्ष 2003
- राय, अरूणा, भारत का राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, वर्ष 2005
- श्रीवास्तव, मुकुल, मानवाधिकार और मीडिया, अटलांटिक पब्लिसर्श, नई दिल्ली, 2007.
- अवस्थी, एस0 के0, मानव अधिकार विधि, ओरियेन्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 2013.
- सिंह, सुरेन्द्र, मिश्र, पी॰ डी॰, समाज कार्य इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियाँ, न्यू रा ॅयल बुक कम्पनी लखनऊ, वर्ष 2009
- सिंह, सुरेन्द्र, वर्मा, आर॰ बी॰ एस॰, भारत में समाज कार्य का क्षेत्र, रा ॅयल बुक कम्पनी लखनऊ, वर्ष 2009.

भारतीय परिपेक्ष्य में मानवाधिकार

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 भारतीय परिपेक्ष्य में मानवाधिकार

15.2.1 प्राचीन भारत में मानव अधिकार

15.2.2 मध्यकालीन भारत में मानव अधिकार

15.2.3 आधुनिक युग भारत में मानव अधिकार

15.3 भारतीय संविधान एवं मानव अधिकार

15.4 मानवाधिकार एवं मूल अधिकार

15.5 मानव अधिकार तथा नैसर्गिक अधिकार

15.6 मानवाधिकार के मूल तत्व

15.7 राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग

15.8 राज्य मानवाधिकार आयोग

15.9 सारांश

15.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.11 सन्दर्भ पुस्तकें

15.0 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय का के अध्ययन के पश्चात आप-

1. भारत में विभिन्न कालों में मानवाधिकार की संकल्पना से परिचित हो जायेंगे।
2. भारतीय परिपेक्ष्य में मानवाधिकार के विकास तथा भारतीय संविधान के परिप्रेक्ष्य में इसकी भूमिका है को जान सकेंगे |
3. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग तथा राज्य मानवाधिकार आयोग के गठन तथा कार्यों से अवगत हो जायेंगे |

15.1 प्रस्तावना

मनुष्य को मनुष्य के रूप में स्थायित्व के लिए जिन मानव उपयोगी मूल्यों की तथा उच्च मर्यादाओं की आवश्यकता होती है उनको ही हम मानव अधिकार के रूप में समझ सकते हैं। मानव समाज में भाषा, रंग, मानसिक स्तर, प्रजातीय स्तर आदि स्तरों पर भेदभाव किया जाता रहा है। इन सबके बावजूद कुछ अनिवार्यताएं सब समाजों में समान हैं। यही अनिवार्यताएं मानव अधिकार है। जो एक व्यक्ति को मानव के रूप में प्राप्त होनी चाहिए। मानव अधिकार की अवधारणा प्राचीन भारतीय सभ्यता में प्रारम्भ से रही है। प्राचीन भारत में सनातन धर्म का विधान न केवल धार्मिक एवं नैतिक विधान था वरन् राजा के व्यवहारों, दण्ड विधानों को भी नियन्त्रित एवं संतुलित करता था। मध्ययुगीन काल में भी मानवाधिकार किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा है। मानवाधिकार के बिना मानवीय समुदाय का समुचित विकास सम्भव नही है और ये मानवधिकार आदिकाल से जब सभ्यता का विकास नही हुआ था, तब से हमारे समाज में किसी न किसी रूप में व्याप्त है। वर्तमान समय में भी मानवाधिकार की उपादेयता को नकारा नहीं जा सकता है।

15.2 भारतीय परिपेक्ष्य में मानवाधिकार

भारत की सभ्यता एवं संस्कृति लगभग पांच हजार वर्ष पुरानी है। खास बात यह है कि इतने लम्बे वर्षों की विरासत हमारी परम्परा में जीवित है। मानव अधिकार के बारे में भारत में सदैव नैतिकता के व्यापक प्रसंग में विचार होता रहा है। अंग्रेजी शब्द 'राइट' से अधिक व्यापक अर्थ हिन्दी 'अधिकार' शब्द का है। इसलिए यह कहना कि अधिकार केवल पश्चिमी अवधारणा है, संगतपूर्ण नहीं है।प्राचीन भारतीय सभ्यता में धर्म की अवधारणा में ही व्यापक मानवीय सामाजिक व्यवस्था के रूप में मानव अधिकारों की चर्चा भी की गयी थी। इस अर्थ में पश्चिमी आधुनिक विचारधारा एवं प्राचीन भारतीय 'धर्म' के रूप में मानव अधिकारों की संकल्पना की गयी थी। दोनों विचारों का दृष्टिकोण अलग-अलग था। प्राचीन हिन्दू सभ्यता में मानव अधिकार सम्बन्धी आधुनिक संकल्पना की जड़ें मौजूद हैं।

15.2.1 प्राचीन भारत में मानव अधिकार

वास्तव में, यह मानव अधिकार की संकल्पना पश्चिमी सभ्यता एवं विचारों की देन है, उपनिवेशवादी मानसिकता की उपज है। इतना स्पष्ट है कि मानव अधिकार की अवधारणा प्राचीन भारतीय सभ्यता में भी चिंतित एवं विचारणीय थी। प्राचीन भारत में सनातन धर्म का विधान न केवल धार्मिक एवं नैतिक विधान था वरन् राजा के व्यवहारों, दण्ड विधानों को भी नियन्त्रित एवं संतुलित करता था। वह भी सामान्य नागरिक की तरह कानून के प्रति उत्तरदायी था। विधि के समक्ष समता एवं विधियों का समान संरक्षण भी पश्चिमी अवधारणा के समान ही प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था संचालित होती थी।राजा परम्परा एवं प्रथाओं का सम्मान भी करता था। 'वेद, वेदांत, उपनिषद, गीता' आदि सभी महत्वपूर्ण भारतीय ग्रंथ इस सत्य पर जोर दे रहे थे कि 'सत्य एक है' तथा परमात्मा सभी मानव में विद्यमान रहता है। भारतीय साहित्य धार्मिक ओज एवं नियमों के अतिरिक्त सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने वाले दार्शनिक संकल्पनाओं से भी भरे पड़े हैं। इस प्रकार इस व्यापक अर्थ में एक मानवीय अधिकार की अवधारणा का भी विकास हो रहा था। 'महाभारत' का तो यह सूत्र वाक्य ही है कि ''मनुष्य से बड़ा कुछ भी नहीं है।'' 'भगवद्गीता' जो महान महाकाव्य महाभारत का एक भाग है, मानव के लिए उसके कर्तव्य में नियोजित करने की शिक्षा देता है।जहाँ तक व्यक्ति का सम्बन्ध है, महावीर जैसे जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर विशेष बल दिया है। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानमंत्री विचारक चाणक्य (कौटिल्य) विष्णुगुप्त ने अपने ग्रन्थ अर्थशास्त्र में राजनीतिक आर्थिक सामाजिक विधान का निर्धारण किया है। उसने इस बात

पर बल दिया कि ''प्रजा के हित में ही राजा का हित है।'' अशोक राजदर्शन का आधार उसके मानवीय सिद्धान्त पर आधारित था। यह सिद्धान्त दया, मानवता, करुणा, प्रेम पर बल देता था। इस तथ्य के बावजूद प्राचीन भारतीय समाज व्यवस्था अमानवीय वर्ण व्यवस्था पर आधारित था, के अमानवीयता से इनकार नहीं किया जा सकता। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णों में बँटी भारतीय सामाजिक व्यवस्था में निचले दो वर्ण उत्पादक होने के बावजूद शोषित थे। आगे चलकर जन्म के आधार पर अन्याय, शोषण और बढ़ गया।

15.2.2 मध्यकालीन भारत में मानव अधिकार

मध्यकालीन भारत में भी मानव अधिकार किसी न किसी रूप में विद्यमान था। प्राचीन भारतीय आदर्श के तीन मुख्य बिन्दु मानवतावाद, बसुधैव कुटुम्बकम् एवं धार्मिक सहिष्णुता भारतीय परम्परा में लगातार जारी रहा है। 'अब्दुल अजीत' जैसे इस्लामी विद्वान के अनुसार इस्लामी परम्परा के अनुसार, मानव अधिकार व्यक्तिगत गरिमा के आधार पर विकसित हुआ है। जिसका लक्ष्य मानवीय समाज की रचना करना है।मुगल कालीन भारत को इस संदर्भ में नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। अकबर एवं जहांगीर की न्यायप्रियता इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। अकबर ने अपने धार्मिक नीति 'दीन-ए-इलाही' के द्वारा अपनी जनता को धार्मिक सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया। मध्यकालीन भक्ति आंदोलन एक व्यापक मानवीय आंदोलन था। भक्ति आंदोलन न केवल धार्मिक स्तर पर बल्कि, सामाजिक स्तर पर एक समानतावादी, मानवतावादी दृष्टिकोण रखता था। धार्मिक भेदभाव को नकारकर सबके साथ प्रेम एवं सहयोग करना, भक्ति आंदोलन का लक्ष्य था।

15.2.3 आधुनिक युग भारत में मानव अधिकार

आधुनिक युग नए भारत के उदय का काल भी था। मध्यकालीन सामाजिक बुराइयों जैसे-सतीप्रथा, बाल विवाह, जाति प्रथा तथा अन्य मानवीय परम्पराओं के खिलाफ इस समय जबरदस्त आंदोलन किया गया। राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्दं सरस्वती, विवेकानंद, ज्योतिबाफूले, नारायण गुरु जैसे धार्मिक सामाजिक सुधारकों ने सदैव मानवीय गरिमा के लिए संघर्ष किया।दुनिया भर के अन्य सुधारवादी आंदोलनों से प्रभावित होकर भारत के नेताओं ने 1928 के नेहरू रिपोर्ट में तथा करांची (कांग्रेस अधिवेशन) प्रस्ताव में मानव अधिकारों की बात की। भारतीय संविधान के भाग तीन में वर्णित मौलिक अधिकार इसी परम्परा का विकास था।

भारत में मानव अधिकारों का विकास एक जटिल, संगठित प्रक्रिया के अन्तर्गत हुआ है। हमारी अपनी लम्बी परम्परा में, विविध संस्कृतियों के जीवन आदर्शों, परम्पराओं एवं दर्शनों ने मिलकर एक समन्वित (मिला-जुला) मानवीय अधिकार का विकास किया है। भारतीय दृष्टिकोण सदैव अधिकारों के साथ ही साथ मनुष्य के कर्तव्यों पर भी बल देता रहा है। यहाँ अधिकार और कर्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलू समझे गए हैं। मानव अधिकार भारतीय संदर्भ में सदैव व्यक्ति से समाज तक फैला था। हमारे चिन्तकों एवं विचारकों ने यह विचार दिया कि प्रत्येक आदमी का हित व्यापक अर्थ में सामाजिक हित में मिला हुआ है। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने सदैव शोषण के खिलाफ संघर्ष किया। गहरे स्तर पर यह संघर्ष मानवता के लिए संघर्ष था। इसकी आकांक्षा न केवल राजनीतिक आजादी की थी बल्कि, सामाजिक और आर्थिक मुक्ति की भी थी।स्वतन्त्र भारत के नीति निर्माताओं एवं नेताओं ने पश्चिमी राजदर्शन के लाक सिद्धान्त को न अपनाकर एक मिला-जुला रुख अपनाया। उनके विचार में अधिकार राज्य की स्थिति में ही बना एवं लागू हो सकता है। दूसरे शब्दों में उन्होंने कल्याणकारी राज्य के सिद्धान्त को अपनाया।

समाजिक, राजनीतिक, आर्थिक रूप से व्याप्त गहरी विषमता को कम करना, मानव अधिकार एवं गरिमा के लिए बहुत अनिवार्य हैं। यह भारतीय राज्य के समक्ष गहरी चुनौती है। निजत्व के ऊपर सामाजिक हित की स्थापना करना इस दिशा में बहुत महत्वपूर्ण कार्य होगा।

15.3 भारतीय संविधान एवं मानव अधिकार

भारतीय संविधान की प्रस्तावना मूलभूत अधिकार और राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों के सम्मिलित रूप में मानवाधिकार की अवधारणा का विस्तृत रूप है। इसमें से कोई भी अकेला भाग अपने आप को सम्पूर्ण नहीं कह सकता। संविधान की प्रस्तावना ने संविधान द्वारा दिये गये आधारभूत उद्देश्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रस्तावना निम्नवत हैः-

''हम भारत के लोगों ने भारत को सर्वोच्च, सामाजिक, धर्मनिरपेक्ष, प्रजातांत्रिक गणतन्त्र और इसके प्रत्येक नागरिकों की सुरक्षा करने वाले के रूप में स्थापित करने का दृढ़ संलग्न किया है। न्याय, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विचार की अभिव्यक्ति, धर्म में विश्वास और पूजा की स्वतन्त्रता, पद और स्थिति की समानता और सभी को उन्नति के समान अवसर प्रदान करना, भ्रातृत्व की भावना द्वारा मनुष्य की प्रतिष्ठा को बनाये रखने का आश्वासन (राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता)''

प्रस्तावना स्वयं में बहुत स्पष्ट है। यह सभी अधिकारों और न्याय आदि का आधार है। समग्र रूप में मानवाधिकारों को संविधान की प्रस्तावना का परिणाम कहा जा सकता है।

15.3.1 मौलिक अधिकार

मौलिक अधिकारों के छः भाग किये जा सकते हैं, जिनका विवरण निम्न है:-

- समानता का अधिकार
- स्वतन्त्रता का अधिकार
- शोषण के विरूद्ध अधिकार
- धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार
- सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार
- संवैधानिक उपचारों का अधिकार

समानता का अधिकार

इस अधिकार से तात्पर्य है कि कानून के समक्ष सभी भारतीय नागरिक समान हैं। भारतीय संविधान रंग, भेद जाति, आदि के आधार पर किसी नागरिक से भेद नहीं करेगा। इसमें रोजगार पाने के भी समान अवसर शामिल हैं। इस अधिकार के अन्तर्गत भारतीय संविधान में छुआछूत को गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया तथा राज्य द्वारा प्रदत्त उपाधियों की समाप्ति कर दी गयी है।

स्वतन्त्रता का अधिकार

- अस्त्र-शस्त्र रहित शान्तिपूर्ण सम्मेलन की स्वतन्त्रता,

- समुदाय और संघ के निर्माण की स्वतन्त्रता,
- भारत राज्य क्षेत्र में निवास की स्वतन्त्रता,
- आजीविका या कारोबार की स्वतन्त्रता,
- विचार और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता।

शोषण के विरुद्ध अधिकार

अनुच्छेद 23 के द्वारा बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य जबरदस्ती लिया हुआ श्रम निषिद्ध ठहराया गया है। इस अधिकार का महत्वपूर्ण अपवाद यह है कि राज्य सार्वजनिक उद्देश्य से अनिवार्य श्रम की योजना लागू कर सकता है, लेकिन ऐसा करते समय राज्य नागरिकों के बीच धर्म, मूल, वंश, जाति, वर्ण या सामाजिक स्तर के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। अनुच्छेद 24 में कहा गया है कि 14 वर्ष से कम आयु वाले किसी भी बच्चे को कारखानों, खानों या किसी अन्य जोखिम भरे कामों में नियुक्त नहीं किया जा सकता है। वस्तुतः शोषण के विरुद्ध अधिकार का उद्देश्य एक सामाजिक लोकतन्त्र की स्थापना करना है।

धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार

अनुच्छेद 25 में कहा गया है कि सार्वजनिक व्यवस्था सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए सभी व्यक्तियों को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता तथा कोई भी धर्म अंगीकार कर उसका अनुसरण एवं प्रचार करने का अधिकार प्राप्त होगा। सिक्खों द्वारा कृपाण धारण करना, धार्मिक स्वतन्त्रता का अंग माना गया है। धार्मिक व्यय के लिये निश्चित धन पर कर अदायगी में छूट भी शामिल है। राजकीय शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा निषिद्ध है किन्तु अन्य अधिकारों की भांति ही धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार उन्मुक्त नहीं है। राज्य सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता एवं स्वास्थ्य इत्यादि के हित में इसके प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगा सकता है।

सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार

अनुच्छेद 29 के अनुसार नागरिकों के प्रत्येक वर्ग को अपनी भाषा, लिपि या संस्कृति को सुरक्षित रखने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। इसके अतिरिक्त किसी राजकीय या राजकीय सहायता से संचालित शिक्षण संस्था में प्रवेश के सम्बन्ध में मूल, वंश, जाति, धर्म, भाषा या इनमें से किसी एक के आधार पर भेदभाव नहीं किया जायेगा।

संवैधानिक उपचारों का अधिकार

डा. अम्बेडकर ने कहा था ''यदि कोई मुझसे यह पूछे कि संविधान का वह कौन सा अनुच्छेद है जिसके बिना संविधान शून्यप्राय हो जायेगा तो मैं इस अनुच्छेद (32) को छोड़कर किसी अन्य ओर इशारा कर ही नहीं सकता।'' इन उपचारों के अन्तर्गत निम्न अधिकार शामिल हैं:-

अ) बन्दी प्रत्यक्षीकरण - यह उस व्यक्ति की प्रार्थना पर जारी किया जाता है जो यह समझता है कि उसे अवैध रूप से बंदी बनाया गया है। इसके द्वारा न्यायालय बन्दीकरण करने वाले अभिकरण या अधिकारी को आदेश देता है कि वह बंदी बनाये गये व्यक्ति को उसके (न्यायालय) द्वारा बताये गये स्थान पर सुनवाई के लिये उपस्थित करे।

ब) परमादेश- जब कोई पदाधिकारी अपने सार्वजनिक कर्तव्य का निर्वहन नहीं करता तब परमादेश जारी किया जाता है।

स) प्रतिषेध- सर्वोच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालयों को जारी करता है कि वह अमुक मामलों में अपने यहाँ सुनवाई न करे यह उनके अधिकार क्षेत्र के बाहर है।

द) उत्प्रेषण- इस आज्ञा पत्र के आधार पर उच्च न्यायालय अपने अधीन न्यायाधीशों से किन्हीं विवादों के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त कर सकते हैं।

य) अधिकार पृच्छा- जब कोई व्यक्ति ऐसे पदाधिकारी के रूप में कार्य करने लगता है जिस रूप में कार्य करने का उसे वैधानिक अधिकार नहीं है तो न्यायालय अधिकार पृच्छा के आदेश द्वारा उस व्यक्ति से पूछता है कि वह किस आधार पर इस पद पर कार्य कर रहा है। जब तक वह प्रश्न का संतोषजनक उत्तर नहीं देता वह कार्य नहीं कर सकता है।

यद्यपि भारतीय संविधान में उपरोक्त छः तरह के मौलिक अधिकारों का वर्णन है, किन्तु कुछ अन्य ऐसे अधिकार भी हैं जिनको न्यायाधीन मौलिक अधिकारों की श्रेणी में रखा जाना चाहिये था। इनमें सूचना का अधिकार, स्वास्थ्य का अधिकार आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त मौलिक अधिकारों के साथ अधिक अपवाद व प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं यद्यपि इस प्रकार के प्रतिबन्धों के औचित्य के निर्णय की शक्ति न्यायपालिका को दी गयी है।

मौलिक अधिकार, मानवाधिकारों का छोटा रूप है, किन्तु हमें मूलभूत मानवाधिकारों के बारे में सोचना होगा। मूलभूत मानवाधिकारों से तात्पर्य उन अधिकारों से है जो मानव के अस्तित्व के लिये आवश्यक है अर्थात् जब हम इन अधिकारों की प्राप्ति कर लेंगे तब हम आदर्श मानवाधिकारों की प्राप्ति की दिशा में एक कदम और बढ़ा लेंगे। मूलभूत मानवाधिकारों में आर्थिक, सामाजिक समय से नागरिकों को प्राप्त हैं किन्तु व्यवहार में स्थिति भिन्न है। चाहे वह अल्पसंख्यकों का मामला हो या अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजातियों पिछड़े वर्गों के नागरिकों का। ऐसे लोग भारत में अभी भी मानवाधिकारों की प्राप्ति के लिये संघर्षरत हैं। भारत में मानवाधिकारों के बारे में लोगों को पता है तथा उनके पास जानकारी है लेकिन न तो इतने संसाधन हैं और न ही पर्याप्त मार्गदर्शन जिससे वे इनके लिये संघर्ष कर सकें। मानवाधिकारों का चिन्तन देश, राष्ट्र, राज्य की सीमाओं के दायरे में नहीं होना चाहिये।

मानवाधिकारों को सुरक्षित करने के लिये भारत सरकार ने कमजोर वर्गों के हितों के लिये अल्पसंख्यक, पिछड़ा, अनुसूचित जाति, जनजाति आयोग का गठन किया हे। इसी दिशा में 12 अक्टूबर, 1993 को राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया है। इसके पास इस सम्बन्ध में खोज एवं सिफारिशें करने का अधिकार है। आयोग का प्रतिवेदन प्रतिवर्ष संसद के समक्ष रखा जाता है।

15.4 मानवाधिकार एवं मूल अधिकार

मानवाधिकार का क्षेत्र विस्तृत है जबकि मूल अधिकार का क्षेत्र अपेक्षाकृत संकूचित है। मूल अधिकार के अन्तर्गत केवल वे अधिकार आयोग जो प्रतिस्पदा के अन्तर्गत अनुच्छेद 14 से लेकर 30 तक दिये गये है। जबकि मानाधिकार के अन्तर्गत ये सभी मूल अधिकार जो आयेगें इसके अलावा अन्य बहुत से अधिकार भी आयेगे जैसे- देने का अधिकार राष्ट्रीयता का अधिकार सम्पत्ति का अधिकार आदि।

मूल अधिकारों का उल्लंघन होने पर उपचार संविधान के अनु032 के अन्तर्गत उच्चत न्यायालय से तथा अनु0 126 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय से प्राप्त किया जा सकता है। जबकि मानवाधिकारों का उल्लंघन होने पर उपचार मानवाधिकार जिल न्यायालयों राष्ट्रीय आयोग तथा राज्य आयोग से भी प्राप्त किया जा सकता है।

मूल अधिकारों के उल्लंघन की दशा में न्यायालय स्वत शक्ति का उपयोग करके उपचार प्रदान नही कर सकता जबकि राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग का प्रयोग करके मामले का निस्तारण करते हुए व्यक्तियों को उपचार प्रदान कर सकता है।

15.5 मानव अधिकार तथा नैसर्गिक अधिकार

मानव अधिकार वह अधिकार है जो मनुष्यों के जीवन के लिये आवश्यक है मानव अधिकार वह अधिकार है जो प्रत्येक मानव को प्राप्त है चाहे वह किसी भी राष्ट्रीयता प्रजति अधिकार वह अधिकार है जो प्रकृति में अन्तर्निहित तथा जिनके बिना हम मानवों की भा ँति जीवित नही रह सकते है। मानव अधिकार हमें अपने गुणों ज्ञान प्रतिभा तथा अन्तर्विवेक का विकास करने में सहायक होते है जिससे हम अपनी भौतिक आध्यात्मिक तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति एवं सन्तुष्टि कर सके। मानव अधिकार मनुष्य की एक ऐसे जीवन की ओर बढ़ती हूई मा ँग पर आधारित है जिसमें मानव की अन्तर्निहित गरिमा एवं गुण का सम्मान हो तथा उसे संरक्षण प्रदान किया जाये।

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 में मानवाधिकारों को परिभाषित किया गया है जो धारा 2 में वर्णित है। इसके अनुसार मानव अधिकार का अर्थ व्यक्ति के जीवन स्वंतत्रता समानता व गरिमा से सम्बन्धित उन अधिकारों से है जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत है या अन्तर्राष्ट्रीय करारों में वर्णित है और भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय है इस अधिकारों के बिना व्यक्ति की स्थिति पशु की भा ँति हो जायेगी।

मानव अधिकारों को सार्वजनिक रूप से मान्यता सर्वप्रथम संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा द्वारा सन् 1948 के मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा पत्र द्वारा दी गई थी। प्रायः सभी विकसित एवं विकास शील देशो ने यह स्वीकार किया है कि मानव अधिकार केवल एक कागजी घोषण न होकर मानव के गरिमामय विकास में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है ये केवल सामाजिक आर्थिक अधिकारों तथा सीमित न रहकर इनका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है तथा इनमें व्यापक अधिकारों के अलावा नैतिक सांस्कृतिक एवं भैतिक मूलभूत आवश्यकताओं का भी समावेश है जो मानवीय गरिमा के लिये महत्वपूर्ण है।

मानव अधिकारों को कभी-कभी मौलिक या मूल या नैसर्गिक अधिकार भी कहते है क्योकि वह यह अधिकार है जिन्हें किसी विधायिनी या सरकार के किसी कृत्य द्वारा छीना नहीं जा सकता है तथा उनका वर्णन या उल्लेख संविधान में किया जाता है।

भारतीय संविधान पर मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का प्रभाव स्पष्ट झलकता है तथा बात को उच्चतम न्यायालय ने भी स्वीकार किया है। केशवानन्द भारतीय केरल राज्य के बाद में संविधान के भाग 3 में वर्णित मौलिक अधिकारों के बारे में बालते हुये न्यायमूर्ति सरकारी ने कहा था मै यह धारित करने में असमर्थ हूँ कि यह अधिकार नैसर्गिक या असंक्रमणीय नहीं है। वास्तव में भारत मानव अधिकारों की सार्वभौगिक घोषणा का पक्षकार या तथा उक्त घोषणा कुछ मौलिक अधिकारों को असंक्रमणीय वर्णित करती है।

इसके पूर्व गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य के बाद में उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि परम्परागत जिसे नैसर्गिक अधिकार कहते थे उसका आधुनिक नाम मौलिक अधिकार है साविधान में इन अधिकारों के समाविष्ट किये जाने का उद्देश्य उन मूल्यों का संरक्षण करना है जो एक स्वतंत्र समाज के लिये अपरिहार्य है।

इन अधिकारों को मूलभूत अधिकार इसलिये कहते है क्योंकि ये व्यक्ति के पूर्ण बौद्धिक नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास अवरूद्ध हो जायेगा और उसकी शक्तियां अविकसित रह जायगी। गांधी बनाम भारत संघ के

मामले में मूल अधिकारों की प्रकृतिक एवं महत्व के बारे में न्यायापति श्री भगवती ने यह कहा है इन मूल अधिकारों का गहन उद्गम स्वतन्त्रता का संघर्ष है उन्हें संविधान में इस आशा और प्रत्यशा के साथ सम्मिलित किया गया था कि एक बिन सही स्वाधीनता का वृक्ष भारत में विकसित होगा।

न्यायमूर्ति श्रीकृष्णा अययर ने यह घोषण की है आज मानव अधिकार विधि शास्त्र एवं भारतीय संविधान का एक आवश्यक अंग बन गया है। (सुनील बत्रा प्रकरण)

इस प्रकार संक्षेप में हम यह कह सकते है कि मूल अधिकार आधारभूत अधिकार है के बौद्धिक नैतिक और आध्यात्मिक विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक ही नही है। इन अधिकारों अभाव में व्यक्ति का बहुमुखी विकास सम्भव नहीं है।

15.6 मानवाधिकार के मूल तत्व

मानवाधिकार के मूल तत्व निम्न प्रकार है:-

- प्रत्येक मानव प्राणी इन अधिकारों के लिए हकदार है, क्योंकि यह अधिकार उसे मानव के रूप में जन्म लेने के आधार पर मिले हैं।
- प्रत्येक मानव के साथ उसकी गरिमा जुड़ी हुई है। वह चाहे अभिमुक्त हो या युद्धबंदी, चाहे बालक हो या दलित हो, हर मानव की गरिमा की रक्षा आवश्यक है।
- मानव व्यक्तित्व का विकास इन मानवाधिकारों से जुड़ा हुआ है ; जैसे - शिक्षा कार्य दशा का अधिकार आदि मिलने पर ही व्यक्ति विकास कर सकता है।
- मानव की प्रसन्नता के लिए इन मानवाधिकारों की रक्षा की जाना जरूरी है। प्रत्येक मानव के सुख की ये पूर्व शर्ते हैं।

मानवाधिकार प्रत्येक मानव को बिना किसी भेदभाव के प्राप्य है, चाहे वह किसी भी प्रजाति लिंग, भाषा, रंग व धर्म से संबंध रखता हो।

15.7 राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग

भारतीय संविधान वेत्ताओं ने यह सोचकर कि भारत के सभी नागरिक समान रूप से लिंग, जाति, धर्म, देश, मूल, वंश इत्यादि पर आधारित न होकर बिना किसी भेदभाव के सभी मानवोपयोगी सुविधाओं का लाभ उठा सकें, इन मानव अधिकारों को भारतीय संविधान में सम्मिलित किया।

इन्हीं चीजों को ध्यान में रखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने सन् 1948 में अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकारों की घोषणा की। बाद में संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1966 में अन्तर्राष्ट्रीय सिविल और राजनीतिक अधिकार नामक प्रतिज्ञापत्र पास किया और 1966 में ही अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकारों पर आधारित प्रतिज्ञापत्र पास किया। चूंकि भारतवर्ष भी संयुक्त राष्ट्र संघ का एक सदस्य है। इसलिए इन उपरोक्त अन्तर्राष्ट्रीय घोषणाओं को देखते हुए और भारतीय संविधान के मूलभूत अधिकारों की व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए भारत में भी ऐसे एक आयोग की आवश्यकता जानते हुए 14 मई 1993 को मानव अधिकार आयोग बिल (प्रस्ताव) लोकसभा में प्रस्तुत किया गया, परन्तु जब इस बिल को गृह विभाग निमित्त संसदीय उपसमिति (पार्लियामेन्ट्री स्टेण्डिंग कमेटी आन होम एफेयर्स) के विचारार्थ प्रस्तुत किया गया तो इस प्रस्तुत बिल में प्रदत्त कमीशन की कार्यप्रणाली की वृहद

आलोचना हुई। तदनुसार पुनः इस मूल प्रस्ताव में इस समिति की सिफारिशों को शामिल करके 28 सितम्बर, 1993 को एक अध्यादेश पास किया गया। बाद में 25 नवम्बर, 1993 को संसद द्वारा संशोधित बिल पास किया गया, जो एक्ट के रूप में जाना गया और जिसे मानव अधिकार संरक्षक अधिनियम 1993 की संज्ञा दी गयी। इसी बिल के आधार पर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, प्रान्तों में प्रान्तीय मानव अधिकार आयोग तथा मानव अधिकार न्यायालयों का, भारतीय नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए गठन किया गया।

आयोग की रचना

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के कार्य संचालन के लिए निम्नलिखित सदस्य मण्डल की व्यवस्था की गयी है:-

1. एक अध्यक्ष, , सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय।
2. एक सदस्य, जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा हो।
3. एक सदस्य, जो उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश है या रहा हो।
4. दो सदस्य उन लोगों में से रखे जाते हैं जिन्हें मानव अधिकारों के विषय में अच्छा ज्ञान हो।
5. इनके अतिरिक्त तीन सदस्य जिनमें राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग का अध्यक्ष, राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष व राष्ट्रीय अनुसूचित जाति व जनजाति आयोग का अध्यक्ष शामिल होंगे। परन्तु इनको, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को प्रदत्त सभी कार्य करने होंगे, सिवाए एक जाँ कार्य को छोड़कर।

   इन सदस्यों के अतिरिक्त केन्द्र सरकार में सचिव स्तर का एक अधिकारी जिसको कि आयोग में महासचिव की संज्ञा दी जायेगी, वह सभी कार्य व अधिकारों को प्रयोग करेगा जो उसे आयोग द्वारा प्रदान किये जाते हैं।

आयोग का मुख्य कार्यालय दिल्ली में होगा। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन पर वह भारत के किसी अन्य स्थान पर भी कार्य कर सकता है। इस आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों को राष्ट्रपति उस समिति की सिफारिशों के आधार पर नियुक्त करेगा, जो इस आयोग के गठन के लिए विशेष रूप से गठित की जाती हैं इस समिति का गठन निम्न रूप से किया जाता हैः-

1. प्रधानमन्त्री – अध्यक्ष
2. लोकसभा का सभापति – सदस्य
3. केन्द्रीय गृह मन्त्रालय में कार्यकारी गृहमंत्री – सदस्य
4. लोकसभा में विपक्ष का नेता – सदस्य
5. राज्य सभा में विपक्ष का नेता – सदस्य
6. राज्य का उपाध्यक्ष - सदस्य

इन सदस्यों के अतिरिक्त जैसाकि ऊपर बताया गया है कि केन्द्र सरकार इस आयोग (राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग) को निम्नलिखित अधिकारियों की उपलब्धता निश्चित करेगी।

आयोग के अधिकारी और अन्य कर्मचारी

इसी अधिनियम में व्यवस्था ही गई है कि केन्द्र सरकार आयोग को उसके कुशल कार्य-निष्पादन के लिए:-

केन्द्रीय सरकार में सचिव स्तर का अधिकारी:- जो आयोग में महासचिव के पद पर काम करेगा और जो आयोग के आदेशानुसार आयोग के कार्यालय संचालन व अन्य वे सभी कार्य जो समय-समय पर आयोग द्वारा उसे सौंपे जाते हैं, उनको करेगा।

जाँच अधिकारी:-जो पुलिस के महानिदेशक पद से कम का न हो। इसके साथ मंे अन्य कर्मचारीगण उपलब्ध कराये जायेंगे जिससे वह आयोग के कार्य को सुचारू रूप से चला सके।

मानवाधिकारों की परिभाषा

इस अधिनियम की धारा 2 अनुसार मानवाधिकारों अर्थ संविधान द्वारा प्रत्याभूत या अतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में निहित और भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय जीवन स्वतंत्रता समानता और व्यक्ति की गरिम-संबंधी अधिकार है। अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं का अर्थ 16 दिसंबर 1966 को संयुक्त राष्ट्र संघ की आम सभा द्वारा अंगीकृत नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों से संबंधित प्रसंविदा और आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों से संबंधित प्रसंविदा है।

आयोग के कर्तव्य

अधिनियम आयोंग को निम्ननिखित प्रकार्य सौंपता है।

(क) अपनी पहल पर या प्रभावित व्यक्ति द्वारा अथवा उसकी ओर से अन्य व्यक्तियों द्वारा दी गई याचिका प्राप्त होने पर:-

(i) मानवाधिकारों के उल्लंघन या उनके उल्लंघन के उकसावे, या

(ii) किसी सरकारी नौकर द्वारा ऐसे उल्लंघन को रोकने के संबंध में बरती गई लापरवाही की शिकायतो की जांच करना।

(ख) किसी न्यायालय में चल रही ऐसी किसी कार्यवाही में जिससे मानवाधिकारों के उल्लधंन के किसी रही आरोंप का संबध है उस न्यायालय की सहमति से हस्तक्षेप करना,

(ग) राज्य सरकार के नियंत्रण में विद्यमान चाहे जिस जेल या अन्य संस्था में लोगों को इलाज सुधार या संरक्षण के लिए नजरबंद रखा जा रहा से उसका संबंधित राज्य सरकार को सूचित करके इस उद्देश्य से निरीक्षण करना कि आयोग उसमें रहने वाले लोगों की रहन-सहन की दशा का अध्ययन कर सके और उसके संबंध में सिफारिशें कर सके,

(घ) मानवाधिकारों के सरक्षण के लिए संविधान में या संविधान के अधीन अथवा फिलहाल लागू किसी कानून के द्वारा किए गए पूर्वोपायों की समीक्षा करना और उनके प्रभावकारी कार्यान्वयन के लिए आवश्यक कदमो की सिफारिश करना,

(ड़) उन कारकों की जिनमें आतंकवादी कार्यवाइयां भी शामिल है। समीक्षा करना जो मानवाधिकारों के उपभोग के मार्ग में बाधक है और उनके निवारण के उपयुक्त उपाय सुझाना,

(च) मानवाधिकारों से संबधित संधियों और अन्य उपलब्ध उपायों से समाज के विभिन्न हिस्सों में मानवाधिकारों से संबंधित ज्ञान का प्रसार करना और इन अधिकारों के संरक्षण के लिए उपलब्ध उपयोग के बारे में जागरूकता का अभिवर्धन करना,

(झ) मानवाधिकारों के क्षेत्र में कार्यरत गैर-सरकारी संगठनों और संस्थाओं के प्रयत्नों को प्रोत्साहन देना, और

(ञ) मानवाधिकारों के अभिवर्धन के लिए और भी जो कार्य जरूरी समझे उस सबको करना।

शिकायतों के संबंध में कार्रवाई करने की विधि

शिकायतों के अपने-आप में पूर्ण होने की अपेक्षा की जाती है। शिकायते हिन्दी, अंग्रेजी या संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित किसी भी भाषा में हो सकती है। शिकात करने के लिए कोई शुल्क नहीं लिया जाता। जरूरत मानने पर आयोग अधिक जानकारी तथा आरोपां के समर्थन में हलपनामों मांग सकता ह। आयोग को यह विवेकाधिकार है कि वह वाहे तो तार और फैक्स द्वारा भेजी गई शिकायतें भी स्वीकार कर ले।

शिकायत जिस पर विचार नहीं किया जाएगा

आम तौर पर आयोग निम्नलिखित प्रकार की शिकयतों पर विचार नहीं कर सकता।

(क) शिकायत करने के साल भर से अधिक समय पूर्व घटित घटनाओं से संबंधित शिकायतें,

(ख) न्यायाधीन मामलों से संबंधित शिकायतें,

(ग) अस्पष्ट और गुमनाम या अर्ध-गुमनाम शिकायतें,

(घ) निस्सार ढंग की शिकायतें,

(ङ) जो शिकायतें आयोग के अधिकार क्षेत्र. से बाहर हैं, और

(च) नौकरियों से संबंधित शिकायतें।

जांच से संबंधित अधिकार

अधिनियम के अधीन आयोग को जांच और अन्वेषण के व्यापक अ धिकार दिए गए हैं। अधिनियम के अधीन शिकायतों की जांच करते समय आयोग किसी सिविल न्यायालय द्वारा किसी मुकदमें की सुनवाई करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन प्रयोग किए जाने वाले सभी अधिकारों का, और खास तौर से निम्नलिखित बातों के संबंध में ऐसे अधिकारों का प्रयोग कर सकता है:-

(क) गवाहों को तलब करने और उन्हें उपस्थित होने को विवश करने तथा हलफ दिलाकर उनसे पूछताछ करने के संबंध में,

(ख) किसी दस्तावेज की खोज और प्रस्तुति के संबंध में,

(ग) हलफनामें के साथ साक्ष्य प्राप्त करने के संबंध में,

(घ) किसी भी न्यायालय या कार्यालय से कोई सरकारी प्रलेख या उसकी प्रतिलिपि को तलब करने के संबंध में,

(ङ) गवाहों या दस्तावेजों की जांच के लिए कार्याधिकार (कमीशन) जारी करने के संबंध में, और

(च) किसी अन्य निर्दिष्ट मामलें के संबंध में,

अन्वेषण कर्मचारी

मानवाधिकारों के उल्लंघनों की शिकायतों के अन्वेषण के लिए आयोग के पास अपने अन्वेषण कर्मचारी हैं। अधिनियम के अधीन आयोग केन्द्र सरकार या किसी राज्य सरकार के किसी अधिकारी या अन्वेषण एजेंसी की सेवाओं का भी उपयोग कर सकता है। इसके अलावा, आयोग को उपयुक्त मामलों में अन्वेषकों या पर्यवेक्षकों के रूप में बाहरी लोगो की सहायता लेने का अधिकार है।

शिकायतों की जांच

मानवाधिकारों के उल्लंघनों की शिकायतों की जांच करते समय आयोग केन्द्र सरकार या किसी राज्य सरकार या उसके अधीनस्थ किसी अन्य प्राधिकरण या संगठन से, आयोग द्वारा निर्धारित समय के अंदर, कोई जानकारी या रिपोर्ट, मांग सकता है। यदि वह जानकारी या रिपोर्ट आयोग द्वारा निर्धारित समय के अंदर प्राप्त नहीं होती है जो वह खुद ही जांच की कार्यवाही कर सकता है; दूसरी ओर जानकारी या रिपोर्ट प्राप्त हो जाने पर यदि आयोग को यह भरोसा हो जाये कि आगे और जांच की जरूरत नहीं है या यह भरोसा हो जाए कि संबंधित सरकार या प्राधिकरण द्वारा अपेक्षित कार्यवाही आरंभ या संपन्न कर दी गई है तो वह प्राप्त शिकायत के बारे में और कार्यवाही न करके शिकायतकर्ता को तदनुसार सूचित कर सकता है।

जांच के बाद के कदम

जांच पूरी हो जाने पर आयोग निम्नलिखित में से चाहे जो कदम उठा सकता है:-

- यदि जांच से पता चले कि मानवाधिकारों का उल्लंघन किया गया है अथवा किसी सरकारी अधिकारी ने मानवाधिकारों के उल्लंघन को रोकने में लापरवाही बरती है तो वह संबंधित सरकार या प्राधिकरण से संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों के खिलाफ मुकदमा चलाने की कार्यवाही आरंभ करने या आयोग अन्य जो भी कार्यवाही उचित समझे वह करने की सिफारिश कर सकता है,

- उच्चतम न्यायालय या संबंधित उच्च न्यायालय से, वह न्यायालय जैसा भी उचित समझे वैसा निर्देश, आदेश या रिट जारी करने का आवेदन कर सकता है, और

- संबंधित सरकार या प्राधिकरण से उल्लंघन के शिकार व्यक्ति या उसके परिवार के सदस्यों को तत्काल वैसी अंतरिम राहत देने की सिफारिश कर सकता है जैसी आयोग आवश्यक समझे;

- नीचे (5) की व्यवस्थाओं की बाध्यता को स्वीकार करते हुए जांच रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि आवेदक द्वारा या उसके प्रतिनिधि को दे सकता है,

- आयोग अपनी जांच रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि, अपनी सिफारिशों के साथ, संबंधित सरकार या प्राधिकरी को भेजेगा और संबंधित सरकार या प्राधिकारी एक महीने के अंदर या अगर आयोग इससे अधिक अवधि की अनुमति दे तो उस अवधि के अंदर रिपोर्ट पर अपने अभिमत, जिनसे उस रिपोर्ट पर की गई या की जाने वाली कार्यवाही का भी उल्लेख होगा, आयोग को भेज देगा,

- आयोग अपनी सिफारिशों पर संबंधित सरकार या प्राधिकारी के अभिमतों बशर्ते कि ऐसे अभिमत प्रस्तुत किए गए हों तथा उन सिफारिशों पर संबंधित सरकार या प्राधिकारी द्वारा की गई या प्रस्तावित कार्यवाही के साथ जांच रिपोर्ट प्रकाशित करेगा।

सशस्त्र बलों से संबंधित कार्यविधि

इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए ''सशस्त्र बलों'' का अर्थ नौसेना, थल सेना और वायु सेना है तथा उसमें संघ के किसी अन्य किसी भी बल का समावेश है। इस अधिनियम में सशस्त्र बलों से संबंधित जिस कार्यविधि की व्यवस्था की गई है वह अन्य किसी भी सरकारी पदाधिकारी द्वारा किए गए मानवाधिकारों के उल्लंघनों की शिकायतों के निपटारे की कार्यविधि से भिन्न है।

1. इस अधिनियम में चाहे जो भी अन्य व्यवस्थाएं की गई हो, सशस्त्र बलों के सदस्यों द्वारा किए गए मानवाधिकारों के उल्लंघनों की शिकायतों पर विचार करते समय आयोग निम्नलिखित कार्यविधि अपनाएगाः-

(क) वह या तो खुद अपनी पहल पर या कोई आवेदन पत्र प्राप्त होने पर केन्द्र सरकार से रिपोर्ट मांग सकता है।

(ख) रिपोर्ट प्राप्त होने पर यदि उसे उस पर आगे कार्यवाही करने की जरूरत न महसूस हो तो वह कोई कार्यवाही न करे और यदि जरूरत महसूस हो तो वह उस सरकार से आवश्यक सिफारिशें कर सकता है।

2. सिफारिशें प्राप्त होने के तीन महीने के अंदर या यदि आयोग इससे अधिक अवधि की मंजूरी दे तो उस अवधि के अंदर केन्द्र सरकार उन सिफारिशों पर की गई कार्यवाही के बारे में आयोग को सूचित करेगा।

3. आयोग अपनी रिपोर्ट और सिफारिशें, उन सिफारिशों पर केन्द्र सरकार द्वारा की गई कार्यवाही के साथ प्रकाशित करेगा।

4. आयोग उक्त रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि आवेदक या उसके प्रतिनिधि को देगा।

केन्द्र सरकार या राज्य सरकार अथवा किसी प्राधिकरण को सामान्य शिकायतों के मामले में एक महीने के अंदर और सशस्त्र बलों से संबंधित शिकायतों के मामले में तीन महीने के अंदर आयोग की रिपोर्ट या सिफारिशों पर अपनी अभिमतों या की गई कार्यवाही की सूचना आयोग को देनी होगी।

आयोग की वार्षिक और विशेष रिपोर्ट

आयोग से केन्द्र सरकार तथा संबंधित राज्य सरकारों के समक्ष अपनी एक वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करना अपेक्षित है। इसके अलावा, आयोग ऐसे खास मामलों के संबंध में विशेष रिपोर्ट भी प्रस्तुत कर सकता है जिन्हें वह इतना अविलंबनीय या महत्वपूर्ण समझे कि वार्षिक रिपोर्ट की प्रस्तुति एक प्रतीक्षा करने की गुजांइश न हो। केन्द्र सरकार और संबंधित राज्य सरकार का यह अनिवार्य कर्तव्य है कि वह आयोग की सिफारिशों पर की गई या की जाने वाली कार्यवाहियों और यदि कुछ सिफारिशें स्वीकार न की गईहों तो उनकी अस्वीकृति के कारणों के विवरण के साथ आयोग की वार्षिक और विशेष रिपोर्ट क्रमशः संसद और विधान मंडल के प्रत्येक सदन के पटल पर प्रस्तुत करे।

15.8 राज्य मानवाधिकार आयोग

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के साथ-साथ ही प्रान्तों में भी प्रान्तीय मानव अधिकार आयोगों का गठन किया जाता है। इसका गठन भी कमोवेश उसी तरह होता है जिस तरह कि राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का होता है। अन्तर केवल इतना है कि उसमें अध्यक्ष उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश होता है। जबकि इसमें अध्यक्ष उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश होता है व सदस्य जिला जज व उच्च न्यायालय के जज होते हैं व दो सदस्य केन्द्रीय आयोग की भांति ऐसे लोगों को रखा जाता है जिन्हें मानव अधिकारों के विषय में समुचित ज्ञान हो, इसका महासचिव प्रान्तीय सरकार में सचिव स्तर का अधिकारी होता है।

इनका कार्यक्षेत्र प्रान्त तक ही सीमित होता है। मानव अधिकारों के हनन पर शीघ्र ही न्यायिक कार्यवाही कराने हेतु प्रत्येक प्रान्त में उस प्रान्त के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश विशेष आदेश पारित करके प्रत्येक जगह या तो सत्र न्यायाधीश को इन वादों के लिए अधिकारित कर सकता है अथवा अन्य कोई व्यवस्था कर सकता है। इन वादों के निस्तारण के लिए अलग से सरकारी वकीलों की व्यवस्था की जा सकती है।

इस अधिनिमय में अलग-अलग राज्य सरकारों द्वारा राज्य मानवाधिकार आयोग के गठन के लिए समर्थकारी व्यवस्था भी है। राज्य मानवाधिकार आयोग में:-

(क) एक अध्यक्ष, जो किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश रह चुका हो,

(ख) एक सदस्य, जो किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रह चुका हो,

(ग) एक सदस्य, जो किसी राज्य के जिला न्यायालय में न्यायाधीश है या रह चुका हो,

(घ) दो सदस्य, जो मानवाधिकारों से संबंधित मामलों का ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव रखने वाले लोगों में से नियुक्त किए जाएंगे।

शामिल होंगे।

एक सचिव होगा, जो राज्य आयोग का मुख्य कार्यपालक अधिकारी होगा और जो राज्य आयोग द्वारा प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग तथा सौंपे गए कार्यों का संपादन करेगा। राज्य आयोग का मुख्यालय राज्य सरकार द्वारा जारी एक अधिसूचना द्वारा निर्दिष्ट स्थान में होगा।

राज्य आयोग का गठन

आयोग का अध्यक्ष और उसके सदस्य राज्य सरकार द्वारा एक समिति की सिफारिशों पर नियुक्त किए जायेंगे। इस समिति की रचना निम्नलिखित प्रकार से होगी:-

1.	अध्यक्ष	
2.	विधान सभा का अध्यक्ष	सदस्य
3.	संबंधित राज्य के गृह विभाग का प्रभारी मंत्री	सदस्य
4.	विधान सभा में विपक्ष का नेता	सदस्य

जिस राज्य में विधान परिषद् हो वहां विधान परिषद् में विपक्ष का नेता भी नियुक्ति समिति का सदस्य होगा। संबंधित राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श किए बिना किसी उच्च न्यायालय या जिला न्यायालय के पीठासीन न्यायाधीश को आयोग में नियुक्त नहीं किया जाएगा।

राज्य आयोग के अध्यक्ष या अन्य सदस्य को केवल राष्ट्रपति द्वारा, राष्ट्रीय आयोग के संदर्भ मे निर्दिष्ट तत्संबंधी प्रक्रिया के अनुसार, ही उसके पद से हटाया जा सकता है। अध्यक्ष या सदस्य या कार्यकाल उसके पद भार संभालने के दिन से पांच साल पूरे होने याउसके 70 साल की आयु के होने में से जो दिन पहले आए उस दिन तक के लिए होगा। पद-मुक्त होने के बाद अध्यक्ष या सदस्य राज्य सरकार या केन्द्र सरकार के अधीन नियुक्त किए जाने के लिए आपात्र होगा।

राज्य आयोग के अधिकारी और कर्मचारी

संबंधित राज्य सरकार राज्य आयोग को कम से कम राज्य सरकार के सचिव के दर्जे का एक अधिकारी उपलब्ध कराएगी। यह अधिकारी राज्य आयोग का सचिव होगा। इसके अलावा वह आयोग को कम से कम पुलिस महानिरीक्षक के दर्जे के एक अधिकारी के अधीन काम करने के लिए पुलिस और अन्वेषण कर्मचारी तथा ऐसे अन्य अधिकारी और कर्मचारी उपलब्ध कराएगी जो राज्य आयोग के कार्यों के सफल निष्पादन के लिए आवश्यक हों। राज्य आयोग ऐसे अन्य प्रशासनिक तकनीकी और वैज्ञानिक कर्मचारियों की नियुक्ति कर सकता है जिसे नियुक्त करना वह आवश्यक समझें।

राज्य आयोग के कार्य

राज्य आयोग केवल संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 2 (राज्य सूची) और सूची 3 (सहवर्ती सूची) में उल्लिखित प्रविष्टियों से संबंधित मामलों के बारे में ही मानवाधिकारों के उल्लंघन की जांच कर सकता है। लेकिन यदि ऐसे किसी मामलें की जांच पहले से ही राष्ट्रीय आयोग या कोई अन्स वैधानिक आयोग कर रहा हो तो राज्य आयोग उसके संबंध में जांच नहीं करेगा। इस मर्यादा के साथ, राज्य आयोग के अधिकार जांच की कार्यविधि, अन्वेषण और तत्पश्चात् उसके द्वारा उठाये जाने वाले कदम राष्ट्रीय आयोग के तुल्य है।

15.9 सारांश

सारांश के रूप में मानवाधिकार माध्यम से ही व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक और आत्मिक आवश्यकताएं पूरी कर पाता है और अपने व्यक्तित्व का विकास करने में समर्थ हो पाता है। इसलिए समाजिक, राजनीतिक, आर्थिक रूप से व्याप्त गहरी विषमता को कम करना एवं मानव अधिकार एवं गरिमा को स्थापित करना भारतीय राज्य के समक्ष गहरी चुनौती है।

15.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) भारतीय परिपेक्ष्य में मानवाधिकार से आप क्या समझते हैं?

(2) भारतीय संविधान एवं मानव अधिकार पर प्रकाश डालिए।

(3) मानवाधिकार एवं मूल अधिकार को स्पष्ट कीजिए।

(4) मानव अधिकार तथा नैसर्गिक अधिकार को स्पष्ट कीजिए।

(5) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(अ) मध्यकालीन भारत में मानव अधिकार

(ब) मानवाधिकार के मूल तत्व

(स) समानता का अधिकार

(द) शोषण के विरुद्ध अधिकार

15.11 सन्दर्भ पुस्तकें

- गौतम, रमेश प्रसाद, मानव अधिकार: विविध आयाम, विश्वविद्यालय प्रकाशन म.प्र. वर्ष 2003.
- राय, अरूणा, भारत का राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, वर्ष 2005
- श्रीवास्तव, मुकुल, मानवाधिकार और मीडिया, अटलांटिक पब्लिसर्श, नई दिल्ली, 2007.
- अवस्थी, एस0 के0, मानव अधिकार विधि, ओरियेन्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 2013.
- सिंह, सुरेन्द्र, मिश्र, पी॰ डी॰, समाज कार्य इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियाँ, न्यू रा ॅयल बुक कम्पनी लखनऊ, वर्ष 2009
- सिंह, सुरेन्द्र, वर्मा, आर॰ बी॰ एस॰, भारत में समाज कार्य का क्षेत्र, रा ॅयल बुक कम्पनी लखनऊ, वर्ष 2009.